श्रमण भगवान महावीर की पच्चीस सौ वीं निर्वाण तिथि समारोह के उपलक्ष्य में

अहिंसा की बोलती मीनारें

गणेश मुनि, शास्त्री

सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा-२

सन्मति साहित्य रत्नमाला का १०६ वां रत्न

पुस्तक	लेखक
अहिंसा की बोलती मीनारें	गणेश मुनि शास्त्री

प्रकाशक

सन्मति ज्ञान पीठ आगरा

भूमिका	आशीर्वाद
श्री यशपाल जैन	उपाध्याय अमरमुनि

विषय	पृष्ठ
अहिंसा का ऐतिहासिक पर्यालोचन	दो सौ बत्तीस

मुद्रक

श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, राजामंडी, आगरा

प्रथम संस्करण	मूल्य
मई १९६८	चार रुपए

निस्सीम श्रद्धा और भक्ति के साथ

तपोमूर्ति, मधुर प्रवक्ता

परम श्रद्धेय गुरुदेव

श्री पुष्करमुनिजी

महाराज के

चरणों में

सादर

—गणेश मुनि, शास्त्री

पुस्तक प्रकाशन में अर्थ सहयोग

•

श्री वर्धमान स्थानकवासी जन श्रावक सघ, पदराडा (राजस्थान)
श्रीमान सेठ गुलाबचन्द जी ताराचन्द जी परमार पदराडा (राज०)
श्रीमान् खेमराज जी सा दालावत, पदराडा (राजस्थान)
श्रीमान् नन्दलाल जी भैरुलाल जी परमार पदराडा (राजस्थान)
श्रीमान् भेरूलाल जी रूपचन्द जी दोलावत, पदराडा (राजस्थान)

आशीर्वचन

वतमान युग समस्याओ का युग है। समस्याएँ भी विभिन्न! विचित्र! कहीं छात्र आन्दोलन! कही तोड फोड, हडताल, कही हत्याए! वग विग्रह साम्प्रदायिक सघष, प्रान्तीय एव जातीय सघष आदि। राष्ट्रीय जीवन समस्याकुल है और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन भी। विश्व के सुदूर क्षितिज आज आशका, भय एव अविश्वास से प्रकम्पित हैं प्रताडित हैं।

समस्याओ के समाधान खोजे गए हैं खोजे जा रहे हैं, विश्व सरचना के इतिहास में इन समस्याओ का समाधान जो सर्वाधिक श्रेष्ठ एव प्रभावशाली प्रमाणित हुआ है, वह है अहिंसा! भारत व विदेश में अहिंसा आज विश्वशान्ति, और विश्वबन्धुत्व का अमोघ मन्त्र मान लिया गया है।

अहिंसा की व्यावहारिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए उसके विभिन्न अगो का विशद विवेचन श्री गणेश मुनि जी शास्त्री ने प्रस्तुत पुस्तक मे किया है। अहिंसा के सम्बन्ध मे लेखक निष्ठावान है और साथ ही व्यावहारिक बुद्धि से युक्त भी! अध्ययन एव अनुभव के आधार पर की गई उनकी विवेचना अहिंसा म निष्ठा रखने वाले प्रत्येक पाठक के लिए उपयोगी सिद्ध होगी ऐसा मुझे विश्वास है।

अपनी चिन्तनशील प्रज्ञा एव प्रवाहपूर्ण लेखनी के द्वारा श्री गणेश मुनि जी इसी प्रकार साहित्य समृद्धि की ओर सतत गतिमान रहेग—यही मगल कामना!

२०-४-६८
जन भवन, आगरा

—उपाध्याय अमर मुनि

प्रकाशकीय

●

'अहिंसा की बोलती मीनारें'—अहिंसा के सम्बन्ध में एक महत्व पूर्ण विचार चिन्तन एवं ऐतिहासिक पर्यालोचन है। आज के युग में अहिंसा के विकास की जितनी अधिक सम्भावनाएँ हैं तथा प्रचार प्रसार की जितनी अधिक आवश्यकता है उतनी सम्भवत पिछले युग में कभी अनुभव नहीं की गई होगी। आज का विश्व—युद्ध के कगार पर खडा है—जिसके एक ओर है—अशान्ति की धधकती ज्वाला, और दूसरी ओर है—सर्वनाश का भयानक दृश्य! वर्तमान परिस्थितियों में विश्व के त्राण का कोई अमोघ साधन है तो, अहिंसा ही है। इसीलिए समस्त ससार की दृष्टि आज अहिंसा पर टिकी है। शान्ति, सहयोग, सद्भाव, पचशील अणुशक्ति का शान्ति व विकास कार्यों में प्रयोग—ये सब अहिंसा के ही विभिन्न रूप हैं। मानव जाति के कल्याण के लिए अहिंसा ही अमृत-जडी है।

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् विचारक श्री गणेश मुनि जी ने अहिंसा के विभिन्न पहलुओं पर काफी विस्तार के साथ विश्लेषण किया है, और अहिंसा अपरिग्रह तथा अनेकान्त को जीवन में उतारने के लिए बडी तीव्र प्रेरणा के साथ प्रतिपादन किया है।

श्री गणेश मुनि जी श्रमण सघ के उपप्रवर्तक श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के सुयोग्य शिष्य हैं। आपकी 'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' नामक पुस्तक कुछ समय पूर्व आत्माराम एण्ड सन्स देहली से भी प्रकाशित हो चुकी है। मुनि श्री लेखक भी हैं कवि भी हैं प्रवक्ता भी हैं। स्थानकवासी समाज के एक होनहार मेधावी सन्त हैं। हमें उनसे बहुत आशाएँ हैं।

हमारे आग्रह पर पुस्तक की भूमिका लिखने का कार्य सुख्यात गांधीवादी विचारक व लेखक श्री यशपाल जी जैन ने स्वीकार किया तथा समय पर भूमिका लिखकर भेज सके एतदर्थ हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञ है। साथ ही आदरणीय आचार्य पुष्पराज जी का आभार मानते हैं जिन्होने स्नेहपूर्वक सहयोग नहीं किया होता तो सम्भवत श्री यशपाल जी की भूमिका इस पुस्तक म नहीं जुड पाती।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक अहिंसा के सम्बन्ध मे पाठकों को अनेक प्रकार की रुचिकर व जीवन निर्माणकारी विचार सामग्री प्रस्तुत करेगी, व अधिकाधिक लोकोपयोगी सिद्ध होगी।

—मन्त्री
सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

भूमिका

कई साल पहले की बात है। हमारे देश म विश्वशाति परिषद हुई थी, जिसम देश विदश के बहुत स शातिवादियो तथा अहिंसा प्रेमियो न भाग लिया था। यह परिषद् पहल पन्द्रह दिन शाति निकेतन म हुई थी, बाद म उतने ही दिन सेवाग्राम म। परिषद मे शाति स सबधित अनेक विषयो पर ता विचार विमश हुआ ही लकिन उससे भी बडा लाभ यह हुआ कि इतन देशा के लाग एक परिवार की भाति साथ रहे और उनक बीच घनिष्ठ सपक स्थापित हुए।

एक दिन सेवाग्राम मे एक अमरीकी सज्जन से बात होने लगी। वह हावड विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। मैंन उनसे पूछा कहिये, यहा आने का आपका मुख्य उद्दश्य क्या है?'

स्पष्ट था कि वह परिषद म शामिल होने के लिए यहा आये थे और यह उद्दश्य अपने आप म बडा महत्त्वपूर्ण था लेकिन मैं ता यह जानन का इच्छुक था, कि भारत के विषय मे उनकी क्या भावना है।

उन्होंने कहा, "बात यह है कि हमने आपकी अहिंसा के बारे म बहुत-कुछ सुन रखा है। हम यह भी पता है कि महात्मा गाधी न अहिंसा के द्वारा ही भारत को आजाद कराया था। हम यहा यह देखने के लिये आये हैं कि आप लोग अपनी दनिक समस्याओ का अहिंसात्मक ढग से कसे सुलभाते हैं।'

उन सज्जन ने जो कहा वह स्वाभाविक था। भयंकर से भयंकर प्राणघातक शस्त्रों का निर्माण और युद्ध क्षेत्रों में उनका प्रयोग करके दुनिया ने देख लिया कि छोटी-बड़ी किसी भी समस्या का स्थायी समाधान हिंसा से कदापि संभव नहीं। लेकिन अहिंसा का वास्तविक स्वरूप क्या है और वह व्यवहार में किस प्रकार कारगर हो सकती है, यह समझना शेष है।

अपने देश में और बाहर मुझे बहुत-से ऐसे व्यक्ति मिले जिनकी अहिंसा में गहरी दिलचस्पी है और वे ऐसा साहित्य चाहते हैं, जो अहिंसा के तात्विक पक्ष की तो जानकारी दे ही, साथ ही उसमें अहिंसा के व्यावहारिक पहलू पर भी प्रकाश डाला गया हो।

अहिंसा के विषय में हमारे देश में बहुत सा साहित्य उपलब्ध है, किन्तु अधिकांश पुस्तकें इतनी दुरूह हैं कि जिनकी धार्मिक अथवा आध्यात्मिक पृष्ठभूमि नहीं है, वे उन्हें समझ नहीं सकते। उन पुस्तकों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली तो ग्रीक लेटिन जैसी कठिन होती है। दूसरी बात यह है कि वे अहिंसा का विवेचन वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में चाहते हैं, जो उन्हें इन पुस्तकों में प्रायः नहीं मिलता।

अपने बहुत से लेखों तथा भाषणों में मैंने इस बात पर बराबर जोर दिया है कि हम सरल सुबोध भाषा में कुछ ऐसी पुस्तकें तैयार करनी चाहिए, जो सामान्य बुद्धि और सीमित ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की भी समझ में आ जाएं और वे उन्हें पढ़कर जान सकें कि अहिंसा की शक्ति कितनी तेजस्वी है और उस पर आचरण करके किस प्रकार राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जगत में स्थायी शांति और सुख स्थापित किया जा सकता है।

इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक को देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। इसके लेखक जैन मुनि हैं और उन्होंने अहिंसा तथा उससे संबंधित सभी विषयों का सूक्ष्म अध्ययन एवं चिंतन किया है, लेकिन इस पुस्तक में उन्होंने अहिंसा या और किसी विषय का शास्त्रीय विवेचन नहीं किया। सात खण्डों में उन्होंने अपनी बात इस ढंग से कही है कि सामान्य पाठक भी उसे हृदयगम कर सकता है। पहले खण्ड में उन्होंने अहिंसा के आदर्श को समझाया है, दूसरे में बताया

है कि मानव-जाति एक है, तीसरे मे इस बात पर प्रकाश डाला है कि अहिंसा की साधना किस प्रकार की जा सकती है। इस खण्ड के अन्तर्गत उन्होंने अपरिग्रह की विस्तार से चर्चा की है और दिखाया है कि विषमता की जननी सग्रहवृत्ति है। मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह सादा जीवन, उच्च विचार के आदर्श को सामने रखकर जीवन यापन करे।

बाद के चार अध्यायो म लेखक न अहिंसा के बुनियादी सिद्धाता का बडा ही सरल भाषा म विवेचन करते हुए उन चीजा को लिया है जिनका सबध हम सबके जीवन के साथ आता है। उदाहरण के लिए आज मानव समाज के सामन एक प्रश्न है कि वह शाकाहारी क्या और किस प्रकार रहे। इस प्रश्न का समुचित उत्तर पाचवे खण्ड मे मिल जाता है।

इसी प्रकार एक प्रश्न है कि अहिंसा और विज्ञान का किस प्रकार समन्वय हो। छठ अध्याय मे लेखक ने रेडियो-सक्रियता, आणविक शक्ति, अणु परीक्षण आदि का उल्लेख करते हुए प्रतिपादित किया है कि विज्ञान पर अहिंसा की किस प्रकार विजय होती जा रही है।

अतिम खण्ड म अहिंसा एव विश्वशाति के ज्वलत प्रश्न पर विचार किया गया है और यह बताते हुए कि इस दिशा मे भारत ने क्या योग दिया है, यह विश्वास प्रकट किया गया है कि अहिंसा की आधार शिला पर ही विश्वशाति का भवन खडा रह सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक सस्कृत प्राकृत हिंदी आदि भाषाओ के ज्ञाता हैं और अपनी अध्ययनशील वृत्ति के कारण उन्होंने इन भाषाओ के साहित्य को बारीकी से पढा है। अपनी बात को समझाने के लिए उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियो के मतव्य देने म सकोच नही किया।

सभव है, विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाले व्यक्ति लेखक की कतिपय मान्यताओ से सहमत न हो लेकिन कुल मिला कर पुस्तक अहिंसा की महिमा और उसके व्यावहारिक पक्ष पर सुपाठ्य सामग्री प्रदान करती है।

उन सज्जन ने जो कहा, वह स्वाभाविक था। भयंकर-से भयंकर आणविक अस्त्रों का निर्माण और कुछ अंशों में उनका प्रयोग करके दुनिया ने देख लिया कि छोटी बड़ी किसी भी समस्या का स्थायी समाधान हिंसा से कदापि संभव नहीं। लेकिन अहिंसा का वास्तविक स्वरूप क्या है और वह व्यवहार में किस प्रकार कारगर हो सकती है, यह समझना शेष है।

अपने देश में और बाहर मुझे बहुत-से ऐसे व्यक्ति मिले जिनकी अहिंसा में गहरी दिलचस्पी है और वे ऐसा साहित्य चाहते हैं, जो अहिंसा के तात्विक पक्ष की तो जानकारी दे ही, साथ ही उसमें अहिंसा के व्यावहारिक पहलू पर भी प्रकाश डाला गया हो।

अहिंसा के विषय में हमारे देश में बहुत सा साहित्य उपलब्ध है, किन्तु अधिकांश पुस्तकें इतनी दुरूह हैं कि जिनकी धार्मिक अथवा आध्यात्मिक पृष्ठभूमि नहीं है वे उन्हें समझ नहीं सकते। उन पुस्तकों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली तो ग्रीक लेटिन जैसी कठिन होती है। दूसरी बात यह है कि वे अहिंसा का विवेचन वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में चाहते हैं जो उन्हें इन पुस्तकों में प्रायः नहीं मिलता।

अपने बहुत से लेखों तथा भाषणों में मैंने इस बात पर बराबर जोर दिया है कि हम सरल सुबोध भाषा में कुछ ऐसी पुस्तकें तैयार करनी चाहिए, जो सामान्य बुद्धि और सीमित ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की भी समझ में आ जाए और वे उन्हें पढ़कर जान सकें कि अहिंसा की शक्ति कितनी तेजस्वी है और उस पर आचरण करके किस प्रकार राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जगत में स्थायी शांति और सुख स्थापित किया जा सकता है।

इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक को देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। इसके लेखक जैन मुनि हैं और उन्होंने अहिंसा तथा उससे संबंधित सभी विषयों का सूक्ष्म अध्ययन एवं चिंतन किया है, लेकिन इस पुस्तक में उन्होंने अहिंसा या और किसी विषय का शास्त्रीय विवेचन नहीं किया। सात खण्डों में उन्होंने अपनी बात इस ढंग से कही है कि सामान्य पाठक भी उसे हृदयंगम कर सकता है। पहले खण्ड में उन्होंने अहिंसा के आदर्श को समझाया है दूसरे में बताया

है कि मानव जाति एक है, तीसरे म इस बात पर प्रकाश डाला है कि अहिंसा की साधना किस प्रकार की जा सकती है। इस खण्ड के अतर्गत उन्होने अपरिग्रह की विस्तार से चर्चा की है और दिखाया है कि विषमता की जननी सग्रहवृत्ति है। मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह सादा जीवन उच्च विचार के आदर्श को सामने रखकर जीवन यापन करे।

बाद के चार अध्यायो मे लेखक ने अहिंसा के बुनियादी सिद्धान्तो का बडा ही सरल भाषा म विवेचन करते हुए उन चीजो को लिया है जिनका सबध हम सबके जीवन के साथ आता है। उदाहरण के लिए आज मानव समाज के सामने एक प्रश्न है कि वह शाकाहारी क्यो और किस प्रकार रहे। इस प्रश्न का समुचित उत्तर पाचवे खण्ड म मिल जाता है।

इसी प्रकार एक प्रश्न है कि अहिंसा और विज्ञान का किस प्रकार समन्वय हो। छठे अध्याय मे लेखक ने रेडियो-सक्रियता आणविक शक्ति, अणु परीक्षण आदि का उल्लेख करते हुए प्रतिपादित किया है कि विज्ञान पर अहिंसा की किस प्रकार विजय होती जा रही है।

अतिम खण्ड म अहिंसा एव विश्वशाति के ज्वलत प्रश्न पर विचार किया गया है और यह बताते हुए कि इस दिशा मे भारत ने क्या योग दिया है, यह विश्वास प्रकट किया गया है कि अहिंसा की आधार शिला पर ही विश्वशाति का भवन खडा रह सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक सस्कृत प्राकृत हिंदी आदि भाषाओ के ज्ञाता हैं और अपनी अध्ययनशील वृत्ति के कारण उन्होने इन भाषाओ के साहित्य को बारीकी से पढ़ा है। अपनी बात को समझाने के लिए उन्होने अन्य धर्मावलम्बियो के मतव्य देने म सकोच नही किया।

समव है विशुद्ध वज्ञानिक दृष्टि रखने वाले व्यक्ति लेखक की कतिपय मान्यताओ से सहमत न हो लेकिन कुल मिला कर पुस्तक अहिंसा की महिमा और उसके व्यावहारिक पक्ष पर सुपाठ्य सामग्री प्रदान करती है।

आज संसार में हिंसा का बोलबाला दिखाई देता है। अमरीका, रूस आदि देशों में अधिकाधिक आणविक शक्ति उपार्जित करके अपने प्रभुत्व के विस्तार की होड़ लगी है, लेकिन यह असामान्य स्थिति है। कोई भी राष्ट्र हिंसात्मक बल से दूसरे को अधिक समय तक दबाकर नहीं रख सकता। विज्ञान ने दुनिया को इतना छोटा बना दिया है कि यदि आज कहीं युद्ध होता है तो उसकी प्रतिक्रिया अन्य स्थानों पर तत्काल हो जाती है। स्वाधीनता की चेतना आज सभी राष्ट्रों में व्याप्त है।

ऐसी दशा में आज भारत का ही नहीं, अन्य देशों का भी चिंतन चल रहा है कि अहिंसा के मार्ग का किस प्रकार अवलम्बन करें, जिससे मानव जाति को व्यथित करने वाली अशान्ति दूर हो और छोटे-बड़े सभी राष्ट्र मिल कर एक-दूसरे के विकास में सहायक हों।

इस चिंतन को प्रस्तुत पुस्तक प्रोत्साहित करती है। मैं इसके लिए लेखक को हार्दिक बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि इस रचना का सभी क्षेत्रों में स्वागत होगा।

७/८ दरियागंज दिल्ली
२० मई १९६८

यशपाल जैन

मीनारो की भाषा

•

अहिंसा के सम्बन्ध म अब तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है वतमान म बहुत लिखा जा रहा है, और आने वाला भविष्य नवीन स्थिति परिस्थितियाँ उस सम्बन्ध म अधिक लिखने को प्रेरित करती रहेंगी।

'अहिंसा' एक तीन वर्ण का छोटा सा शब्द है किन्तु यह विष्णु के तीन चरण से भी अधिक विराट व व्यापक है। मानव जाति ही नही किन्तु समस्त चर-अचर प्राणि जगत इन तीन चरणों में समाया हुआ है। जहाँ अहिंसा है वहाँ जीवन है जहाँ अहिंसा का अभाव है वहाँ जीवन का अभाव है। जिस दिन इस सृष्टि पर जीव ने जन्म लिया था उसी दिन अहिंसा का भी जन्म हुआ था। और जब तक इस सृष्टि पर अहिंसा नाम का तत्त्व रहेगा जीव का अस्तित्व भी सुरक्षित रहेगा। जन दर्शन के अनुसार सृष्टि पर प्राणी का अवतरण अनादि है इसलिए वह अहिंसा को भी अनादि मानता है। जीवन और अहिंसा का अनादि सम्बन्ध है। अभिप्राय यह है कि जहाँ अहिंसा है वहाँ जीवन है और जहा जीवन है वहा अहिंसा है—यह व्याप्ति नित्यत्व य है।

अहिंसा एक विराट शक्ति है। जीवन के विविध पक्षो म इसके विविध प्रयोग मानव अनादिकाल से करता रहा है। जिन परिस्थितियो म जिस प्रकार के समाधान की आवश्यकता हुई—अहिंसा ने वह समाधान प्रस्तुत किया है। जीवन की सरल से सरल एव कठिन से कठिन हर परिस्थिति मे अहिंसा ने मनुष्य का साथ दिया है उसके अस्तित्व की रक्षा की है उसके जीवन की समस्या को सुलझाया है और उसके कल्याण का माग प्रशस्त किया है।

जिस युग म एक कबीला दूसरे कबीलो से लड़ता था। एक जाति दूसरी जाति के साथ सघप, युद्ध और विग्रह खडे करती थी, आय अनार्य

परस्पर एक दूसरे के खून से नहाते थे और विजयी जाति पराजित जाति को दास बनाकर उस पर शासन करती थी उस समय में अहिंसा ने मैत्री का मधुर सन्देश दिया। उसका स्वर मुखरित हुआ— मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे'— हम परस्पर एक दूसरे को मित्र की आंखों से देखें। पराजित विजेता को अपना मित्र मानें और विजेता भी पराजित को अपना स्नेह सद्भाव अर्पण करें। घृणा और द्वेष से दूर रहें मा विद्विषावहै—कोई किसी से द्वेष नहीं करे। ये उस युग के स्वर हैं जब कि मानव सभ्यता की प्रथम देहली पर चरण धर रहा था। वेदों मे अहिंसा का यही मैत्री और अभय रूप व्यक्त हुआ है। उस युग में मानव की प्रगति और विकास के लिए सबसे पहली आवश्यकता थी मनुष्य मनुष्य परस्पर एक दूसरे से लड़ें नहीं मैत्री पूर्वक रहें और जीवन में भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास का अवसर प्राप्त करें। मानव सभ्यता के आदि युग में अहिंसा-मैत्री के रूप में विकसित हुई थी। और मनुष्य जाति को मैत्री के एक सूत्र में बांधने का प्रयोग चल रहा था। ऋग्वेद कालीन सभ्यता में मैत्री भावना की यह गूंज स्पष्ट सुनाई देती है।

युग बदला परिस्थितियां बदलीं। मानव जाति संगठित होकर विकास के पथ पर आगे बढ़ने लगी। परस्पर एक दूसरे से लड़ने वाले मनुष्य एक ही स्थान पर नगर का निर्माण करके साथ साथ रहने लगे। पारस्परिक सहवास से मनुष्य मनुष्य के प्रति उतना क्रूर नहीं रहा किंतु उसकी यह क्रूरता धीरे धीरे पशु जाति के प्रति प्रवाहित होती गई। उसकी मनोग्रन्थियों का रूप बदल गया। कुछ स्वार्थी तत्त्व भी इस रूप में सहयोगी बन और देवी देवता धर्म-स्वर्ग और मोक्ष के नाम पर पशुयज्ञ, पशु बलि का एक प्रवाह सा उमड़ पड़ा। मनुष्य के अंतःकरण में छिपी हुई क्रूरता द्वेष घृणा एवं संघर्ष की ग्रंथियां मूक पशु जाति एवं उस मानवजाति के प्रति जो कि बुद्धि बल एवं ऐश्वर्य में उससे हीन थी, क्रूरता, घृणा और द्वेष के रूप में बदल गईं। मूल रूप में मानव मानव समान होते हुए भी मानव को उसने दास बनाया, उसके छोटे से अपराध पर क्रूरतम दंड की व्यवस्था की और मांस लोलुप होकर धर्म के नाम पर पशुवध तथा प्राणि हिंसा को उचित ठहराया उसे शास्त्राज्ञा का रूप भी दिया। इस प्रकार आभिजात्यता के आवरण में घृणा, एवं धर्म व देव पूजा के आवरण में क्रूरता पलने लगी। जो हिंसा विद्वेष के रूप में प्रबल हो रही थी वह इस युग में घृणा एवं क्रूरता का मुखौटा लगाकर चलने लगी।

हिंसा का एक दूसरा रूप भी समाज में धीरे धीरे प्रबल हो रहा था— वह था बौद्धिक विग्रह। आर्थिक असमानता का रोग प्रारम्भ से ही समाज

के शरीर को गलाता जा रहा था अब बौद्धिक असमानता भी उसी प्रकार एक रोग के रूप म समाज के स्वास्थ्य को निगलने लगी।

एक ओर श्रीमन्ता के महलों में अपार वभव जमा पडा था सुख सुविधाओं के अगणित साधन उनके पास थे और रात दिन भोग विलास म डूबे रहते थे तो दूसरा ओर समाज में गरीबी और दरिद्रता पल रही थी। जीवन-यापन के साधना के अभाव में मनुष्य अपने को बेच रहा था—अपने बच्चो को और अपनी पत्नी तक को बच डालता था। और एक पशु स भी गया-गुजरा जीवन विताने को मजबूर हो रहा था। जन एव बौद्ध आगमो म उल्लिखित घटनाए उस युग की मानवजाति व सभ्यता के इस कृष्ण पक्ष को हमारे समक्ष आज भी खोलकर रख देती है। जब एक-एक श्रीमत गृहस्थ पशुओ की तरह सकडो दास-दासियों का खरीद कर अपने अधीन रखता था। एक एक नगर गणिका के अधीन हजारो सुन्दरियाँ रहती थी और वे चन्द चांदी के टुकडो पर अपना रूप, यौवन और सुन्दर दह समाज के विलासी श्रीमन्तों को लुटाती थी। किसी एक नगर म हजारा गणिकाओं का होना और किसी एक श्रीमत के अधीन सकडो दास-दासिया का रहना समाज की श्रेष्ठता और समृद्धि का चित्रण नहीं किन्तु उसकी आर्थिक विषमता विवशता एव दमतोड दरिद्रता का ही चित्रण हो सकता है। हाँ तो इस आर्थिक वषम्य से मानव समाज को मुक्त करने के लिए अहिंसा का अपरिग्रह के रूप म प्रयोग हुआ। जो अहिंसा मत्री व अभय क रूप म विकसित हो रही थी युग की आवश्यकताओं ने उसम अपरिग्रह का एक नया रूप भी जोड दिया।

आज से तीन सहस्राब्दी पूर्व के मानव समाज का इतिहास देखने से ज्ञात होता है उस समय समाज म चार प्रमुख रोग थे—क्रूरता घृणा गरीबी एव बौद्धिक विग्रह।

सत्ता एव धर्माधिकारी वर्ग क्रूर होरहा था आभिजात्य वर्ग निम्न वर्ग के प्रति घृणा एव द्वेष की भावनाओं म ग्रस्त था। श्रीमत समाज अपने भोग विलास म डूबकर समाज की गरीबी का अनुचित लाभ उठाता हुआ मनुष्य को पशु की तरह उत्पीडित कर रहा था और समाज का बुद्धिमान वर्ग अपनी-अपनी बात को सिद्ध करने के लिये परस्पर बौद्धिक विग्रह के अखाड जमाए बैठा था। वह अल्प बुद्धि वालो को पशु की तरह हांक रहा था।

इस प्रकार हिंसा के ये चार रूप मानव समाज के लिए चार महारोग थे। इन चारो रोगो को दूर करने के लिए युग के महान चिंतको ने चार उपचार

प्रस्तुत किए—क्रूरता एवं पशु हिंसा को मिटाने के लिए करुणा और दया का का प्रचार हुआ। जातीय घृणा एवं द्वेष के उच्छेद के लिए समानता की भावना समता—आत्मौपम्य दृष्टि का विकास किया गया। आर्थिक विषमता और तज्जनित अनर्थों को रोकने के लिए अपरिग्रह या इच्छापरिमाण का सिद्धान्त सामने आया और बौद्धिक विग्रह एवं वैचारिक दुराग्रहों को समाप्त करने के लिए अनेकान्तवाद का सुन्दर प्रयोग हुआ।

गीता की भाषा में कहें तो उस युग में अहिंसा भगवती का इन चार रूपों में अवतार हुआ और समाज के दुःख दारिद्र्य विग्रह एवं संघर्षों के उपशमन का एक नया युग प्रारम्भ हुआ।

भगवान महावीर और तथागत बुद्ध इस नवयुग के सूत्रधार थे। महावीर का प्रत्येक उपदेश समता (सामायिक) त्याग (अपरिग्रह) और सम्यग् दृष्टि (अनेकांत) की भावना से ओत प्रोत रहता था। तो तथागत बुद्ध भी करुणा के मसीहा बनकर जनता के कष्टों और दुःखों का मैत्री और स्नेह की भावना से उपचार करने में संलग्न हो जनपद में पादचारिका करने लगे।

यह निश्चित मत है कि—जब-जब समाज में हिंसा का प्राबल्य होता है तब तब अहिंसा के विकास का अधिक-अधिक अवसर होता है। उसके विकास की अधिक संभावनाएँ एवं अत्यधिक आवश्यकता भी रहती है। ढाई हजार वर्ष पूर्व का भारत जब हिंसा की विविध रूपों में प्रस्फुटित व्याधियों से संत्रस्त था, धार्मिक, बौद्धिक तथा सामाजिक कुण्ठाओं से जकड़ा हुआ था तब अहिंसा का शंखनाद करने वाले दो देवता भारत भूमि पर अवतरित हुए थे। उनके अमृत तुल्य उपदेशों से मानव समाज निश्चित ही शांति का अनुभव करने लगा था। वह क्रूरता से करुणा की ओर विषमता से समता की ओर संग्रह एवं आर्थिक वैषम्य से अपरिग्रह की ओर तथा बौद्धिकविग्रह से वैचारिक समता अनेकान्त की ओर बढ़ा और उस मार्ग पर चलकर जीवन का आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास करता रहा।

किसी भयंकर बिमारी से एक बार मुक्त होने के बाद यदि खान पान का संतुलन न रखा जाय, आहार व्यवहार का विवेक न रखा जाय तो वह बिमारी पुनः उसी रूप में बल्कि उससे भी भयंकर रूप में और कुछ भिन्न रूपों में भी उभर कर सामने आती है और शरीर के स्वास्थ्य को चौपट कर

डालती है। ऐसा ही कुछ मध्यकाल में हुआ। महावीर और बुद्ध ने समाज की जिन बीमारियों को मिटाने के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया था उनके कुछ समय पश्चात् ही वे बीमारियाँ समाज के शरीर में पुनः भयंकर रूप में फूट पड़ी। जिस हिंसा महारोग का निदान करके विविध रूपों में उपचार किया गया था कुछ समय पश्चात् वह रोग पुनः भड़क उठा। समाज में हिंसा का पुनः प्राबल्य हुआ धार्मिक व साम्प्रदायिक उन्माद विग्रह जातीय विद्वेष पशु दास एवं नारी पर मनमाने अत्याचार (सती प्रथा) तथा शोषण और अर्थ संग्रह का दुष्चक्र—हिंसा के ये विविध रूप मानव जाति को फिर आतंकित करने लगे और वे आज तक की स्थिति में करते आ रहे हैं। यह ठीक है कि कुछ उपचार भी हुए पर जिस मात्रा में उपचार होना था रोग उस मात्रा से अधिक प्रबल और गहरा था इसलिए रोग मिट नहीं पाया बल्कि कहना चाहिए कि अन्य कई रूपों में फूटता रहा।

वर्तमान का मानव समाज हिंसा के हजारों-हजार आतंककारी रूपों में त्रस्त है और त्राहि त्राहि कर रहा है।

आज का मानव पहले से अधिक सस्कृत और विकसित हो रहा है वैज्ञानिक उपलब्धियों के बल पर वह पुराने जमाने के देवता व इन्द्र की तरह आज जो चाहे सो कर सकता है। प्रकृति के अनन्त रहस्यों की खोज में वह आज अणु शक्ति जैसे महान रहस्य को प्राप्त कर चुका है। इतना सब कुछ होने पर भी वह आज पहले से अधिक अशांत है उत्पीड़ित है भयग्रस्त है मानसिक कुण्ठाओं से ग्रस्त हुआ है। आणविकयुद्धों की विभीषिका उसके सिर पर खड़ी है पता नहीं, कब एक आणविक विस्फोट हो और मानव जाति हाहाकार करती हुई जलकर ढेर हो जाए।

विज्ञान ने संसार को छोटा बना दिया है किन्तु उसने मनुष्यों के हृदयों को और भी छोटा बना दिया है। आज मनुष्य के हृदय में प्रेम करुणा स्नेह एवं बन्धुत्व के भाव समाप्त हो रहे हैं जैसे इन्हें ठहरने के लिए उसके हृदय में कोई स्थान भी नहीं है।

वर्तमान युग में मनुष्य के समक्ष अनेक समस्याएँ हैं कहना चाहिए मकड़ी के जाल की तरह उसने ही समस्याओं को जन्म दिया है और स्वयं ही उनमें उलझ गया है। कहीं आर्थिक विषमताओं का दुष्चक्र चल रहा है शोषण और उत्पीड़न में मानव जाति सन्त्रस्त हो रही है, तो कहीं वैचारिक

संघर्ष के कारण एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति शत्रु भावना रखते हुए उसे आतंकित किए रहना चाहता है। वर्ग भेद, वर्ण भेद, प्रान्तीयता, जातीयता, धार्मिक कलह आर्थिक शोषण और काम एवं भोग विलास की उद्दाम प्रवृत्त आकांक्षाएं—मनुष्य को आज अशान्त और व्यथित किए हुए हैं।

वर्तमान में मानव हत्या से मनुष्य डरने लगा है। यह एक बहुत बड़ा अपराध मान लिया गया है। मानव का शोषण भी वर्तमान समाज-व्यवस्था में निन्दनीय है। यह अहिंसा की भावना का एक हद तक विकास कहा जा सकता है। किन्तु हम इस अहिंसा का विकास नहीं मान सकते, चूंकि वही मानव जो मानव हिंसा को अपराध मानता है पशु हिंसा के लिए आज भयंकर तम साधन जुटा रहा है। मांसाहार से वह अपनी लोलुप वृत्तियों को भी तृप्त करना चाहता है और उससे आर्थिक साधन जुटाने का एक मार्ग भी समझ रहा है। मनुष्य की बुद्धि की यह दुहरी विडम्बना है। मूक पशुओं के प्रिय प्राणों के साथ खिलवाड़ है और है जीवन का चारित्रिक व आध्यात्मिक पतन!

मांसाहार पुराने जमाने में भी था पर वह आज की तरह आम भोजन नहीं था कुछ विशेष वर्गों में और वह भी विशेष अवसरों पर ही होता था। किन्तु आज तो यह प्रवृत्ति सुरसा के मुंह की तरह विकराल रूप लिए जा रही है। मांसाहार से देश की खाद्य समस्या को सुलझाने वाले और पशुहत्या पशुचर्म पशुअस्थि आदि से देश की गरीबी मिटाने वालों की नाजुक बुद्धि पर मुझे तरस आ रहा है। वस्तुतः वे एक भयंकर भूल कर रहे हैं और ऐसी भूल, जो उन्हें ही नहीं किन्तु समाज व राष्ट्र को भी एक दिन रसातल में पहुँचा देगी। अणु आयुधों से विश्व शान्ति की कामना करना जैसी भयंकर बेवकूफी है वैसी ही बेवकूफी मांसाहार के सम्बन्ध में वर्तमान में भारतीय नेताओं के मस्तिष्क में छाई हुई है। भारतीय संस्कृति का मूल शाकाहार है, शाकाहारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने का अर्थ है—कृषि, पशुपालन, गो रक्षण आदि लाभकारी एवं संस्कृति संरक्षक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन। वस्तुतः कृषि एवं पशुपालन से ही भारत की खाद्य समस्या हल हो सकती है और कृषक तथा श्रमिक वर्ग की गरीबी दूर हो सकती है। भूख और गरीबी दूर होगी तो बहुत से वर्ग-संघर्ष शोषण एवं उत्पीड़न के स्रोत स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे और अहिंसा के विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

वर्तमान की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति काफी तनाव पूर्ण तथा उलझी हुई है। विश्व के राजनीतिक क्षितिज पर नये नये स्वप्न व राष्ट्र चमक रहे हैं और

सघष के कारण एक राष्ट्र, दूसरे राष्ट्र के प्रति शत्रु भावना रखे हुए उसे आतंकित किए रहना चाहता है। वग अन्त वर्ण भेद, प्रान्तीयता, जातीयता, धार्मिक कलह आर्थिक शोषण और साथ ही भोग विलास की उद्दाम अतृप्त आकाक्षाए—मनुष्य को आज अशात और वचन किए हुए हैं।

वतमान म मानव हत्या से मनुष्य डरने लगा है। वह एक बहुत बडा अपराध मान लिया गया है। मानव का शोषण भी वतमान समाज-व्यवस्था मे निन्दनीय है। यह अहिंसा की भावना का एक हद तक विकास कहा जा सकता है। किंतु हम इस अहिंसा का विकास नही मान सकते चूंकि वही मानव जो मानव हिंसा को अपराध मानता है पशु हिंसा के लिए आज भयकर तम साधन जुटा रहा है। मासाहार से वह अपनी लोलुप वृत्तियो को भी तृप्त करना चाहता है और उससे आर्थिक साधन जुटाने का एक मार्ग भी समझ रहा है। मनुष्य की बुद्धि की यह दुहरी विडम्बना है। मूक पशुओ के प्रिय प्राणो के साथ खिलवाड है और है जीवन का चारित्रिक व आध्यात्मिक पतन!

मांसाहार पुराने जमाने मे भी था पर वह आज की तरह आम भोजन नही था कुछ विशेष वर्गो म और वह भी विशेष अवसरो पर ही होता था। किन्तु आज तो यह प्रवृत्ति सुरसा के मुह की तरह विकराल रूप लिए जा रही है। मांसाहार स देश की खाद्य समस्या को सुलझाने वाले और पशुहत्या पशुचम, पशुअस्थि आदि स देश की गरीबी मिटाने वालो की नाजुक बुद्धि पर मुझे तरस आ रहा है। वस्तुत व एक भयकर भूल कर रहे हैं और ऐसी भूल, जो उन्हे ही नही किन्तु समाज व राष्ट्र को भी एक दिन रसातल मे पहुँचा देगी। अणु आयुधो से विश्व शान्ति की कामना करना जसी भयकर बेवकूफी है वसी ही बेवकूफी मांसाहार के सम्बन्ध में वतमान मे भारतीय नेताओ के मस्तिष्क म छाई हुई हैं। भारतीय संस्कृति का मूल शाकाहार है शाकाहारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने का अथ है—कृषि पशुपालन, गो रक्षण आदि लाभकारी एव सस्कृति सरक्षक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन। वस्तुत कृषि एव पशुपालन से ही भारत की खाद्य समस्या हल हो सकती है और कृषक तथा श्रमिक वग की गरीबी नष्ट हो सकती है। भूख और गरीबी दूर होगी तो बहुत स वग-सघर्ष शोषण एव उत्पीडन के स्रोत स्वत ही समाप्त हो जायेंगे और अहिंसा के विकास का माग प्रशस्त हो सकेगा।

वतमान की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति काफी तनाव पूर्ण तथा उलझी हुई है। विश्व के राजनीतिक क्षितिज पर नये नये स्वतन्त्र राष्ट्र चमक रहे हैं और

साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रभुत्व अस्त हो रहा है। किन्तु इसी का दूसरा पक्ष बहुत ही भयकार पूर्ण है और वह है राष्ट्रों में सामरिक शक्ति की प्रतिस्पर्धा। बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों को, कोरिया वियतनाम इजरायल जैसे क्षेत्रों को अपना अखाड़ा बनाकर अपनी शक्ति प्रदर्शन करके विश्व को आतंकित रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। विश्व शांति के लिए ये सब खतर हैं। सूत के कच्चे धागे की तरह विश्व शांति का धागा आज अधर म लटक रहा है पता नहीं किन अविवेकी हाथों के एक झटके से टूट जाये और समूचा विश्व युद्ध की लपटों म भुलस पड़। विश्व के राजनीतिक तनाव को कम करने के लिए भारत ने सह-अस्तित्व नि शस्त्रीकरण आदि के सिद्धान्तों को पचशील के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वर्तमान विश्व की भयाकुल तथा तनावपूर्ण स्थितियों म अहिंसा का यह नया प्रयोग है—नये नाम से नई शैली स।

अहिंसा के इस नूतन प्रयोग का श्रेय महात्मा गाधी और विश्व शांति के अमरपुजारी स्व० नहरू को है। गाधी जी न जिस चिंतन पूर्ण एव दृढ आस्था युक्त शैली से अहिंसा के प्रयोगों से मानव समाज की समस्याओं को सुलझान का प्रयत्न किया—वह उन्हें अहिंसा के अमर देवता के रूप में ससार के समक्ष प्रस्तुत करने वाला था।

स्व० श्री नहरू ने गाधी जी क दशन एव चिन्तन के अनुसार अहिंसा को विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों को सुलझाने वाल एक अमोघ साधन के रूप में प्रयोग किया है। वह पचशील का सिद्धान्त आज विश्व शांति का प्रतीक है विकासशील अहिंसात्मक चिंतन का प्रतीक है।

विश्व जनमत ने इसका आदर किया है और आशा भरी निगाह से देखा है किन्तु जब तक विश्व के मुख्य राजनयिक एव शक्तिसपन्न राष्ट्र इस सिद्धात पर निष्ठा पूर्वक आचरण नहीं करते तब तक केवल विश्व शान्ति के नारों स और निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी शिखर-वार्ताओं स कुछ भी होन वाला नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक म अहिंसा स सम्बन्धित इन्हीं सब समस्याओं पर ऐतिहासिक सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दृष्टि स समग्र विचार करने का प्रयत्न किया है।

करुणा अनेकान्त, अपरिग्रह शोषण मुक्ति सहअस्तित्व—नि शस्त्रीकरण, शाकाहार एव विश्व शांति ये सब अहिंसा की स्वतन्त्र मीनारें हैं जिनकी असीम ऊंचाई पर भारत का चिंतन सदा स उन्मुखी रहा है। आज इन मीनारों के कण-कण स एक पुकार ध्वनित हो रही है, और जीवन के कोलाहल

में बहकर होकर चलते हुए इंसानों को आगाह कर रही है, दिशा-दर्शन कर रहा है। आवश्यकता है यह शांति पूर्वक इन मीनारों से अभिव्यक्त होने वाली ध्वनियों को सुने, उनकी भाषा का मनन-चिन्तन करे और जीवन व जगत की समस्याओं को सुलझाने में सम्पूर्ण मनोयोग के साथ जुट जाये।

मुझे विश्वास है कि विश्व शान्ति के इच्छुक सहृदय मीनारों की भाषा को समझने का प्रयत्न करेंगे, अहिंसा की इस विराग कहानी को नये युग के नये अध्याय से जोड़कर पढ़ने का यत्न करेंगे तो उन्हें अवश्य ही जीवन में शांति, प्रीति और विश्वास का अमृत प्राप्त हो सकेगा।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में जिन अनेक सुहृद एवं सहृदयों का आत्मीय स्नेह एवं सहयोग प्राप्त हुआ है उनके प्रति औपचारिक आभार प्रदर्शन करके उनके असीम स्नेह को सीमाओं में बांधना नहीं चाहता, किन्तु फिर भी उनके प्रति आभार व्यक्त किए बिना मन मस्तिष्क हलका भी नहीं हो पा रहा है।

सर्वप्रथम मैं श्रद्धास्पद गुरुवर श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करूंगा जिनकी प्रेरणा और दिशादर्शन ही मेरे साहित्यिक जीवन का सम्बल रहा है। मेरे परम स्नेही साथी श्री देवेन्द्रमुनि जी महाराज का सौजन्य एवं स्नेह तो मेरे लेखन कार्य का परम सहयोगी रहा है, उन्हें विस्मृत किया ही नहीं जा सकता। सिद्धान्त प्रभाकर श्री हीरामुनि जी महाराज श्री जिनेन्द्र मुनि जी श्री रमेश मुनि जी श्री राजेन्द्र मुनि जी और श्री पुनीत मुनि जी आदि मुनि मण्डल का स्नेह एवं सेवा पूर्ण व्यवहार मेरे लेखन कार्य में अत्यधिक सहयोगी रहा है।

परम श्रद्धेय कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज का मधुरस्नेह मुझे बरबस उनके प्रति कृतज्ञतावश विनत कर देता है। उनके सहज प्रेरक सौमनस्य का ही फल है कि पुस्तक सन्मति ज्ञान पीठ जैसे सुविश्रुत साहित्यिक प्रतिष्ठान से प्रकाशित हो रही है।

जैन जगत के यशस्वी लेखक पण्डित शोभाचन्द्र जी भारिल्ल एवं सुयोग्य सम्पादक श्रीचन्द्र जी सुराना 'सरस' के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करना चाहूँगा, जिन्होंने पुस्तक की पाण्डुलिपि को ध्यान पूर्वक अवलोकन किया व आवश्यक संशोधन, परिमार्जन भी।

अन्त मे मैं भूमिका लेखक श्री यशपाल जी जन का भी हार्दिक कृतज्ञ हू । जिन्होंने अपने व्यस्त समय म से भी अवकाश निकाल कर पुस्तक पर भूमिका लिखने का मेरा आग्रह मान्य किया है ।

सभी स्नेही साथियो के आभार के साथ ही अपने प्रिय पाठकों से विश्वास भी करता हू कि यह पुस्तक उन्हें अपनी सास्कृतिक सुरुचि के अनुरूप ही पाठ्य सामग्री प्रस्तुत कर आत्म सतोष देगी ।

श्री हरखचन्द कोठारी हाल
राजहंस
वालकेश्वर—बम्बई

—गणेश मुनि शास्त्री

मीनारों का आरोहण-क्रम

•

		पृष्ठ
१	अहिंसा : एक परिशीलन	१—१२
२	सामाजिक हिंसा : एक चिंतन	१३—७३
३	अहिंसा की साधना : अपरिग्रहवाद	७४—१००
४	अहिंसा और अनेकान्तवाद	१०१—१२०
५	भारतीय परम्परा में शाकाहार का रूप	१२१—१५२
६	अहिंसा के अंचल में विज्ञान	१५३—१८७
७	अहिंसा बनाम विश्वशान्ति	१८८—२३२

अहिंसा की बोलती मीनारें

एक
अहिंसा : एक परिशीलन

* दो संस्कृतियाँ
भारतीय संस्कृति

* अहिंसा का आदर्श
हिंसा और उसके प्रकार
भाव हिंसा : निदान
चौभंगी का विधान

* अहिंसा का मधुर संगीत
समन्वयोग की साधना : अहिंसा
समन्वयोग की प्रेरणा
आत्मौपम्य दृष्टि
जीओ और जीने दो

* अहिंसा की विराट् दृष्टि
अहिंसा बाधक नहीं, साधक है !
अहिंसा वीरों का धर्म है

प्रतीकार के दो रूप

अहिंसात्मक प्रतीकार

अहिंसा और राजनीति

• विभिन्न मतों में अहिंसा का निरूपण

जैन धर्म

विधेयात्मक और निषेधात्मक

बौद्ध धर्म

वैदिक धर्म

इस्लाम धर्म

ईसाई धर्म

यहूदी धर्म

पारसी धर्म

समीक्षात्मक एक दृष्टि

• अहिंसा की आवश्यकता

१ |

दो सस्कृतियाँ

•

*इस ग्रनन ग्रसीम विराट विश्व के मूल म दो मौलिक पदाथ है जो ग्रपना शाश्वत एव स्वतत्र ग्रस्तित्व रखत है और एक दूसरे के रूप म परिणत नही होते । उनम एक चेतन है जिसे ग्रात्मा कहते है और दूसरा है ग्रचेतन–जड । पूर्वीय दशा के चिन्तन का, जिनम भारतवष प्रधान है केन्द्रबिन्दु ग्रात्मा रहा है । भारतीय मनीषियो ने ग्रात्मा के चिन्तन मनन और निदिध्यासन पर ग्रत्यधिक बल दिया है । भारतीय दशनो का मुख्य लक्ष्य ग्रात्मा की खोज करना रहा है । इसी कारण भारतीय ग्राचार तथा नीतिशास्त्र न भी ऐसी ही ग्राचारप्रणालिका निर्धारित की है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप म ग्रात्म शुद्धि या ग्रात्म विकास म सहायक हो, किन्तु पाश्चात्य विचारको म ग्रात्म विषयक वसी स्फूतजिज्ञासा दृष्टिगोचर नही होती । वहाँ भौतिक तत्व के विचार और विश्लेषण को इतनी मुख्यता दी गई है कि ग्रात्मतत्व उपेक्षणीय बन गया है । इसी लक्ष्यभेद के कारण पूव और पश्चिम की सस्कृति दो भिन्न भिन्न धाराग्रो मे बहती हुई प्रतीत होती है । विश्व के रगमच पर प्रधान रूप से दो सस्कृतियाँ चमक रही हैं । प्रथम पौर्वात्य और दूसरी पाश्चात्य । पौर्वात्य सस्कृति मुख्यत भारतीय सस्कृति है तथा पाश्चात्यसस्कृति युरोपियनसस्कृति । भारतीय सस्कृति का भुकाव मुख्यत त्याग सेवा, वराग्य, ग्रात्मानुशासन ग्रादि की ग्रोर रहा है और पाश्चात्य सस्कृति का भोग विलास, जीवन की भौतिक समृद्धि, सुख-सुविधा ग्रादि की ग्रोर । प्रथम सस्कृति साधक को निरन्तर ग्रात्म निरीक्षण, ग्रात्मशाधन एव परमात्मपद की उपलब्धि के लिए उत्प्रेरित करती रही है । ग्रात्मानुशासन, सयम एव सदाचार का पाठ पढाती रही है । इस सस्कृति ने पालने म

भूलते हुए नवजात शिशुओ को भी—"शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि, ससारमायापरिवर्जितोऽसि' की लोरियाँ देकर प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक उच्च संस्कारो को अकुरित करने की प्रेरणा दी है, तो दूसरी संस्कृति नित नये भौतिक अनुसधान, सुख-समृद्धि की असीम पिपासा एव आधिभौतिक समृद्धि की प्रतिस्पर्धा मे मनुष्य को बेतहाशा दौडाती रही है। वहाँ आत्मानुशासन के स्थान पर शासन तथा सयम के स्थान पर असीम भोगेच्छा, दैहिक आनन्द ही प्रमुख रहा है।

प्रथम संस्कृति अन्तर्दर्शन की संस्कृति है। आत्मआनन्द की संस्कृति है तो दूसरी बहिर्दर्शन एव बाह्य आनन्द की संस्कृति है। प्रथम मे साधक की अनन्त आत्मशक्तियो का उद्बोधन एव विकास करने की प्रेरणा है, तो दूसरी मे सिर्फ जड की उपासना एव भौतिक शक्तियो के विकास तथा अर्जन की आकुलता है।

भारतीय तत्वचिन्तको की समस्त शक्तियो का प्रवाह आत्मतत्व के अनुसधान की दिशा मे प्रवाहित होता रहा है। वहाँ पर—"आत्मा वा अरे द्रष्टव्य' एव आत्मा हु मुणेयव्वो' आत्मा को देखना चाहिए आत्मा का मनन, अनुसधान करना चाहिए, के स्वर निरन्तर मुखरित होते रहे है जब कि पाश्चात्यसंस्कृति के विचारको ने प्रकृति और परमाणु पर ही अपना अध्यवसाय केन्द्रित करके उनका विश्लेषण किया, विज्ञान के क्षेत्र मे नये-नये चमत्कार पूर्ण प्रयोग किए।

आज मानवजीवन की प्रत्येक दिशा मे विज्ञान की गूज है। विज्ञान अपनी अभिनव चमत्कृतियो से मानव मन को आश्चर्यान्वित कर रहा है। आज का मानव इसके प्रति अधिक से अधिक आकृष्ट होता जा रहा है जैसे अन्तिमलक्ष्य प्राप्ति का यही एक मात्र स्वर्णिम पथ हो। इतिहास, गणित, भूगोल, खगोल, भूगर्भ, जीव, पदार्थ, कला, कृषि, शिक्षा, मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान आणविकशस्त्रास्त्र आदि सभी क्षेत्रो मे विज्ञान के अद्भुत चमत्कारो से मानव चमत्कृत हो रहा है। विज्ञान की प्रगति मे नये-नये अध्याय जुडते जा रहे हैं। सम्प्रति आध्यात्मिक खोज की ओर वैज्ञानिको का कुछ झुकाव हो रहा है किन्तु इस दिशा मे अब तक कोई मौलिक

अन्वेषण वैज्ञानिकों ने नहीं किया है और शायद उनके लिए उन्हे अवकाश भी नहीं है। किन्तु भारत अपने आध्यात्मिक चिन्तन की गरिमापूर्ण थाती को अब भी सम्भाले हुए है अतः निःसंदेह कहा जा सकता कि आध्यात्मिक विज्ञान में वह सब से अग्रसर है।

भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति की गहरी जड़ें आत्मवाद में हैं। वह आत्मवाद की संस्कृति है। यहाँ के दार्शनिकों, मनीषियों एवं तीर्थंकरों का ध्यान आत्मा की ओर रहा है। उनकी चिन्तन धारा का केन्द्र बिन्दु आत्मा है। यहाँ के चिन्तकों ने भौतिकशक्ति पर विजय वैजयन्ती फहराना मात्र मानव का लक्ष्य नहीं माना है। बाह्य शक्ति का विकास स्वल्पकालीन सुख शान्ति का सर्जक भले ही हो पर स्थायी शान्ति का जनक नहीं हो सकता। शाश्वत शान्ति के लिए तो आखिर मनुष्य को आत्मानुसंधान करना ही होगा। जब वह अपने आपको समझेगा अपने आप पर अनुशासन करना सीखेगा, विश्व विजय या प्रकृतिविजय की आकांक्षाओं के स्थान पर आत्मविजय के लिए कदम बढाएगा, तभी उसको स्थायी शान्ति का अक्षयस्रोत लहराता मिलेगा। भारतीय संस्कृति के महान चिन्तक तीर्थंकर महावीर ने मनुष्य को आत्मविजय की अमर प्रेरणा देते हुए मगध जनपद के अठारह गणराजाओं एवं अनेक वीर सामन्तों की सभा में अपने अंतिम संदेश में कहा था—'एक व्यक्ति हजारों लाखों योद्धाओं को समराङ्गण में परास्त कर सकता है, फिर भी वह उसकी वास्तविक विजय नहीं है। वास्तविक विजय तो है—आत्मविजय करने में।'[1] महावीर के चिन्तन की यही प्रतिध्वनि शाक्यपुत्र तथागत की वाणी में भी मुखरित हुई है।[2] और उनसे भी हजारों वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति के अमर उद्गाता कर्मयोगी श्री कृष्ण ने कुरुक्षेत्र में उपस्थित हजारों लाखों वीर योद्धाओं को सम्बोधित कर यही बात

---

१ जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं एस से परमो जओ॥ उत्तराध्ययन सूत्र ९-३४

२ यो सहस्सं सहस्सेन, संगामे मानुसे जिने।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे संगामजुत्तमो॥ —धम्मपद ८।४

कही थी—'तुम दूसरे शत्रुओं को विजय करके अपना भला नहीं कर सकते। अपनी आत्मा को जीत कर, उसका उद्धार करके ही तुम अपना उद्धार कर सकते हो—"उद्धरेदात्मनात्मानम्।" अनन्त अनन्त काल से आत्मा को जिन आंतरिक शत्रुओं ने घेर रखा है, उसकी अनन्त प्रभास्वर ज्योति को धुधली बना रखी है, उन शत्रुओं को पराजित करने की आवश्यकता है। यही आत्मा का परमपुरुषार्थ है। ये आंतरिक शत्रु चमचक्षु से दिखाई नहीं पड़ते, ये बहुत ही सूक्ष्म रूप से आत्मिक शक्तियों को दबाए बैठे हैं, और बाहरी शत्रुओं से अधिक भयंकर व खतरनाक है। बाहरी शत्रु तो केवल मानव के प्राणों का ही नाश करते हैं किन्तु अन्तर के शत्रु आत्मा के अनन्त सद्‌गुणों का, असीम शक्तियों का सर्वनाश कर देते हैं। अतः बाहरी शत्रुओं की अपेक्षा भीतरी शत्रुओं से संघर्ष कर विजय प्राप्त करना मानव की सर्वोत्कृष्ट विजय है। भौतिकशक्ति पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा आध्यात्मिक शक्ति की उपासना करना अधिक श्रेयस्कर व उपादेय है। भारतीय संस्कृति में भौतिकशक्ति की उपासना या प्राप्ति मानव का चरम साध्य न रहकर एक मात्र साधन रहा है। साध्य की प्राप्ति तो अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति के विकास द्वारा ही संभाव्य है, जो अहिंसा की परिपूर्ण साधना द्वारा ही प्राप्य है। अहिंसा भारतीय संस्कृति की आत्मा है। अहिंसा, करुणा, प्रेम भारतीय संस्कृति के ये आधारस्तंभ है। जनदर्शन का तो अहिंसा प्राण ही है। इसकी विशद व्याप्ति में सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि सभी व्रतों का समावेश स्वतः हो जाता है।[३] धर्म का मौलिक स्वरूप अहिंसा है और सत्य आदि उसका विस्तार है। अब हम आगे के अध्यायों में इसी बात पर विचार करेंगे

३ अहिंसा-ग्रहणे महव्वयाणि गहियाणि भवति। संजमो पुण तीसे चेव अहिंसाए उवग्गहे वट्टइ, संपुण्णाय अहिंसाय संजमो वि तस्स वट्टइ।
—दशवकालिक, चूर्णि १ अध्ययन

२ | अहिंसा का आदर्श

•

विश्व के जितने भी धम, दशन और सम्प्रदाय है उन सभी ने अहिंसा के आदश का एक स्वर से स्वीकार किया है। चाह वह जैन, बौद्ध, वदिक ईसाई पारसी या इस्लाम कार्ड भी क्या न हो ? किसी ने अहिंसा के आंशिक रूप पर विचार किया है तो किसी ने उसके पूर्ण रूप पर, मगर विचार चिन्तन किया अवश्य है। यद्यपि इन सभी धर्मों के प्रवतकों एव प्रचारकों न अपनी अपनी दृष्टि मे अहिंसा तत्व की विवेचना की है फिर भी अहिंसा का जसा सूक्ष्म-विश्लेषण और गहन विवेचन जन साहित्य म उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नही। जन सस्कृति के प्रत्येक अवयव म अहिंसा की भावना परिव्याप्त है। उसके प्रत्येक स्वर म अहिंसा की ध्वनि मुखरित होती है। जन सस्कृति की प्रत्येक क्रिया अहिंसामूलक होती है। चलना, फिरना उठना बठना, शयन करना आदि सभी म अहिंसा का नाद ध्वनित होता-सा लगता है।[४] यह अहिंसा धार्मिक क्रियाओं तक ही सीमित नही है, किन्तु जीवन की दैनिक क्रियाओं म भी इसका समीचीन विधान है। विचार म, उच्चार म और आचार म सवत्र अहिंसा की सुमधुर झकार है। जनदशन न अपने चिन्तन के द्वारा विश्व को एक अनुपम दृष्टि प्रदान की है। अतीतकाल से मानव को वह अहिंसा के राजपथ पर बढने के लिए उत्प्रेरित करता रहा है। जनसस्कृति और जनदशन का मूलाधार व प्राणशक्ति

---

४ जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जय सए।
जय भुजतो भासतो, पावकम्म न बधइ ॥ दशवकालिक, अ०—४

अहिंसा है। भगवान् महावीर ने अहिंसा तत्व के उत्कर्ष को बतलाते हुए कहा है—जिस प्रकार जीवो का आधारस्थान पृथ्वी है, वैसे ही भूत और भावी ज्ञानियो के जीवन दर्शन का आधारस्थान शान्ति अर्थात अहिंसा है।[५] महात्मा गाधी की **तलवार का असूल** शीर्षक निबन्ध म लिखी हुई, निम्नाकित पक्तियाँ अहिंसा पर उनकी अपार दृढ-आस्था को अभिव्यक्त करती हैं—"अहिंसा धर्म केवल ऋषि महात्माओ के लिए नही, वह तो आम लोगो के लिए भी है। अहिंसा हम मनुष्यो की प्रकृति का कानून है। जिन ऋषियो ने अहिंसा का नियम निकाला है वे न्यूटन से ज्यादा प्रतिभाशाली थे, और वेलिगटन से बडे योद्धा।" अहिंसा मे अपार शक्ति है। सपूर्ण विश्व पर उसकी अमिट छाप है। अहिंसा का विशद अनुशीलन-परिशीलन करने के पूर्व हिंसा के स्वरूप और प्रकार को परख लेना भी आवश्यक है।

हिंसा और उसके प्रकार

हिंसा शब्द हननार्थक हिंसि धातु से बना है। हिंसाका अर्थ है—प्रमाद अर्थात असावधानी की स्थिति मे किसी प्राणी का प्राण वियोजन करना।[६] इसका विपरीत रूप अहिंसा है। हिंसा का अभाव ही अहिंसा का परिसूचक है। किन्तु अहिंसा की व्याख्या इतने मे ही समाप्त नही हो जाती। अहिंसा कोरी निषेधात्मक प्रवृत्ति मात्र नही है, उसका विधि पक्ष भी महत्वपूर्ण है, जिसकी विशेष चर्चा अगले प्रकरण मे की जायेगी।

भारतीय सस्कृति के मनीषी विचारको ने प्राणवियोजन को हिंसा कहा है। इस हिंसा को जैनदर्शन ने दो विभागो मे विभक्त किया है—एक द्रव्यहिंसा और दूसरी भावहिंसा। द्रव्यहिंसा बाह्य क्रियाओ पर आधृत है जब कि भावहिंसा आन्तरिक प्रवृत्तियो पर।

साधक के करुणा-पूरित हृदय म प्राणीमात्र के प्रति करुणा का असीम सागर ठाठें मार रहा है। रक्षा, दया और करुणा की भावना

---

५ जे य बुद्धा अतिक्कता, जे य बुद्धा अणागया।
सति तेसि पइट्ठाण, भूयाण जगई जहा॥
—सूत्रकृता० श्रु० १ अ ११ गा ३६

६ प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपण हिंसा। —तत्वार्थसूत्र अ० ७-८

एव प्रवृत्ति मे मन ओत प्रोत है। स्वच्छ निमल मानस है। सबके प्रति निव र है। फिर भी जीवन की इस लम्बी चौडी यात्रा म साधक की विविध प्रवृत्तिया से यदि कही कभी किसी के प्राणा का घात हो जाता है, तो वह द्रव्यहिंसा है। यह कवल प्राण वियोजन की दृष्टि से हिंसा कही जा सकती हैं, किन्तु इसम हृदय की कलुषता नही होती, अत कमबन्ध नही होता। इस दृष्टि से वह नाम मात्र की हिंसा है, वास्तविक हिंसा नही है। वास्तविक हिंसा का सम्बध भावा के साथ है।

जन दृष्टि यह है कि किसी जीव का मर जाना अपने आप मे हिंसा नही है, किन्तु क्रोध मान, मायादि के कलुषित भावा से किसी जीव के प्राणा को नष्ट करना हिंसा है। साधक के जीवन मे जब तक विवेक का प्रकाश जगमगाता रहता है और उसकी जागरूकता विद्यमान है, तब तक वहा अहिंसा है पर जब साधक के जीवन म विवेक की ज्योति बुझ जाती है, और जीवन प्रमाद के अधकार म भटक जाता है तब वहाँ हिंसा का ही वातावरण प्रस्तुत रहता है, इस दृष्टि से मन, वचन और कम का प्रमत्तयोग भी हिंसा है और प्रमत्त योग से किसी प्राणी के प्राणा की घात करना भी हिंसा है।[६] आचार्य हरिभद्र के विचारानुसार आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है। अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है और प्रमाद म युक्त आत्मा हिंसक है।[७]

हिंसा का मूलाधार कषाय भाव है। बाहर से भले ही किसी प्राणी की हिंसा न भी हो पर भीतर म यदि कषाय भाव और राग द्वेष की परिणति चल रही है तो वह हिंसा है।[८] इसके विपरीत अन्तरग मे कषाय भाव या प्रमाद की स्थिति नही है, फिर भी किसी

---

६ मण-वयण-कार्योहि जोगेहिं दुप्पउत्तेहि ज पाणववरोवण कज्जइ सा हिंसा। दशवकालिक चूर्णि १ अ०

७ आया चेव अहिंसा आया हिंसेति निच्छओ एस।
जो होइ अप्पमत्तो अहिंसओ हिंसओ इयरो॥
हरिभद्र कृताष्टक ७ श्लो० ६ वृत्ति

८ व्युत्थानावस्थायां रागादीनां वशप्रवृत्तायाम्।
म्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुव हिंसा॥ पुरुषार्थसिद्ध युपाय, ४६

प्राणी का प्राणवियोजन हो जाता है तो वह हिंसा नहीं है।[९] वीतराग दशा की यही स्थिति है। केवलज्ञानियों से भी काययोग की प्रवृत्ति के द्वारा कभी-कभी पंचेन्द्रिय जीव तक का वध हो जाता है, फिर भी कर्म बन्धन से वे अलिप्त रहते हैं।[१०] इसका मूल कारण राग द्वेष का अभाव है। तभी तो कहा है—आत्मा में रागादिभावों का अप्रादुर्भाव ही अहिंसा है और रागादिभावों का प्रादुर्भाव ही हिंसा है।[११] जिस आत्मा ने रागद्वेष का उन्मूलन कर दिया है, उसे हिंसा होती ही नहीं, यदि हिंसा होती भी है तो वह द्रव्य हिंसा है, भाव हिंसा नहीं। द्रव्य हिंसा प्राण-नाश स्वरूप होते हुए भी चित्त में कालुष्य के अभाव में हिंसा नहीं है।[१२] इस प्रकार जिसके हृदय कमल में सद्भावना का सौरभ महकता रहता है उसके द्वारा होने वाली प्राण-वध रूप हिंसा वास्तविक हिंसा नहीं है। बाहर में इस प्रकार की हिंसा होते हुए भी वे साता वेदनीय कर्म का ही बंध करते हैं। आचार्य भद्रबाहु ने इसका विश्लेषण करते हुए बतलाया है कि—'कोई साधक ईर्यासमिति से युक्त होकर चलने के लिए अपना पांव उठाए और अचानक उसके पैर के नीचे कोई जीव दब कर मर जाए तो उस साधक को उस की मृत्यु के निमित्त से कर्म बन्ध नहीं होता। क्योंकि वह साधक गमनक्रिया में पूर्ण सजग है, अतः वह निष्पाप है।[१३] गीतार्थ

---

९ युक्ताचरणस्य सतो, रागाद्यावेशमन्तरेणापि।
न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव ॥ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ४५

१० भगवती सूत्र श० १८ उ० ८

११ अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।

१२ यदा प्रमत्त योगो नास्ति केवलं प्राणव्यपरोपणमेव, न तदा हिंसा।
उक्तं च—वियोजयति चासुभिर्न च वधेन स युज्यते।
—तत्त्वार्थ राजवार्तिक ७ १३

१३ उच्चालियम्मि पाए इरियासमियस्स संकमट्ठाए।
वावज्जेज्ज कुलिंगी मरेज्ज तं जोगमासज्ज ॥
न य तस्स तन्निमित्तो बंधो सुहुमोवि देसिओ समए।
अणवज्जो उवओगेण सव्वभावेण सो जम्हा ॥
ओघनियुक्ति, ७४८, ७४९

साधक के द्वारा यतनाशील रहते हुए भी यदि कभी विराधना हो जाती है तो वह पापकर्म के बंध का कारण न होकर निर्जरा का कारण होता है। यद्यपि यहाँ बाहर में हिंसा है तथापि अन्तर में भावों की विशुद्धि है फलतः उसकी यतना उस निर्जरा का माधुर्य ही अर्पण करती है।[१८] सारांश यह है कि साधक का अन्तर्जगत कषायादि भावों से सर्वथा अलिप्त रहना चाहिए। यह अलिप्तता ही अहिंसा का प्राण है।

भाव हिंसा निदर्शन

●

किसी भी प्राणी के प्रति मन में दुर्भावना का प्रादुर्भाव होना—भाव हिंसा है। इसमें प्राणी की स्थूल हिंसा हो या न हो पर आत्मा के भीतर हिंसा का दुष्टसंकल्प जागृत हो गया, और आत्मा के सद्गुणों का नाश कर दिया तो भाव हिंसा हो चुकी। स्थूल हिंसा के कार्यों से तो प्रत्येक सभ्य बचना चाहता ही है पर सूक्ष्म हिंसा जो आन्तरिक परिणामों से ही होती है उससे भी बचने की आवश्यकता है। जब मन में ईर्ष्या-द्वेष चोरी व्यभिचार आदि दुष्कर्म के संकल्प पैदा होते हैं तब आत्मा भाव हिंसा से कलुषित हो जाता है। भाव हिंसा सब में बड़ी हिंसा है। यह दूसरों का नाश करने के साथ जिस आत्मा में उत्पन्न होती है उसका भी नाश करती है। जनागम में वर्णित तन्दुलमत्स्य का उदाहरण भाव हिंसा के भयानक परिणाम को स्पष्ट कर देता है। जो द्रव्य हिंसा नहीं करता हुआ भी दुष्ट एवं क्रूर संकल्पों के कारण सातवें नरक तक ले जाने वाले घोर पापकर्मों का बंध कर लेता है। वह चावल के दाने जितना नन्हा-सा मत्स्य भाव हिंसा के कारण कुछ ही क्षणों में इतने क्रूर तथा घोर कर्मों का उपार्जन कर लेता है—यह भावहिंसा का विलक्षण प्रभाव ही है। विचारों और संकल्पों के उतार चढ़ाव के कारण ही साधु वेश में ध्यानस्थ खड़े प्रसन्नचन्द्रराजर्षि सातवीं नरक भूमि के

---

१८ जा जयमाणस्स भवे विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स।
सा होइ निज्जरफला अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स॥ ओघनियुक्ति ७५६

योग्य कर्म करने लग गए और वे ही परिणाम जब विशुद्ध, विशुद्धतर हुए तो कुछ ही क्षणों में वहीं पर खड़े-खड़े केवलज्ञानी बन गए, यह सब परिणाम भाव तथा मन के चमत्कार हैं। तभी तो भारतीय दर्शनकारों को यह कहना पड़ा— 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः' (मत्रा० आरण्यक ६।३४।११) मन ही मानव के बन्धन और मुक्ति का कारण है। अतएव सभी भाव की भावना पर आधारित है।

एक बार सुकरात से किसी ने पूछा—विश्व में आपका साथी कौन है?

सुकरात ने गम्भीरता पूर्ण उत्तर दिया—मेरा साथी मेरा मन है। मन ही मेरा साथी मित्र है।

फिर पूछा— आपका शत्रु कौन है?

इस बार भी सुकरात उसी गम्भीर मुद्रा में बोले—मेरा शत्रु मेरा मन है।

प्रश्नकर्ता सुकरात के इस उत्तर को सुनकर आश्चर्यान्वित हो उठा। क्या आपका मन ही आपका साथी और शत्रु है?

सुकरात ने कहा—"हाँ, मेरा मन ही मेरा साथी और दुश्मन है। यह मन मुझे मेरे साथी की तरह सत्पथ पर भी ले जा सकता है, और दुश्मन की तरह असत्य अर्थात् बुरे मार्ग पर भी ले जा सकता है।" इसलिए मन ही सर्वेसर्वा है। द्रव्य और भाव हिंसा का मानदण्ड भी मन है। मन के राग-द्वेष, क्रोध, मान आदि सब दुर्भाव, दुःसंकल्प आन्तरिक भाव हिंसा है। भाव हिंसा से बचने के लिए इन विकारों को समाप्त करने की आवश्यकता है।

चौभंगी का विधान

द्रव्यहिंसा और भावहिंसा के सम्बन्ध में आचार्यों ने चौभंगी के द्वारा सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया है —

१ द्रव्य हिंसा भी हो, और भाव हिंसा भी हो।
२ द्रव्य हिंसा हो, भाव हिंसा न हो।
३ द्रव्य हिंसा न हो, और भाव हिंसा हो।
४ न द्रव्य हिंसा हो और न भाव हिंसा हो।

राग-द्वेष से लिप्त होकर जो प्राणवध किया जाता है, वह द्रव्य हिंसा भी है और भावहिंसा भी। राग-द्वेष से अलिप्त रहते हुए जो

प्राणवध की क्रिया होती है, वह द्रव्य से हिंसा और भाव से अहिंसा है।

राग द्वेषादि के विकारों से कलुषित होकर किसी जड़ अचेतन वस्तु पर जब प्रहार किया जाता है, तब जड़ के प्राण नहीं होने से प्राण वियोजन रूप हिंसा तो नहीं होती, अर्थात् द्रव्य से हिंसा नहीं होती किन्तु भावों की कलुषता के कारण वह भाव हिंसा अवश्य हो जाती है।

जहां आत्मा में राग-द्वेष की प्रवृत्ति नहीं है, और न शरीर से प्राणवध ही होता है, ऐसी अयोग एवं मुक्त अवस्था में न द्रव्य हिंसा है, और न भाव हिंसा ही, वहां तो अहिंसा का ही पूर्ण साम्राज्य है।[१५]

१५ दशवकालिकचूर्णि अ० १

३ | अहिंसा का मधुर संगीत

●

अहिंसा जीवन का मधुर संगीत है। जब यह संगीत जीवन में झंकृत होता है तो मानव मन आनन्द विभोर हो उठता है। यही कारण है कि चिरकाल से जड़-चर साधक पुरुष इसकी साधना आराधना करते आ रहे हैं। उन्होंने अहिंसा की साधना में अपने मूल्यवान जीवन का उत्सर्ग किया और अहिंसा की गरिमा को विश्व के कोने कोने में फैलाया।

जैनागमों में अहिंसा को 'भगवती' कहा है।[15] यह दया का अक्षय कोष है। दया के अभाव में मानव मानव न रह कर दानवता में पहुँच जाता है। एक विचारक ने कहा है—"दया के अभाव में मानव का जीवन प्रेतसदृश है।" सुप्रसिद्ध विचारक इंगरसोल ने तो बतलाया है कि—"जब दया का देवदूत दिल से दुत्कार दिया जाता है और आँसुओं का फव्वारा सूख जाता है, तब मनुष्य रेगिस्तान की रेत में रेंगते हुए साँप के समान बन जाता है।"

वस्तुतः अहिंसा एक महासरिता है। जब साधक के जीवन में यह इठलाती बलखाती हुई चलती है तब साधक का जीवन विराट व रमणीय बन जाता है। श्रमणसंस्कृति के उन्नायक भगवान् महावीर ने अहिंसा का प्रशस्त मार्ग दिखलाते हुए कहा है—"सर्वप्राणी, सर्वभूत, सर्वजीव और सर्वसत्त्वों को नहीं मारना चाहिए, न पीड़ित करना चाहिए और न उनको मारने की बुद्धि से स्पर्श ही करना चाहिए। यही धर्म शुद्ध शाश्वत व नियत है।"[16] प्राणी-मात्र के प्रति

---

१५ एसा सा भगवती —प्रश्नव्याकरण, सूत्र

१६ सव्वेपाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा सव्वे सत्ता।
न हंतव्वा न अज्जावेयव्वा न परिघेतव्वा॥

मयम भाव रखना अहिंसा है।[16] किसी प्राणी को न सताना, और न दुर्भाव रखना यह अहिंसा का मूलभूत सिद्धान्त है। इसी में विभाव का अन्तर्भाव हो जाता है।[17] जैन संस्कृति के ज्योतिर्धर आचार्यों ने मानव मन में रहे हुए हिंसा के गहनतम अन्धकार को दूर करने के लिए अहिंसा को महाप्रदीप के रूप में देखा है। जिसका अभिप्राय यह है—सुख-दुःख, मान-अपमान, क्षुधा-पिपासा आदि की अनुभूतियाँ जैसी हमें होती हैं वैसी ही दूसरे प्राणियों को भी। क्योंकि सब के अन्दर वही एक चेतना की अखण्ड धारा प्रवाहित हो रही है। विश्व की जितनी भी आत्माएं हैं उन सब में एक समान चेतना है।[18] उनमें मूलभूत कोई अन्तर नहीं है। अतः सब जीवों के प्रति समत्वमूलक भावना अपेक्षित है। समता के अभाव में अहिंसा अपूर्ण है।

समत्वयोग की साधना अहिंसा

●

अहिंसा का मूलाधार समत्वयोग है। समत्वयोग आत्मसाम्य की दृष्टि प्रदान करता है। जिसका अर्थ है विश्व की सभी आत्माओं को समदृष्टि से देखना। चैतन्यमात्र के प्रति अपने-पराये का भेद न रखकर सब के साथ ममतामूलक व्यवहार करना—समत्वयोग की सब से बड़ी साधना है। समत्वयोग की साधना पर जैनदर्शन के वरिष्ठ विधायकों ने सर्वाधिक बल देते हुए कहा है—'सब आत्माओं को अपनी आत्मा की तरह समझो। अन्य प्राणियों की आत्मा में अपने आप को देखो और संसार की समस्त आत्माओं को अपने भीतर देखो।'[20] तात्त्विक दृष्टि से सभी आत्माएं समान हैं। सब में एक ही ज्योति है, एक ही प्रकाश है, एक ही जीव चेतना है। सुख दुःख की

न उवद्दवेयव्वा एस धम्मे सुद्धे नियए सासए।
समेच्च लोयं खेयन्नेहिं पवेइए॥ —आचाराङ्ग सूत्र

१७ अहिंसा निउणा दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो। —दशवैकालिक

१८ एवं खु नाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचण।
अहिंसा समयं चेव एयावंतं वियाणिया॥ —सूत्र, १।१।४।१०

१९ एगे आया —ठाणांग सूत्र १-१

२० सव्वभूयप्पभूयस्स सम्मं भूयाइं पासओ। —दशवैकालिक सूत्र ४।९

अनुभूति सब को होती है। जीवन-मरण की प्रतीति सब को होती है। सभी प्राणी जीना चाहते हैं—मरना कोई नहीं चाहता। एक सामान्य कीड़े से और स्वर्गाधिपति इन्द्र के अन्तर में जीने की इच्छा एक समान है और मृत्यु का भय भी समान है।[२१] सभी प्राणियों को अपना आयुष्य प्यारा है। सभी दीर्घायुष्य चाहते हैं। सुख चाहते हैं दुःख से घबराते हैं। जीवन प्रिय है मरण अप्रिय है। सभी जीने की कामना करते हैं। अपना जीवन सब को प्यारा है।[२२] इस समतासूत्र [illegible] ही बताया गया है।

समत्वयोग की प्रेरणा

जिस प्रकार अपने को सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है वैसे ही अन्य प्राणियों को भी सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है। जिस प्रकार हम अपने प्राणों का घात अनिष्ट है वैसे दूसरों को भी अनिष्ट है। यह मानकर मानव को दूसरों की हिंसा नहीं करनी चाहिए।[२३]

यदि मानव अपनी आत्मा की तरह ही अन्य आत्माओं को भी समझने लग जाय तो एक दिन अवश्य उसकी आत्मा हिंसाजन्य विकारों से सर्वथा मुक्त हो जायगी और वह अपनी आत्मा को विश्वात्मा के साथ आत्मसात कर सकेगा। यह बात निश्चित है कि जिन बातों से, जिन व्यवहारों और चेष्टाओं से हमें दुःख होता है उन बातों व्यवहारों और चेष्टाओं से अन्य को भी दुःख होता है। अतः हमें चाहिए कि किसी के साथ वैसा व्यवहार न करें जैसा हम अपने लिए पसन्द नहीं है। जो हम निज के लिए चाहें वही पर के लिए भी चाहें। इस प्रकार विश्व की समस्त आत्माओं के साथ अपने

---

२१ अमेध्यमध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये।
समाना जीविताकांक्षा, समं मृत्यु-भयं द्वयोः॥ —आचार्य हेमचन्द्र

२२ सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया दुक्खपडिकूला।
अप्पियवहा पियजीविणो, जीविउकामा॥
सव्वेसिं जीवियं पियं। —आचारांग सूत्र १।२।३

२३ आत्मवत् सर्वभूतेषु सुख-दुःखे प्रियाप्रिये।
चिन्तयन्नात्मनोऽनिष्टां, हिंसामन्यस्य नाचरेत्॥ —आचार्य हेमचन्द्र

जसा व्यवहार करना ही समत्वयोग की साधना का मूल आधार है। समत्वयोग की साधना का यह मूल आधार श्रीकृष्ण की वाणी में भी इस प्रकार ध्वनित हुआ है— जो सभी जीवों को अपने समान समझता है और उनके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझता है, वही परम योगी है।[२४]

आत्मौपम्य दृष्टि

भगवान महावीर ने बतलाया है कि—छह जीव निकाय को अपनी आत्मा के समान समझो।[२५] प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझो।[२६] यह आत्म-तुला का सिद्धान्त कितना उदात्त और महान है? अहिंसा की भावना को परखने और समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। भगवान महावीर ने कहा था—हे मानव! जिसको तू मारने की भावना रखता है, सोच वह तेरे जसा ही सुख-दुःख का अनुभव करने वाला प्राणी है। जिस पर तू अधिकार जमाने की आकांक्षा रखता है, वह तेरे समान ही एक चेता है। जिसे तू दुःख देने का सोचता है वह तेरे जसा ही प्राणी है। जिसको तू अपने वश में करने की इच्छा करता है वह तेरे जसा ही एक जीव है। जिसका प्राण तू लेने की भावना रखता है, वह तेरे जसा ही प्राणी है।[२७]

---

२४ आत्मौपम्येन सर्वत्र सम पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

—गीता अ० ६ श्लोक ३२

२५ अत्तसमे मन्निज्ज छप्पिकाए।
—दशवैकालिक १०-५

२६ आयतुले पयासु।
सूत्रकृतांग सूत्र १ १० ३

२७ तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम सच्चेव जं परितावेयव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिघेतव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्वं ति मन्नसि।
अजू चेय पडिबुद्धजीवी तम्हा न हंता न विघायए।

—आचारांग सूत्र १-५।५,

इस प्रकार संसार में सत्पुरुष विवेकमय जीवन व्यतीत करता हुआ न किसी जीव को मारता है और न किसी की घात करता है। क्योंकि हिंसा से आत्मौपम्य की भावना का तो नाश होता ही है, साथ ही परलोकवादी आस्था में उसके कटु परिणामों का भी चिन्तन किया गया है—जो यहाँ पर किसी की हिंसा करता है उसका फल उसे भविष्य में भोगना पड़ता है। अतः भविष्य के कटु परिणाम एवं सतत बढ़ती जाने वाली वैर-परम्परा पर विचार करके किसी भी प्राणी की हिंसा करने की कामना न करे।

अहिंसा परक आत्मसंयम का पथ प्रदर्शित करते हुए सूत्रकृतांग सूत्र में भगवान् महावीर ने बतलाया है—आत्मार्थी आत्मा का कल्याण करने वाला, आत्मा की रक्षा करने वाला, आत्मा में शुभ प्रवृत्ति करने वाला, संयम के आचरण में पराक्रम प्रकट करने वाला, आत्मा को संसाराग्नि से बचाने वाला, आत्मा पर दया करने वाला, आत्मा का उद्धार करने वाला साधक अपनी आत्मा को सर्व पापों से मुक्त रखे।[२८] उक्त आत्मौपम्य व आत्मसंयम की दृष्टि समत्वयोग की साधना द्वारा ही सम्प्राप्त हो सकती है। तथा वैयक्तिक उत्थान एवं सामाजिक उत्कर्ष भी समत्वयोग की साधना आराधना पर ही निर्भर है।

जीओ और जीने दो

०

जब साधक के जीवन में अहिंसा भाव की लहर लहराती है, अन्तःकरण में करुणा का अमृत वर्षण होता है और अपनी ही भाँति दूसरों को भी जीने का पूर्ण अधिकार प्रदान करता है तब उसकी अहिंसा पूर्ण साकार हो उठती है। विश्व की समस्त आत्माओं को जीने का समान अधिकार है। कोई किसी के प्राणों का घात प्रतिघात न करे। एक-दूसरे के सुख-सुविधा में बाधक न बने। यही उन अनन्त ज्ञानियों की साधना का अर्थ है निचोड़ है। जिस सीमा में तुझे जीने का हक है, उस सीमा में अन्य को भी जीने का हक है। यह महामन्त्र जन जन के अन्तर तम में सदा गूँजता रहना चाहिए।

जैनदर्शन व जैनधर्म का आदर्श यहीं तक सीमित नहीं, वरन् उसका आदर्श है—'दूसरों के जीने में मदद करो और अवसर आने

पर दूसरा के जीवन की रक्षा के लिए अपने जीवन की आहुति भी दे डाली। प्रस्तुत आत्मा की परिपालना सम्यक प्रकार से न होने के कारण ही आज अहिंसा निष्क्रिय बनी हुई है। जीओ और जीने दो' से बढ़कर दूसरों के जीवन में सहायक बनो इस विराट सिद्धान्त का आत्मसात करने के लिए अहिंसा को सक्रिय रूप प्रदान करने की आवश्यकता है। अहिंसा के विचारकों का सिर्फ यहीं तक सोच कर विराम नहीं लेना है कि प्राणी मात्र को जीने का अधिकार है उन्हें जीने दो। किन्तु इस बात पर भी सोचना है कि हम दूसरों के जीवन में किस प्रकार सहयोगी बन सकते हैं? व्यक्ति समाज देश और राष्ट्र के अभ्युदय एवं उत्कर्ष में हमारा क्या उपयोग हो सकता है—अहिंसा की इस भावना का विकास ही सर्वोदय की भावना है यही अहिंसा का विधायक पक्ष है। प्रसिद्ध जैन आचार्य उमास्वाति ने चेतन का लक्षण ही यह माना है कि वह एक-दूसरे के विकास व अभ्युदय में सहयोगी व उपकारी बने।[२९]

---

२८ एव से भिक्खू आयट्ठी, आयहिते आयगुत्ते आयजोगे आयपरक्कमे आयरक्खिए आयाणुकंपए आयनिप्फेडए आयाणमेव, पडिसाहरेज्जासि।
—सूत्र कृताङ्ग सूत्र—२।८।४२

२९ परस्परोपग्रहो जीवानाम्
—तत्त्वार्थ सूत्र ५।२१

४ | अहिंसा की विराट् दृष्टि

●

अहिंसा की दृष्टि विराट है। उसमें संकीर्णता को जरा भी गुंजाइश नहीं है। यह तो गंगा की उस विमल विशाल धारा के सदृश मुक्त व स्वतन्त्र है। उसे बंधन प्रिय नहीं है। यदि अहिंसा को किसी प्रान्त, भाषा, पंथ या सम्प्रदाय की क्षुद्र परिधि में बन्द कर दिया गया तो उसकी वही स्थिति होगी जो समुद्र के शुद्र निर्मल जल को किसी गड्ढे में बन्द कर देने पर होती है।

अहिंसा किसी व्यक्ति, देश या जाति विशेष की ही संपत्ति नहीं है, यह तो विश्व का सर्वमान्य सिद्धान्त है। भारत के राष्ट्रपति स्व० डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अहिंसा की विराटता पर प्रकाश डालते हुए 'आत्म-कथा' में लिखा है—'अहिंसा का सिद्धान्त सनातन सिद्धान्त है। इतने बड़े पैमाने पर विशेष कर इतनी बड़ी शक्ति के हाथों (अंग्रेजों) से स्वराज्य प्राप्त करने में उसका उपयोग और भी सनातन है। बहुतों ने इसे नीति के रूप में माना है, और सचाई से बरतते हैं।' अहिंसा का क्षेत्र काफी विस्तृत है, वह विश्वव्यापी है। यह मानवता का उज्ज्वल प्रतीक है। इसके द्वारा ही जन समाज की सारी व्यवस्थाएं व प्रवृत्तियाँ युग युग से सुचारु रूप से चली आ रही हैं।

अहिंसा बाधक नहीं, साधक है

●

कतिपय लोगों का यह मन्तव्य है कि अहिंसा कायरता का प्रतीक है। वह देश को गुलाम बनाती है और कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ने से रोकती है। पर क्या उक्त कथन तथ्यपूर्ण है? यदि गम्भीरता से चिन्तन करेंगे, तो स्पष्ट ज्ञात हुए बिना नहीं रहेगा कि अहिंसा के यथार्थ स्वरूप व उसके सही सत्य दृष्टिकोण को न पहचानने के

कारण ही इस प्रकार के भ्रामक विचार मस्तिष्क में समुत्पन्न होते रहते हैं। यदि अहिंसा के यथार्थ स्वरूप को जान लिया जाय तो ये सारे भ्रामक विचार अनायास ही समाप्त हो सकते हैं।

भारत के सुप्रसिद्ध दार्शनिक एवं भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन ने इस दिशा में जो विचार अभिव्यक्त किये हैं वे भी चिन्तनीय है— यह जरूरी हथियार बल्कि कायरता का है। कायरता ने अपने हाथ में हथियार इसलिए रखे हैं कि वह दूसरों के हमलों से डरती है और स्वयं हथियार इसलिए नहीं चलाती कि उसे हिम्मत नहीं होती। जो डर के मारे हथियार चला नहीं पाती उसी का नाम कायरता है। इस कायरता से इंसान को उबारने वाली केवल एक ही शक्ति है— अहिंसा।

अहिंसा वीरों का धर्म

अहिंसा कायरता नहीं सिखलाती वह तो वीरता सिखलाती है। अहिंसा वीरों का धर्म है। अहिंसा का स्वर है—मानव! तुम अपनी स्वार्थ लिप्सा में उबकर दूसरों के अधिकार को न छीनो। किसी देश या राष्ट्र के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप मत करो। किसी भी समस्या का यथासंभव शान्ति पूर्वक सुलझाने का प्रयास करो। शान्ति के लिए तुम अपना बलिदान भले ही दे दो किन्तु अपनी स्वार्थ एवं वासना पूर्ति के लिए किसी के प्राणों को मत लूटो। इस पर भी यदि समस्या का उचित समाधान नहीं हो पा रहा है और देश जाति व धर्म की रक्षा करना अनिवार्य हो तो उस स्थिति में वीरता पूर्वक कदम उठा सकते हो किन्तु अहिंसा के नाम पर कायर बन करके घर में मुँह छिपाकर मत बैठो। प्राणों का मोह करके जिन्दगी से चिपटकर कायर मत बनो। यदि समय पर अन्याय अत्याचारों का प्रतीकार न कर सके तो यह सबसे बड़ी तुम्हारी बुजदिली व कायरता ही सिद्ध होगी। और तुम्हारी अहिंसा तुम्हारी शान्ति की पुकार सिर्फ एक वञ्चना और धोखा मानी जायेगी।

अहिंसा यह कभी नहीं कहता कि मानव अन्यायों को सहन कर। क्योंकि जैसे अन्याय करना स्वयं में एक पाप है वैसे ही अन्याय को कायर होकर सहन करना भी एक महापाप है। वह अहिंसा क्या है

जिसमें अन्याय के प्रतीकार की शक्ति नहीं है, देश की आजादी को सुरक्षित रखने की क्षमता नहीं है। वह अहिंसा—अहिंसा नहीं वह तो नाम मात्र की अहिंसा है निष्प्राण अहिंसा है। ऐसी अहिंसा का कोई मूल्य नहीं है।

प्रतीकार के दो रूप

अन्याय के प्रतीकार के दो रूप हैं—एक हिंसक प्रतीकार, दूसरा अहिंसक प्रतीकार। हिंसक प्रतीकार गृहस्थ वर्ग से सम्बन्धित है क्योंकि गृहस्थ वर्ग की अहिंसा मर्यादित सीमित होती है। वह समय पर देश, जाति व धर्म की रक्षा के लिए सब कुछ कर सकता है। भगवान महावीर के श्रावक भी अनाक्रमण-व्रत का ग्रहण करते थे पर आत्म रक्षा के लिए प्रत्याक्रमण के लिए तो वे खुले रहते थे। प्रत्याक्रमण के अधिकार से वंचित नहीं रहते थे। किन्तु श्रमण या कोई विशिष्ट अध्यात्मवादी सन्त हिंसक प्रतीकार नहीं करता। वह तो समाज या देश में पनपने वाले अन्यायों का प्रतीकार अहिंसात्मक ढंग से ही करता है। और यह अहिंसक प्रतीकार बाहरी साधनों से नहीं किया जाता है अपने साधक के आत्मबल के विश्वास पर निर्भर है। साधक का आत्मबल ही उसकी सफलता का मापदण्ड है।

जैन विचारकों ने हिंसा का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए उसके चार प्रकार बतलाये हैं—संकल्पी, आरम्भी, उद्योगी और विरोधी। किसी निरपराध प्राणी को मारने का इरादा रखके उस पर आक्रमण करना या उसे जान से खत्म कर देना संकल्पी हिंसा है। गृहस्थ जीवन बिताते हुए, घरेलू काम धन्धे करते हुए जो हिंसा होती है वह आरम्भी हिंसा है। खेती बाड़ी, व्यापार उद्योग में होने वाली हिंसा उद्योगी हिंसा है। और देश, समाज व राष्ट्र की रक्षा के लिए प्रतीकारात्मक जो हिंसा की जाती है वह विरोधी हिंसा है। विरोधी हिंसा में राज्य लिप्सा भोगलिप्सा और वैर विरोध की गन्ध समाहित हो सकती है, किन्तु जो हिंसा केवल देश, जाति व धर्म की रक्षा भावना से अनुस्यूत है, परिपूरित है वह हिंसा हिंसा होते हुए भी उसमें भावी अहिंसा का एक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण अन्तर्निहित है, और वही दृष्टिकोण व्यक्ति को हिंसा के दलदल से उबारने वाला है। यद्यपि

अहिंसक व्यक्ति हिंसा में कतई विश्वास नहीं करता, उसकी आस्था निष्ठा अहिंसा में पूर्ण रूप से रही हुई है वह अहिंसा तत्त्व को जीवन विकास का सर्वोपरि तत्त्व समझता है फिर भी देश जाति व धर्म की रक्षा का प्रश्न जब उसके सामने आकर खड़ा होता है तो वह मुँह नहीं छिपाता। अपनी आँखों के सामने अन्याय का अभिनय देख नहीं सकता किन्तु वह डटकर उसका प्रतीकार करता है।

अजातशत्रु कोणिक और महाराज चेटक के बीच आश्रित जन की रक्षा के लिए युद्ध हुआ। यह एक प्रसिद्ध घटना है। भगवती सूत्र निरयावलिया आदि में इसका विस्तृत वर्णन है। जब कोणिक अन्याय पर पूर्ण रूप से तुल गया तो महाराज चेटक को उसके अन्याय का दमन करने के लिए विवश होना पड़ा। यद्यपि महाराज चेटक भगवान महावीर के परम उपासकों में से थे, और वे इस घोर हिंसात्मक युद्ध को हर हालत में टालना चाहते थे किन्तु कोणिक का अहंभाव व उसकी लिप्सा इतनी तीव्र प्रबल हो उठी कि सिवाय युद्ध के उनके समक्ष कोई दूसरा मार्ग ही नहीं रहा था। परिणामतः दोनों के बीच घोर संग्राम हुआ, लाखों नर पतंग की तरह युद्धाग्नि में भस्मीभूत हो गये।[30]

इसी प्रकार राम भी नहीं चाहते थे कि मैं रावण के साथ युद्ध करूँ। क्योंकि राम भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल प्रतीक थे, और साथ ही मर्यादापुरुषोत्तम भी। उनका हृदय परम कारुणिक था, हिंसा व युद्ध से होने वाले अनर्थ उनकी आँखों के समक्ष नाच रहे थे, किन्तु जब राम के सामने दो अजीब प्रकार की समस्याएँ एक साथ खड़ी हो गई—एक सच्चरित्र नारी सीता की अनाचारी रावण के हाथ से मुक्ति और दूसरी रावण की अमानुषिक दानव-वृत्ति के दमन की। यदि रावण सीता को सहज रूप में राम के पास लौटा देता तो आगे युद्ध जैसी कोई परिस्थिति नहीं उत्पन्न होती। राम ने रावण को कई बार अपना दूत भेजकर यह सन्देश कहलवाया कि—मुझे तुम्हारी स्वर्णिम लंका की चाह नहीं है और न मेरे अन्तर में तुम्हारे असीम वैभव की अभिलाषा ही है। तुम तो केवल सीता को शान्तिपूर्वक लौटा दो। मेरे मन में तुम्हारे प्रति तनिक भी व्यक्तिगत द्वेष

३० भगवती सूत्र, शतक ७ उ० ६

नहीं है। यह सब कुछ रक्त-स्नान के आतंक को भी टाल, पर रावण अपने दुर्विचार से जरा भी इधर उधर हिला हुआ नहीं, तब राम को अपना अन्तिम निर्णय युद्ध का ही करना पड़ा। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'पंचवटी' काव्य में राम के मुख से कहलवाया है—

> 'वहाँ विघ्न बाधाओं को हम स्वयं बुलाने जाते हैं।
> फिर भी यदि वे आ जावें तो कभी नहीं घबराते हैं॥'

हाँ, तो राम रावण से लड़ने के लिए हाथ में धनुष उठाकर चल पड़े। महाभयंकर द्वन्द्व हुआ और अन्त में राम की विजय हुई।

उल्लिखित युद्धों में हिंसा हुई, इससे कोई भी इन्कार नहीं, पर इस हिंसा का सूत्रपात न तो महाराज चेटक ने किया और न राम ने ही, कोणिक तथा रावण की अमानुषिक दानव-वृत्ति ने ही करवाया। महाराज चेटक और राम ने तो अपने कर्त्तव्य का पालन मात्र किया है। यह हुआ अन्याय के प्रतीकार का एक हिंसात्मक रूप।

अहिंसात्मक प्रतीकार

अन्याय के प्रतीकार का दूसरा रूप है—अहिंसात्मक। अहिंसक प्रतीकार जीवन का उच्च आदर्श व मानव जीवन की उच्च भूमिका है। इसमें सामाजिक, राष्ट्रीय एवं वैयक्तिक अन्यायों का प्रतीकार किया जाता है, किन्तु हिंसक साधना से नहीं, अहिंसा के उपक्रम से किया जाता है। कहना चाहिए, बाह्य साधना से नहीं, किन्तु आभ्यन्तरिक साधना से ही उस हिंसा के प्रतीकार की यह प्रक्रिया है। भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध, ईसा तथा गांधी आदि अहिंसक प्रतीकार के उदाहरण हैं। उन्होंने अहिंसा के रास्ते से देश, समाज व राष्ट्र में व्याप्त हिंसा और अन्याय के प्रतीकार का प्रयास किया था।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व का समय भारतीय इतिहास में एक अन्धकारपूर्ण युग समझा जाता है। उस समय भारतीय क्षितिज-पर अन्ध-विश्वास और रूढ़िवाद के बादल सघन मंडरा रहे थे। यज्ञ के नाम पर देवी देवताओं के आगे मूक पशुओं के प्राणों की होली खेली जाती थी। स्त्री-समाज को हीन भावना से देखा जाता था। उन्हें मनुष्योचित अधिकारों से वंचित रखा जाता था। शूद्रों की दशा तो पशुओं से बुरी थी। उन्हें अनेक प्रकार के दुर्व्यवहारों से पीड़ित, प्रताड़ित किया जाता था। उस समय श्रमण संस्कृति के

उन्नायक भगवान महावीर ने शान्ति की अलख जगाई। ग्राम ग्राम नगर-नगर घूम घूमकर मानव समाज को अहिंसा और प्रेम का दिव्य सन्देश सुनाया। जातिवाद का बड़े स्वर में विरोध किया। उनके क्रान्तदर्शी विचार-वायु के झंझावात में अन्धविश्वास और यज्ञादि कुप्रथाओं के बादल बिखर गये और शान्ति का प्रकाश चमक उठा। मानव समाज में सर्वत्र शान्ति की लहर लहराने लगी। रौहिणेय जैसे दुर्दमनीय दस्युराज को और अर्जुन माली जैसे क्रूर हत्यारे को अपनी अहिंसक शक्ति से उन्होंने कुछ ही क्षणों में चरित्र सम्पन्न सत्पुरुष व दयामूर्ति बना लिया।

भगवान महावीर के समसामयिक महात्मा बुद्ध भी एक युगपुरुष थे। तथागत बुद्ध समाज की बुराइयों के साथ लड़े थे संघर्ष किया था। अंगुलीमाल जैसे निर्मम निर्दयी डाकू का उद्धार किया। उसे सदा के लिए अहिंसक बना दिया। कहना होगा कि भगवान महावीर की तरह बुद्ध ने भी समाज में शान्ति की नवज्योति जगाई थी और वे अपने अभियान में निरन्तर बढ़ते रहे।

करुणामूर्ति ईसा मसीह भी एक बहुत बड़ी शक्ति थे। उन्होंने विश्व को प्रेम और क्षमा का अमर सन्देश प्रदान करते हुए कहा— "यदि कोई दुश्मन तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे तो तुम दूसरा गाल भी उधर कर दो। यह स्वाभाविक है कि प्रत्याक्रमण न होने पर आक्रमण अपने आप शिथिल हो जाता है। अहिंसक प्रतीकार की यह एक प्रक्रिया है। प्रत्याक्रमण से आक्रान्ता को विशेष वेग मिलता है उसमें अधिक उग्रता आती है। आक्रान्ता को शान्त करने के लिए प्रत्याक्रमण अनिवार्य नहीं है। मन में प्रेम स्नेह व सद्भावना के द्वारा भी आक्रान्ता का प्रतिरोध हो सकता है।

गांधीजी सदा कहा करते थे कि— 'मैं ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ रहा हूँ, अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं। प्रत्येक अंग्रेज मेरा मित्र है।' यह तो सुनिश्चित है कि इस प्रकार की भावना प्रतिद्वन्द्वी को उत्तेजित करने के स्थान पर शान्ति पूर्वक विचार करने का सुअवसर प्रदान करती है। गांधीजी ने अंग्रेजों का सामना किया। एक बहुत बड़ी शक्ति के साथ लड़े थे पर अहिंसक बनकर लड़े। उन्हें हिंसा का पथ किसी भी स्थिति में पसन्द नहीं था। गांधीजी को साम्राज्यवाद का प्रतीकार करने में कई प्रकार की कठिनाइयां सहन करनी पड़ी,

पर वे कभी हतोत्साह नही हुए, और अन्त में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भारत के मैदानों में खदेड़ ही दिया। इस प्रकार गांधीजी ने भारत को अहिंसा के शस्त्र से ही आजादी दिलवाई।

हिंसक प्रतीकार की अपेक्षा अहिंसक प्रतीकार श्रेष्ठ व उत्तम है, पर है कष्ट-साध्य। इसमें आक्रान्ता की ओर से अनेक यातनाएँ देने पर भी कष्टसहिष्णु बनकर दृढ मनोबल का परिचय देना पड़ता है। यदि मानव के आत्मबल या मनोबल का पूरा विकास हो चुका है तो वह कभी भी अपने प्रयत्नों में विफल नहीं होता। भगवान् महावीर, बुद्ध, ईसा, गांधी आदि के पथ में अनेक विघ्न बाधाएँ चट्टानें बनकर खड़ी हुई, पर उनके मनोबल व प्रेममय व्यवहार के सम्मुख सब को झुकना पड़ा।

एक बार चैतन्य महाप्रभु बंगाल में अपनी शिष्य मण्डली के साथ कीर्तन करते हुए सड़क पर होकर गुजर रहे थे। मृदङ्गादि वाद्यों का गाघोष हो रहा था। "हरिबोल! हरिबोल! भवसिन्धु पार चल!" की ध्वनि में सभी मस्त बने हुए थे। तभी दो दुष्टों ने आकर उनके सिर में प्रहार किया। रक्त के फव्वारे छूट पड़े। शिष्य आततायी को पकड़ने के लिए दौड़े। तभी चैतन्य महाप्रभु की हृदय-तन्त्री झंकृत हो उठी— 'निताई! उन्होंने मुझे भले ही मारा, किन्तु मैं तो इनसे प्रेम का ही व्यवहार करूँगा।' कीर्तन पुन प्रारम्भ हुआ। हरिबोल! हरिबोल! की ध्वनि करते हुए चैतन्य महाप्रभु और उनके शिष्य बड़े वेग से नाच उठे। कुछ समय के पश्चात वे दुष्ट स्वयं भी इनके रंग में रंग कर नाचने लग गये। चैतन्य महाप्रभु की यह अहिंसा महान प्रभावशाली सिद्ध हुई। जीवन भर के लिए उन्होंने उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। इस प्रकार मनोबल व प्रेममय व्यवहार से ही ये महापुरुष अपने अभियानों में निरन्तर सफलता सम्पादन करते रहे हैं।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि अहिंसा न कायर है और न पंगु और न किसी के मार्ग में बाधक ही है। जो व्यक्ति अहिंसा को कायर तथा पंगु बतलाता है उसे ठण्डे मस्तिष्क से गहराई से सोचना चाहिए। और अहिंसात्मक प्रतीकार के इस स्वर्णिम इतिहास को उठाकर देखना चाहिए।

अहिंसा और राजनीति

अहिंसा वयक्तिक व सामाजिक जीवन को समुन्नत बनाने तक ही सीमित नहीं है किन्तु राजनैतिक क्षेत्र में भी उसकी प्रतिष्ठा निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो चुकी है। कुछ आलोचक अहिंसा को अव्यवहार्य बताते हैं तो कुछ इसे वैयक्तिक बताकर सामाजिक, व राजकीय प्रश्नों के लिए अनुपयोगी मानते हैं। किंतु उन्हें मैं कहूँगा कि जैनदर्शन द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का पूर्ण अध्ययन किये बिना वे ऐसी आलोचना न करें। अहिंसा तो विश्व का एक सर्वव्यापी सिद्धान्त है। वह जितना आध्यात्मिक क्षेत्र में सक्रिय है उतना ही सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में प्रभावशाली है। इसको व्यक्तिगत और सामाजिक व राजकीय प्रश्नों के लिए अनुपयोगी बताना अपनी अज्ञता सिद्ध करना है। मानवीय जीवन के जितने भी क्षेत्र व विषय हैं, उन सब में अहिंसा का अप्रतिहत प्रवेश है। धर्म, राजनीति, अर्थ, समाज, व्यापार, अध्यात्म, शिक्षा और विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में अहिंसा का अखण्ड प्रभुत्व है। सभी क्षेत्र अहिंसा की क्रीडाभूमि हैं।

कतिपय राजनीतिज्ञों का एक स्वर यह भी है कि शासन जैसे कठोर मार्ग में यदि अहिंसात्मक नीति को अपनाया गया और जनसमुदाय के साथ नम्रतापूर्ण आचरण किया गया तो राजकीय दृष्टि से नियन्त्रण कठिन हो जायगा। बिना दण्ड, पद्धति के अन्याय किस प्रकार रुक सकेंगे? इसके लिए वे मनु के इस सूक्त को आगे रखते हैं—"सर्वो दण्डजितो लोकः" अथवा "दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः।"

इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अभी अभी हमारे देश में विदेशी सत्ता के विरुद्ध एक अहिंसक युद्ध लड़ा गया। गांधी जी ने अहिंसा के प्रयोगों द्वारा चालीस करोड़ जनता को चिरकाल की पराधीनता के पश्चात् स्वाधीनता दिलाई। गांधी-युग की स्वाधीनता की देन तो अविस्मरणीय है ही, पर इससे भी अधिक गांधी के दर्शन से सहजतया जो मानव मस्तिष्क में अहिंसात्मक सृष्टि हुई है, वह अधिक मूल्यवान् है। उनकी राजनैतिक अहिंसा ने कम से कम ऐसा वातावरण तो उत्पन्न कर ही दिया कि आज हम अहिंसा व उसकी अप्रतिहतशक्ति के लिए विश्व को अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं रही है।

५

विभिन्न मतों में अहिंसा का निरूपण

●

'अहिंसा' भारतीय संस्कृति का प्राणभूत तत्त्व है। भारतीय चिन्तन के रोम रोम में अहिंसा का तत्त्व समाया हुआ है। उसकी उपलब्धि उन्हें माँ के दूध के साथ ही हो जाती है। यहाँ का वातावरण अहिंसा का वातावरण है। यहाँ की वायु अहिंसा की वायु है। जो व्यक्ति भारत में श्वास लेगा उसके जीवन में न्यूनाधिक अहिंसा तत्त्व अवश्य ही प्रवेश करेगा। यह तत्त्व भारतवासियों की बहुत बड़ी निधि है। इस निधि के महत्त्व को जानने के लिए भारतवासियों को पर्याप्त समय लगा है। इसके लिए बहुत बड़ी साधना व कठोर तपस्या करनी पड़ी है। आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से लेकर आज दिन तक यदि भारतीय संस्कृति में कोई मौलिक सुवर्णसूत्र अनुस्यूत हुआ है तो वह अहिंसा ही है। इस सूत्र में ही विश्व के समस्त धर्मों का समन्वय और संगम हो सकता है। —

अहिंसा का सिद्धान्त बड़ा व्यापक और विशाल है। अहिंसा की परिधि के अन्तर्गत समस्त धर्म और समस्त दर्शन समवेत हो जाते हैं। यही कारण है कि प्रायः सभी धर्मों ने इसे एक स्वर से स्वीकार किया है। हमारे यहाँ के चिन्तन में, समस्त धर्म-सम्प्रदायों में अहिंसा के सम्बन्ध में, उसकी महत्ता और उपयोगिता के सम्बन्ध में दो मत नहीं हैं भले ही उसकी सीमाएँ कुछ भिन्न भिन्न हों। कोई भी धर्म यह कहने के लिए तैयार नहीं कि झूठ बोलने में धर्म है, चोरी करने में धर्म है या अब्रह्मचर्य सेवन करने में धर्म है। जब इन्हें धर्म नहीं कहा जा सकता तो हिंसा को कैसे धर्म कहा जा सकता है? हाँ कुछ धर्मों में एवं धर्मग्रन्थों में हम हिंसा का विधि रूप भी परिलक्षित होता है पर वह हिंसा केवल विचारकों की दृष्टि से है, वह धर्म तो उस हिंसा

को भी अहिंसा मानकर ही चलता है। हिंसा को हिंसा के नाम से कोई स्वीकार नहीं करता। अतः किसी भी धर्मशास्त्र में हिंसा को धर्म और अहिंसा को अधर्म नहीं कहा है। सभी धर्म अहिंसा को ही परम धर्म स्वीकार करते हैं।

जैन-धर्म

पच्चीस सौ वर्ष पूर्व भारतवर्ष के महामानव भगवान महावीर ने अहिंसा की नींव को सुदृढ़ बनाने के लिए हिंसा के प्रति खुला विद्रोह किया। अहिंसा और धर्म के नाम पर हिंसा का जो नग्न नृत्य हो रहा था जनमानस को भ्रान्त किया जा रहा था, वह भगवान महावीर से देखा नहीं गया। उन्होंने हिंसा पर लगे धर्म और अहिंसा के मुखौटा को उतार फेंका, और सामान्य जनमानस को उदबुद्ध करते हुए कहा— हिंसा कभी भी धर्म नहीं हो सकती। विश्व के सभी प्राणी, वे चाहे छोटे हों या बड़े पशु हों या मानव—जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।[31] सबको सुख प्रिय है दुःख अप्रिय है। सबको अपना जीवन प्यारा है।[3] जिस हिंसक व्यापार को तुम अपने लिए पसन्द नहीं करते, उसे दूसरा भी पसन्द नहीं करता। जिस दयामय व्यवहार को तुम पसन्द करते हो उसे सभी पसन्द करते हैं। यही जिन शासन का (सब धर्मों का) सार है, निचोड़ है।[33] किसी के प्राणों को लूटना उनसे खिलवाड़ करना धर्म नहीं हो सकता। अहिंसा, संयम और तप यही वास्तविक धर्म है।[34] इस लोक में जितने भी त्रस और

---

३१ सव्व जीवा वि इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं।

—दशवैकालिक सूत्र, ६।११

३२ सव्वे पाणा पियाउया सुहसाया दुहपडिकूला।

—आचारांग सूत्र १।२।३

३३ जं इच्छसि अप्पणतो, जं च न इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि एत्तियगं जिणसासणयं॥

—बृहत्कल्प भाष्य ४५८४

३४ धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।

स्थावर प्राणी हैं। उनकी हिंसा न जान कर करो, न अनजान में करो और न दूसरों से ही किसी की हिंसा कराओ। क्योंकि सब के भीतर एक सी आत्मा है हमारी ही तरह सबको अपने प्राण प्यारे हैं, ऐसा मानकर भय और वैर से मुक्त होकर किसी प्राणी की हिंसा न करो। जो व्यक्ति खुद हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है और दूसरों की हिंसा का अनुमोदन करता है, वह अपने लिए वैर ही बढ़ाता है।[३५] अतः प्राणियों के प्रति वैसा ही भाव रखो, जैसा अपनी आत्मा के प्रति रखते हो। सभी जीवों के प्रति अहिंसक होकर रहना चाहिए। सच्चा संयमी वही है जो मन से, वचन से और शरीर से किसी की हिंसा नहीं करता। यह है—भगवान महावीर की आत्मौपम्य दृष्टि, जो अहिंसा में ओत प्रोत होकर विराट विश्व के सम्मुख आत्मानुभूति का एक उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत कर रही है।

विधेयात्मक और निषेधात्मक

जैनदर्शन की अहिंसा निषेध तक सीमित नहीं है, किन्तु विधेयात्मक भी है। 'नहीं मारना'—यह अहिंसा का एक पहलू है, उसका दूसरा पहलू है—मैत्री, करुणा और सेवा। यदि हम सिर्फ अहिंसा के नकारात्मक पहलू पर ही सोचेंगे तो यह अहिंसा की अधूरी समझ होगी। सम्पूर्ण अहिंसा की साधना के लिए प्राणी मात्र के साथ में मैत्री सम्बन्ध रखना, उसकी सेवा करना, उसे कष्ट से मुक्त करना आदि विधेयात्मक पक्ष पर भी उचित विचार करना होगा। जैन आगमों में जहाँ अहिंसा के साठ एकार्थक नाम दिए गए हैं, वहाँ वह

---

३५ जावन्ति लोए पाणा तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाणं वा न हणे नो विघायए॥ —दशवैकालिक

३६ अज्झत्थं सव्वओ सव्वं दिस्स पाणे पियायए।
न हणे पाणिणो पाणे भयवेराओ उवरए॥
—उत्तराध्ययन ६।१०

३७ सयं तिवायए पाणे अदुवाऽन्नेहिं घायए।
हणन्तं वाऽणुजाणाइ वेरं वड्ढइ अप्पणो॥
—सूत्र कृताङ्ग, १।१।१।३

दया, रक्षा अभय आदि के नाम से भी अभिहित की गई है। [38] उक्त शब्दों से ध्वनित होने वाला अर्थ विधेयात्मक अहिंसा की सूचना कर रहा है। गणधर सुधर्मा ने अभयदान का महत्त्व दिखलाते हुए कहा है—दानों में सर्वश्रेष्ठ व उत्तमदान अभय है। [39] अर्थात् जीवरक्षण का प्रवृत्ति ही दानों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आचार्यों ने भगवान् महावीर और गौतम का एक सुन्दर संवाद दिया है जो विधेयक अहिंसा पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। एक बार गौतम ने महावीर से कहा—'भगवन्! दो व्यक्ति हैं। एक आपकी सेवा करता है और दूसरा दीनदुखिया की सेवा करता है। आपकी दृष्टि में महान कौन है? किस व्यक्ति को आप अधिक उत्तम समझते हैं?" प्रश्न का समाधान करते हुए महावीर बोले—'गौतम! मेरी सेवा करने वाले की अपेक्षा दीन दुखिया की सेवा करने वाले को मैं कहीं अधिक उत्तम समझता हूँ। वे मेरे भक्त नहीं जो केवल मेरा नाम जपते हैं। मेरे सच्चे भक्त और सच्चे अनुयायी तो वे ही हैं, जो मेरी आज्ञा का पालन करते हैं।' [40]

प्रस्तुत संवाद से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुकम्पा दान, अभय दान तथा सेवा आदि अहिंसा के ही रूप हैं जो प्रवृत्तिप्रधान हैं। यदि अहिंसा केवल निवृत्तिपरक ही होती तो जैन आचार्य इस प्रकार का कथन कदापि नहीं करते। अहिंसा शब्द भाषाशास्त्र की दृष्टि से निषेध-वाचक है। इसी कारण बहुत से व्यक्ति इस भ्रम में फँस जाते हैं कि अहिंसा केवल निवृत्तिपरक है। उसमें प्रवृत्ति जैसी कोई चीज नहीं। किन्तु गम्भीर चिंतन करने के पश्चात् यह सत्य तथ्य स्पष्ट हुए बिना नहीं रहेगा कि अहिंसा के अनेक पहलू हैं, उसके अनेक रूप हैं। अतः प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों में अहिंसा समाहित है। प्रवृत्ति निवृत्ति—दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक कार्य में जहाँ प्रवृत्ति हो रही

---

३८ प्रश्न व्याकरण सूत्र (संवर द्वार)
(क) दया देहि रक्षा —प्रश्नव्याकरण वृत्ति
३९ दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं —सूत्रकृतांग अ० ६
४० आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति —६६१–६६२

है वहाँ दूसरे कार्य से निवृत्ति भी होती है। ये दोनों पहलू अहिंसा के साथ भी जुड़े हैं। जो केवल निवृत्ति को ही प्रधान मानकर चलता है वह अहिंसा की आत्मा को परख ही नहीं सकता। वह अहिंसा की सम्पूर्ण साधना नहीं कर सकता। यदि निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति न हो तो उस निवृत्ति का क्या मूल्य है? प्रवृत्ति-रहित निवृत्ति आखिर निष्क्रियता के गर्त में ढकेल देती है। निष्क्रियता जीवन का अभिशाप है। जीवनक्षेत्र में प्रवृत्ति किये बिना कोई भी कार्य सफल व सम्पन्न नहीं हो सकता।

जैन श्रमण के उत्तर गुणों में समिति और गुप्ति का विधान है। समिति की मर्यादाएँ प्रवृत्तिपरक हैं और गुप्ति की मर्यादाएँ निवृत्ति-परक हैं। इससे भी स्पष्ट है कि अहिंसा प्रवृत्तिमूलक भी है। प्रवृत्ति निवृत्ति—दोनों अहिंसारूप सिक्के की दो बाजू हैं। एक दूसरे के अभाव में अहिंसा अपूर्ण है। यदि अहिंसा के इन दोनों पहलुओं को समझ न सके तो अहिंसा की वास्तविकता से हम बहुत दूर भटक जायेंगे। असद् आचरण से निवृत्त बनो और सद्आचरण में प्रवृत्ति करो यही निवृत्ति और प्रवृत्ति की सुन्दर व संक्षिप्त व्याख्या है।

पण्डित सुखलाल जी ने अहिंसा के निवर्तक तथा प्रवर्तक रूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है— अशोक के राज्यकाल का अध्ययन करने से पता चलता है कि उसके व्यवहार में निवर्तक कार्यों के साथ प्रवर्तक कार्यों पर भी बल दिया गया। हिंसानिवृत्ति के साथ-साथ धर्मशाला बनवाना, पानी पिलाना, पेड़ लगाना आदि परोपकार के कार्य भी हुए हैं। अशोक ने प्रचार किया कि हिंसा न करना तो ठीक है पर दया धर्म भी करना उचित है। अपने लिए अस्तेय व्रत पालन करना पर दूसरों की मदद के लिए कुछ रखना भी आवश्यक है। जन्म से मांस खाने वाले के लिए मांस छोड़ना आसान है, पर होने वाले पशुवध को रोकने का प्रयत्न करना आसान नहीं है। व्यक्ति स्वयं दूसरों को दुःख न दे, लेकिन रास्ते में कोई घायल या भिखारी पड़ा है तो उससे बचकर निकल जाने से अहिंसा की पूर्ति नहीं होती। परन्तु उसे क्या पीड़ा है? क्यों है? उसे क्या मदद दी जाय? इसकी जानकारी और उपाय किये बिना अहिंसा अधूरी ही है अहिंसा केवल

निवृत्ति म मे चरिताथ नही हानी । उमका विचार निवृत्ति म स अवश्य हुआ है, किन्तु उसकी कृतार्थता प्रवृत्ति म ही हा सकती है । '[41]

एक बार महात्मा गाधी न उन व्यक्तियो का, जो अहिंसा की साधना म अग्रसर हाना चाहते थे, प्रसगवश समझाया था कि अहिंसा *जीवन का चमत्कार है, अहिंसा की साधना आराधना करते हुए भी तुम* अपने जीवन को शान्त सन्तुष्ट बना सकते हो । अहिंसा केवल निष्क्रिय नही, अपितु सक्रिय जीवन जीने क लिए प्रेरित करती है , अर्थात् अहिंसक का जीवन केवल निवत्तिप्रधान ही नही, किन्तु प्रवत्ति प्रधान भी होता है । यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि अहिंसक की प्रवत्ति भी दया और करुणा की भावना से ओत प्रोत होती है । उसके प्रत्येक काय म अहिंसा की विराट भावना मुखरित रहती है ।

साराश यह है कि—अहिंसक प्रवत्ति के बिना समाज का काम नही चल सकता । चूकि प्रवत्ति-शून्य अहिंसा समाज म जडता पदा कर देती है । *मानव एक शुद्ध सामाजिक प्राणी है, वह समाज म* जन्म लेता है और समाज म रहकर ही अपना सास्कृतिक विकास व अभ्युदय करता है उस उपकार के बदले मे वह (मानव) समाज को कुछ देता भी है । यदि कोई इस कत्तव्य की राह से विलग हो जाता है तो वह एक प्रकार मे उसकी असामाजिकता ही होगी । अत प्रवत्त रूप धम के द्वारा समाज की सेवा करना—मानव का प्रथम कत्तव्य है और इस कत्तव्य की जागरणा म ही मानव का अपना व समाज का कल्याण निहित है ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैन-दशन व जन धम की अहिंसा का स्रोत विधि और निषेध उभय रूप म प्रवाहित हुआ ।

बौद्ध-धम

●

बौद्ध धम ने भी हिंसा का आत्यन्तिक विरोध किया है । 'आय की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए तथागत बुद्ध ने कहा है—"प्राणियो की हिंसा करने से कोई आर्य नही कहलाता, किन्तु जो प्राणी की हिंसा नही

41 अहिंसा के आचार और विचार का विकास । पृ०७–६

करता उसी का ग्राय कहा जाता है।[४२] सब लोग दण्ड से डरते हैं, मृत्यु से भय खाते हैं। दूसरों को अपनी तरह जानकर मानव न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा करे।[४३] जो न स्वयं किसी का घात करता है, न दूसरों से करवाता है, न स्वयं किसी को जीतता है, वह सब प्राणियों का मित्र होता है, उसका किसी के साथ बैर नहीं होता।[४४] जैसा मैं हूँ—वैसे ये हैं, तथा जैसे ये हैं—वैसा मैं हूँ' इस प्रकार आत्मसदृश मानकर न किसी का घात करे, न कराए।[४५] सभी प्राणी सुख के चाहने वाले हैं, इनको जो दण्ड से घात नहीं करता है, वह सुख का अभिलाषी मानव अगले जन्म में सुख को प्राप्त करता है।[४६] इस प्रकार तथागत बुद्ध ने भी हिंसा का निषेध करके अहिंसा की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया है।

तथागत बुद्ध का जीवन 'महाकारुणिक जीवन' कहलाता है। दीन-दुखितों के प्रति उनके मन में अत्यन्त करुणा भरी थी। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में भी उन्होंने तीर्थंकर महावीर की भाँति अनेक प्रसंगों पर अहिंसात्मक प्रतीकार के उदाहरण रखे। उनकी अहिंसात्मक और शान्ति प्रिय वाणी से अनेक बार घात प्रतिघात में, शौर्यप्रदर्शन में क्षत्रियों का खून बहता बहता रुक गया।

'बुद्धचर्या' में बुद्ध का एक जीवन प्रसंग है कि एक बार ग्रीष्म के प्रचण्डताप से सरोवर, नदियों और नालों का जल सूख गया था।

---

४२ न तेन आरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं आरियोति पवुच्चति॥
—धम्मपद १९।१५

४३ सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बेस जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं करवा न हनेय्य न घातये॥
—धम्मपद १०।१

४४ यो न हन्ति न घातेति न जिनाति न जापये।
मित्तं सो सब्बभूतेसु वेरं तस्स न केनचीति॥ —इतिवुत्तक, पृ० २०

४५ यथा अहं तथा एते यथा एते तथा अहं।
अत्तानं उपमं करवा न हनेय्य न घातये॥ —सुत्तनिपात ३।३।७।२७

४६ सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं॥ —उदान पृ० १२

सर्वत्र जलाभाव के कारण आकुलता-व्याकुलता और छटपटाहट छा रही थी। कपिलवस्तु और कोलियनगर की सीमा पर बहने वाली रोहिणी नदी जेठ मास की भयंकर गर्मी में सिमटकर एक छोटी-सी धारा के रूप में बह रही थी। इस पर शाक्यों और कोलियों में रोहिणी की धारा के उपयोग के सम्बन्ध में विवाद छिड़ गया।

शाक्यों ने उस पानी का उपयोग सिर्फ अपने ही खेतों के लिए करने का आग्रह किया और कोलियों ने उस पर अपना हक जतलाते हुए स्वयं ही उस पानी का उपयोग करने की जिद ठानली। दोनों राजकुलों में विवाद बढ़ा, क्रोध की आग प्रज्ज्वलित हो उठी। प्रतिस्पर्धा के आवेश में दोनों ओर की तलवारें खिंचकर म्यान से बाहर आने को आतुर हो गईं।

तथागत बुद्ध उस समय रोहिणी के तट पर ही कपिलवस्तु में चारिका कर रहे थे। बुद्ध ने आमने सामने डटे सैनिकों से पूछा—

'किस बात का कलह है महाराजा!'

'रोहिणी के पानी का झगड़ा है भन्ते!'—दोनों ओर से उत्तर मिला।

'पानी का क्या मूल्य है, महाराजा!'—तथागत ने दोनों सेनापतियों की ओर देख कर उद्बोधन किया।

'कुछ भी नहीं, भन्ते! पानी बिना मूल्य कहीं पर भी मिल जाता है।'—शाक्यों और कोलियों का उत्तर था।

क्षत्रियों का क्या मूल्य है, महाराजा! —तथागत की गम्भीर-वाणी प्रस्फुटित हुई।

'क्षत्रिय का मूल्य लगाया नहीं जा सकता भन्ते! वह अनमोल है।'—दोनों ओर से प्रत्युत्तर मिला।

अनमोल क्षत्रियों का रक्त साधारण उदक के लिए बहाना क्या उचित है? तथागत के इस प्रश्न पर सब मौन, नतशिर थे। "शत्रुओं में अशत्रु होकर जीना परम सुख है, वैरियों में अवैरी होकर रहना चाहिए।" बुद्ध के प्रेममय संदेश पर दोनों दलों में समझौता हो गया।

तीर्थंकर महावीर की भांति बुद्ध भी श्रमण-संस्कृति के एक महान प्रतिनिधि थे। उन्होंने भी सामाजिक व राजनैतिक कारणों से होने वाली हिंसा की आग को प्रेम और शांति के जल से शान्त करने के

न्न प्रयोग किए, और इस आस्था को सुदृढ बनाया कि समस्या का प्रतीकार सिर्फ तलवार ही नहीं, प्रेम और सद्भाव भी है। यही अहिंसा का मार्ग वस्तुतः शान्ति और समृद्धि का मार्ग है।

वैदिक-धर्म

वैदिक धर्म भी अहिंसा मूलक धर्म है। "अहिंसा परमो धर्म" के अटल सिद्धान्त को सम्मुख रखकर उसने अहिंसा की विवेचना स्थान-स्थान पर की है। अहिंसा ही सब से उत्तम पावन धर्म है अतः मनुष्य को कभी भी, कहीं भी किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।[४७] जो कार्य तुम्हें पसन्द नहीं है उसे दूसरों के लिए कभी न करो।[४८] इस नश्वर जीवन में न तो किसी प्राणी की हिंसा करो और न किसी को पीड़ा पहुंचाओ। किन्तु सभी आत्माओं के प्रति मैत्री भावना स्थापित कर विचरण करते रहो। किसी के साथ वैर न करो।[४९] जैसे मानव को अपने प्राण प्यारे हैं, उसी प्रकार सभी प्राणियों को अपने अपने प्राण प्यारे हैं। इसलिए बुद्धिमान् और पुण्यशाली जो लोग हैं, उन्हें चाहिए, कि वे सभी प्राणियों को अपने समान समझें।[५०]

इस विश्व में अपने प्राणों से प्यारी दूसरी कोई वस्तु प्रिय नहीं है। इसलिए मानव जैसे अपने ऊपर दया भाव चाहता है उसी प्रकार

---

४७ अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभृतां वरः।
तस्मात् प्राणभृतः सर्वान् न हिंस्यान्मानुषः क्वचित् ॥
—महाभारत (आदि पर्व) ११।१३

४८ *आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।* —मनुस्मृति

४९ *न हिंस्यात् सर्वभूतानि, मैत्रायणगतश्चरेत्।*
नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥
—महाभारत (शान्ति पर्व), २७८।५

५० *प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि वै तथा।*
आत्मौपम्येन गन्तव्यं बुद्धिमद्भिर्महात्मभिः ॥
— महाभारत (अनुशासन पर्व), ११५।१६

दूसरा पर भी दया करे।[51] दयालु आत्मा ही सभी प्राणिया को अभयदान देता है, उसे भी सभी अभयदान देते है।[52] 'अहिंसा'—यही एक मात्र पूर्ण धर्म है। हिंसा, धर्म और तप का नाश करने वाली है।[53] ऐसा कहकर महाभारतकार महर्षि वेदव्यास जी ने अहिंसा भगवती की शतशत वन्दना की है। वेदव्यास जी वैदिक धर्म के महान् प्रतिनिधि है अत उनका प्रस्तुत निरूपण सम्पूर्ण वैदिक धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाला है। अत यह स्पष्ट है कि वैदिक धर्म भी अहिंसा की महत्ता को एक स्वर में स्वीकार करता है।

वैदिक संस्कृति में अहिंसा की जो गौरव-गाथा वर्णित है, उसका निदर्शन ऊपर कर दिया गया है। किन्तु कभी-कभी यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि जहा अहिंसा की इतनी गुण-गरिमा बखानी गई है, उस संस्कृति और परम्परा में नरबलि तथा पशुबलि जसी हिंसात्मक प्रवृत्तिया कैसे चली और याज्ञिक हिंसा को अहिंसा का रूप क्या दिया गया ?

इस प्रश्न के उत्तर में भारत की सांस्कृतिक परम्परा का इतिहास देखना होगा। विद्वानों का मत है कि बलि, और यज्ञ की संस्कृति मूलत आर्य-संस्कृति नहीं है किन्तु आर्य संस्कृति के साथ जब द्रविड आदि आर्येतर संस्कृतियों का मिश्रण हुआ तब ये सब प्रथाएँ आर्य संस्कृति में समाविष्ट हो गई। नरबलि और पशुबलि तथा यज्ञ में पशु आदि का होम आर्येतर संस्कृति की देन है। वेदों में यज्ञ का वर्णन है, किन्तु वे यज्ञ बहुत ही सौम्य होते थे उनमें कुछ वनस्पति विशेष, धान्य, तथा घृत व दुग्ध आदि की आहुतियाँ दी जाती थी। इस सन्दर्भ में 'त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र' में वर्णित नारद और

५१ नहि प्राणात् प्रियतर लोके किञ्चन विद्यते।
तस्माद् दयां नर कुर्यात् यथात्मनि तथा परे॥

महाभारत (अनुशासन पर्व) ११६।८

५२ अभय सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापर।
अभय तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम॥

महाभारत (अनुशासन पर्व), ११६। १३

५३ अहिंसा सकलो धर्म। —महाभारत (शान्ति पर्व)

वसु का सम्वाद दर्शनीय है, और जो वदिक ग्रन्थों में भी कई स्थलों पर उपलब्ध होता है।

उस सम्वाद में वसु वैदिकसूक्त—'अजयष्टव्यम्' का अर्थ 'बकरा' करता है तब नारद उसे गुरु के द्वारा बताए गए सही अर्थ का बोध कराता है कि 'अज' का अर्थ पुराना धान्य' होता है, ऐसा गुरु ने कहा था।

साराश यह है कि जिस श्रमण और वदिक-सस्कृति का प्राण अहिंसा और करुणा रही है वह सस्कृति नरबलि एव पशुबलि जसे अमानुषिक क्रूर कार्यों को धर्म के साथ नहीं जोड सकती।

गीतोपदेष्टा श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन को जो 'युद्धस्व' का प्ररणा प्रद सन्देश दिया है, वह एक राजनीति की अनिवार्यता है। किन्तु अगर युद्ध और सहार ही धर्म होता तो फिर वे शान्तिदूत बनकर भारत भूमि को युद्ध की ज्वालाओं से बचाने का प्रयत्न क्या करते? और फिर—"शुनि चव श्वपाके च पण्डिता समर्दाशन" का सूत्र देकर समता और समत्वयोग की साधना पर इतना बल क्यों देते?

वदिक-सस्कृति में हिंसा और युद्ध का जहाँ भी विधान मिलता है वह अन्य सस्कृति, एवं कुछ स्वार्थों का प्रभाव मात्र है और युद्ध भी समय की एक अपरिहार्यता का समाधान मात्र है। वस्तुत तो श्रमण सस्कृति की भाँति वदिक सस्कृति भी अहिंसा प्रधान रही है। वहाँ भी दया और करुणा का अमर सगीत मुखरित होता रहा।

इस्लाम धर्म

इस्लाम धर्म की बुनियाद भी अहिंसा पर ही टिकी हुई है। इस्लामधर्म में कहा है—खुदा सारे जगत (खल्क) का पिता (खालिक) है। जगत में जितने प्राणी हैं वे सभी खुदा के पुत्र (बन्दे) हैं।" कुरान शरीफ की शुरूआत में ही अल्लाहताला 'खुदा' का विशेषण दिया है—"बिस्मिल्लाह रहिमानुरहीम"—इस प्रकार का मंगलाचरण देकर यह बताया गया है कि सब जीवों पर रहम करो।

जो पशु पृथ्वी पर चलते हैं और जो पक्षी अपनी पाँखों से आकाश में उड़ते हैं वे दूसरे कोई नहीं, सब तुम्हारे जैसे ही जीवधारी प्राणी

हैं, अर्थात् उनको भी अपना जीवन उतना ही प्यारा है जितना कि तुम्हें अपना है।'[५४] मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी हजरतअली साहब ने कहा है—'हे मानव ! तू पशु पक्षियों की कब्र अपने पेट में मत बना" अर्थात् पशु-पक्षियों को मार कर खाना नहीं चाहिए। इसी प्रकार 'दीनइलाही' के प्रवर्तक मुगल सम्राट अकबर ने कहा है 'मैं अपने पेट को दूसरे जीवों का कब्रिस्तान बनाना नहीं चाहता। जिसने किसी की जान बचाई—उसने मानो सारे इन्सानों को जिन्दगी बख्शी।'[५५]

उपर्युक्त उदाहरणों से यही प्रतिभासित होता है कि इस्लाम धर्म भी अपने साथ अहिंसा की दृष्टि को लेकर चला है। बाद में उसमें जो हिंसा का स्वर गूँजने लगा उसका प्रमुख कारण स्वार्थी व रसनालुप व्यक्ति ही है। उन्होंने हिंसा का समावेश करके इस्लाम धर्म को बदनाम कर दिया है। वरना उसके धर्म ग्रन्थों में हिंसा करने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

ईसाई धर्म

प्रेम के मसीहा महात्मा ईसा ने यह स्पष्ट कहा है—'तू अपनी तलवार म्यान में रख ले क्योंकि जो लोग तलवार चलाते हैं वे सब तलवार से ही नाश किये जायेंगे।'[५६] अन्यत्र भी बतलाया है—'किसी भी जीव की हिंसा मत करो। तुमसे कहा गया गया था कि तुम अपने पड़ोसी से प्रेम करो और अपने दुश्मन से घृणा। पर मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम अपने दुश्मन को प्यार करो और जो लोग तुम्हें सताते हैं उनके लिए प्रार्थना करो। तभी तुम स्वर्ग में रहने वाले अपने पिता की संतान ठहरोगे, क्योंकि वह भले और बुरे—दोनों पर अपना सूर्य उदय करता है। धर्मियों और अधर्मियों—दोनों पर मेह बरसाता है। यदि तुम उन्हीं से प्रेम करो जो तुम से प्रेम करते हैं तो तुमने कौन सी बड़ी बात की ?'[५७] इतना ही नहीं, वरन अहिंसा का वह पैगाम

---

५४ कुरान शरीफ —सुराने आम।

५५ व मन् अहया हा फकअन्नमा अहयन्नास जमीअन।

—कुरान शरीफ ५।३५

५६ मत्ती। —२६।५१-५२

५७ मत्ती। —५।४४-४६

तो काफी गहरी उडान भर बठा है—अपने शत्रु स प्रेम रखो। जो तुम से वर करें, उनका भी भला सोचो, और करो। जो तुम्हे शाप दे, उन्हें आशीर्वाद दो। जो तुम्हारा अपमान करे, उसके लिए प्रार्थना करो। जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड मारे, उसकी तरफ दूसरा भी गाल कर दो। तुम्हारी चादर छीन ले उसे अपना कुरता भी ले लेने दो।[५८]

ईसाई धर्म का मन्तव्य है कि जगत के समस्त पदार्थों का मुझको सम्पूर्ण ज्ञान हो, परन्तु यदि मुझ में दया नहीं है तो प्रभु के समक्ष वह ज्ञान मेरे क्या काम आयगा? वह तो मेरा न्याय कर्मानुसार ही करेगा।[५९] इस प्रकार ईसाई धर्म भी अहिंसा का ही समर्थन करता है।

ईसाई धर्म में भारतीय संस्कृति की तरह प्रेम, करुणा और सेवा की अत्यन्त सुन्दर भावनाएँ व्यक्त की गई हैं। यह बात दूसरी है कि स्वार्थी और अहवादी व्यक्तियों ने धर्म के नाम पर लाखों—करोडों यहूदियों का खून बहाया धर्मयुद्ध रचे और करुणा की जगह तलवार तथा प्रेम की जगह धर्म का प्रचार करने लगे।

मध्यकालीन ईसाई धर्म का रूप वस्तुतः एक धर्म का रूप नहीं है किन्तु स्वार्थी और जगखोर व्यक्तियों के अहकार का निदर्शन है। धर्म की सही आत्मा को समझने के लिए ईसामसीह के जीवन दर्शन एवं उनके उपदेशों को पढना चाहिए।

यहूदी धर्म

यहूदी धर्म में हिंसा का खण्डन करते हुए बताया गया है कि—वह आदमी दुष्ट कहा जायगा, जो किसी भाई के खिलाफ हाथ उठाता है, फिर वह भले ही किसी को मारे नहीं।[६०] किसी आदमी के आत्म सम्मान को चोट नहीं पहुचानी चाहिए। लोगों के सामने किसी

---

५८ लूका —६।२७-३७।

५९ क्राइस्टनु —अनुकरण।

६० सिफरा सय्य —व्यवस्था, १६।२।

आदमी का अपमानित करना उतना ही बड़ा पाप है, जितना उसका खून कर देना।[६१]

अहिंसा के सिद्धान्त को आत्मसात करते हुए बताया गया है कि—यदि तुम्हारा शत्रु तुम्हें मारने को आये और वह भूखा-प्यासा तुम्हारे घर पहुँचे—तो उसे खाना दो, पानी दो।[६२]

हम यह न्याय कि कोई आदमी संकट में है डूब रहा है उस पर दस्यु डाकू या हिंसक शेर चीते आदि हमला कर रहे हैं तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसकी रक्षा करें। देह बल के अभाव में यदि ऐसा न कर सकें, तो हम अपने धन-बल से उसकी प्राण रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए।[६३] प्राणीमात्र के प्रति निर्वैरभाव रखने की प्रेरणा प्रदान करते हुए बतलाया है—अपने मन में किसी के प्रति वैर का दुश्मनी का दुर्भाव मत रखो।[६४]

इस प्रकार यहूदी धर्म के उन्नायकों की दृष्टि भी अहिंसा से ही आप्लावित प्रतीत होती है।

पारसी और ताओ धर्म

पारसी धर्म के महान प्रवर्त्तक महात्मा जरथुस्त ने अपनी गाथा में कहा है—"जो सबसे अच्छे प्रकार की जिन्दगी गुजारने से लोगों को रोकते हैं, अटकाते हैं और पशुओं को मारने की खुश-खुशाल सिफारिश करते हैं, उनको अहुरमज्द बुरा समझते हैं।"[६५] अतः अपने मन में किसी से बदला लेने की भावना मत रखो। सोचो कि तुम अपने दुश्मन से बदला लोगे तो तुम्हें किस प्रकार की हानि, किस प्रकार की चोट, और किस प्रकार का सर्वनाश भुगतना पड़ सकता है, और किस प्रकार बदले की भावना तुम्हें लगातार सताती रहेगी। अतः

---

६१ ता० बाबा मेतसिया — ५८ (ब)।

६२ नीति। २५।२१ परमिदारास

६३ ता० सनहेद्रिन। —७३ अ०

६४ तोरा। —लैव्यव्यवस्था १६।१७

नोट —प्रस्तुत प्रकरण का आधार है—यहूदी धर्म क्या कहता है?

—श्रीकृष्णदत्त भट्ट

६५ गाथा। —हा० ३४ ३

दुश्मन से भी बदला मत लो। बदले की भावना से अभिप्रेरित होकर कभी कोई पापकर्म मत करो। मन में सदा सबका सुन्दर विचारों के दीपक जगाए रखो।[६६]

ताओ धर्म के महान् प्रणेता—'लाओत्से' ने अपने धर्म ग्रन्थ में अहिंसात्मक विचारों की अभिव्यञ्जना करते हुए कहा है—'जो लोग मेरे प्रति अच्छा व्यवहार करते हैं उनके प्रति मैं अच्छा व्यवहार करता हूँ। जो लोग मेरे प्रति अच्छा व्यवहार नहीं करते, उनके प्रति भी मैं अच्छा व्यवहार करता हूँ।'[६७]

कनफ्यूशस धर्म के प्रवर्तक कांगफ्यूत्सी ने बतलाया है—"तुम्हें जो चीज नापसन्द है वह दूसरे के लिए हर्गिज मत करो।"[६८]

इस प्रकार विविध धर्मों में अहिंसा का उच्च स्थान दिया गया है। वस्तुतः अहिंसा और दया की भावना से शून्य होकर कोई धर्म धर्म रह ही नहीं सकता जैसे वायु के बिना प्राणी जीवित नहीं रह सकता। इस दृष्टि से सभी धर्मों पर अहिंसा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

समीक्षात्मक एक दृष्टि

अहिंसा के उपर्युक्त विवेचन व व्याख्या के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि सभी धर्मों ने अहिंसा को सर्वोपरि सिद्धान्त माना है, तथापि उनमें जैन धर्म तथा भगवान महावीर का स्थान प्रमुख है। कारण यह है कि जहाँ इतर धर्म व उनके प्रवर्त्तक प्रचारक अहिंसा के किसी एक पहलू विशेष को लेकर चले हैं, वहाँ जैन धर्म तथा उसके उन्नायकों एवं उपासकों ने अहिंसा के सभी पहलुओं की आत्मा का साक्षात्कार किया है। श्री लक्ष्मीनारायण 'सरोज' के शब्दों में अहिंसा की तुलनात्मक समीक्षा इस प्रकार है—

ईसामसीह की अहिंसा में माँ का हृदय है, और कनफ्यूशियस की अहिंसा में तो हिंसा की रोकथाम मात्र है, तथागत बुद्ध की अहिंसा तो हिंसा को भी साथ लेकर चली है, और महात्मा गांधी

---

६६ पहेलवी टैक्स्ट्स से।

६७ लाओ तेह किंग।

६८ पारसी धर्म क्या कहता है? —श्रीकृष्णदत्त भट्ट (के आधार से)

का अहिंसा जितनी राजनीतिक है, उतनी धार्मिक नहीं। पर भगवान् महावीर की अहिंसा में उस विराट पिता का हृदय है जो सुमन-सा मृदु कठोर वक्तव्य दिए है।[69]

यहाँ सर्वप्रथम हम बौद्ध धर्म को लें। बौद्ध धर्म के आदि प्रवर्तक महात्मा बुद्ध ने महावग्ग में एक स्थान पर कहा है—'इरादा-पूर्वक किसी को मत सताओ।' जहाँ एक ओर इस प्रकार का कथन करते हुए दिखलाई पड़ते हैं वहाँ वे ही विनयपिटक में प्रकारान्तर से मांसभक्षण की खुले तौर पर आज्ञा प्रदान करते हैं। महात्मा बुद्ध स्वयं भी सूअर का मांस खाकर अतिसार के रोग से आक्रान्त बने थे।[70] सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलाल जी ने 'सामिष निरामिष-आहार' प्रकरण में बतलाया है कि—बौद्ध पिटकों में जहाँ बुद्ध के निर्वाण की चर्चा है वहाँ कहा गया है कि चुन्द नामक एक व्यक्ति ने बुद्ध को भिक्षा में सूकरमांस दिया था जिसके खाने से बुद्ध को उग्रशूल पैदा हुआ और वही उनकी मृत्यु का कारण बना। बौद्ध पिटकों में अनेक स्थलों पर—ऐसा वर्णन [illegible] है कि बौद्धभिक्षु अपने निमित्त से नहीं मारे गये पशुओं का [illegible] ग्रहण करते थे।[71] उक्त दृष्टि से बौद्ध धर्म की अहिंसा [illegible] की विसंगति-सी प्रतीत होती है।

वैदिक धर्म के सर्वमान्य एवं प्रामाणिक ग्रन्थ [illegible] है—जिसका मैं मांस खा रहा हूँ वह बदले में [illegible] प्रकार मनु ने जहाँ अहिंसा धर्म पर अपनी [illegible] हिन्दू संस्कृति के मूल स्रोत ऋग्वेद में इसके विरो[illegible] है—'स्वर्गकामो यजेत् पशुमालभेत' अर्थात् स्वर्ग [illegible] करे और पशुवध करे। इससे स्पष्ट है कि [illegible] अहिंसा के साथ मैत्री सम्बन्ध जोड़कर भी [illegible]

---

६९ अहिंसा का आदर्श। —श्री [illegible] पृ० [illegible]
७० दीघ निकाय—महापरिनिब्बाण सुत्त।
७१ दर्शन और चिंतन, द्वि० खण्ड —(सामिष और निरामिष) पृ० [illegible]
७२ मां स भक्षयिता मुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः।

सिद्ध करना चाहते हैं। इसी वृत्ति का यह परिणाम है कि आज हिन्दू समाज में मांसाहार का प्रचलन बढ़ा हुआ है। काका कालेलकर ने अपने एक निबन्ध में बतलाया है—"किसी ने सही कहा है कि भारत में मांस खाने वालों की संख्या न खाने वालों से अधिक है। न खाने वालों में एक ऐसा भी वर्ग है जिसे मांस मिलता नहीं, इसलिए नहीं खाता मिलने पर खाता ही है या तीज त्यौहार पर खाता है। जीव दया के कारण प्राणियों को न मारने वाले लोगों में जैन, वैष्णव, नामधारी सिख, महानुभाव सम्प्रदाय के लोग और अघोरी सम्प्रदाय के लोग भी हैं। अमुक अमुक प्रदेशों में ब्राह्मण और कुछ बनिये मांस नहीं खाते। कुछ मांस नहीं खाते, किन्तु मछली खाते हैं। यह हालत है हमारे देश की।"[७३] इसी बात को पण्डित सुखलाल जी ने यों लिखा है—"सुविदित है कि वैदिक परम्परा मांस मत्स्यादि को अखाद्य मानने में उतनी सख्त नहीं है जितनी कि बौद्ध और जैन परम्परा। वैदिक यज्ञ यागों में पशुवध को धर्म्य मानने-जानने का विधान आज भी शास्त्रों में है ही। इतना ही नहीं बल्कि भारतव्यापी वैदिक परम्परा के अनुयायी कहलाने वाले अनेक जाति, दल ऐसे हैं, जो ब्राह्मण होते हुए भी मांस मत्स्यादि को अन्न की तरह खाद्यरूप से व्यवहृत करते हैं और धार्मिक क्रियाओं में तो उसे धर्म्य रूप से स्थापित भी करते हैं।"

वैदिक परम्परा की ऐसी स्थिति होने पर हम देखते हैं कि उसकी अनेक कट्टर अनुयायी शाखाओं और उपशाखाओं ने हिंसा-सूचक शास्त्रीय वाक्यों का अहिंसा परक अर्थ किया है और धार्मिक अनुष्ठानों में से तथा सामान्य जीवन व्यवहार में से मांस-मत्स्यादि को अखाद्य करार देकर बहिष्कृत किया है। किसी भी अतिविस्तृत परम्परा के करोड़ों अनुयायियों में से कोई मांस को अखाद्य और अग्राह्य समझे—यह स्वाभाविक है। पर अचरज तो तब होता है कि जब वे उन्हीं धर्मशास्त्रों के वाक्यों का अहिंसा परक अर्थ करते हैं, जिनका कि हिंसा परक अर्थ उसी परम्परा के प्रामाणिक और पुराने दल करते हैं। सनातन परम्परा के सभी प्राचीन मीमांसक व्याख्याकार

---

७३ अहिंसा की परिणति-समन्वय और सत्याग्रह।

यज्ञ-यागादि में गौ, अज, आदि के वध का धर्म्य स्थापित करते हैं, जब कि वैष्णव, आर्य समाज, स्वामीनारायण आदि जैसी अनेक वैदिक परम्पराएँ उन वाक्यों का या तो बिल्कुल जुदा अहिंसा परक अर्थ करती हैं, या ऐसा सम्भव न हो वहाँ ऐसे वाक्यों को प्रक्षिप्त कहकर प्रतिष्ठित शास्त्रों में स्थान देना नहीं चाहतीं। मीमांसक जैसी पुरानी वैदिक परम्परा के अनुगामी और प्रामाणिक व्याख्याकार शब्दों का यथावत अर्थ करके हिंसाप्रथा से बचने के लिए इतना ही कहकर छुट्टी पा लेते हैं कि कलियुग में वैसे यज्ञ-यागादि विधेय नहीं हैं। और वैष्णव आर्य समाज आदि वैदिक शाखाएँ तो उन शब्दों का अर्थ ही अहिंसा-परक करती हैं या उन्हें प्रक्षिप्त मानती हैं।

सारांश यह है कि अतिविस्तृत और अनेकविध आचार विचार वाली वैदिक परम्परा भी अनेक स्थलों में शास्त्रीय वाक्यों का हिंसा परक अर्थ करना या अहिंसा-परक—इस मुद्दे पर पर्याप्त मतभेद रखती है।[७४] उक्त विवेचना से सिद्ध होता है कि वैदिक परम्परा एक रूप में नहीं, किन्तु अनेक रूपों में विभक्त है और यही कारण है कि उसकी हिंसा अहिंसा की योजना भी विविध स्वरूपों में विकसित हुई है। परिणामतः वैदिक अहिंसा हमारे समक्ष समीचीन दिशा निर्देशन न कर सकी।

इस प्रसंग पर विश्वामित्र की अहिंसा को भी हम विस्मृत नहीं कर सकते। वे दूसरों से हिंसा करवा कर अहिंसा का आत्मिक लाभ सम्प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने स्वयं राक्षसों का वध नहीं किया पर यज्ञ में विघ्न-बाधाएँ उपस्थित करने वाले राक्षसों को राम लक्ष्मण के द्वारा मरवा डाला। इससे महर्षि विश्वामित्र भी पूर्ण अहिंसक सिद्ध नहीं हुए। वे प्रेरणाप्रद हिंसा के समर्थक बन गये।

परशुराम तो स्वयं हिंसा द्वारा ही अहिंसा की स्थापना करना चाहते थे। तभी तो उन्होंने इस धरती पर से हिंसा का वातावरण पैदा करने वाले क्षत्रियों का अनेकों बार निश्शेष करने का प्रयास किया। यह तो निश्चित है कि हिंसा के वृक्ष पर अहिंसा के मधुर फल नहीं लग सकते। हाथ में धनुष कन्धे पर फरसा लेकर इक्कीस

---

७४ दर्शन और चिन्तन। —(हिन्दी)
(द्वितीय खण्ड), जैन धर्म और दर्शन पृ० ५२–५३

वार पृथ्वी का क्षत्रियरहित बनाकर भी परशुराम अपने उद्देश्य में विफल ही रह क्योंकि उनका प्रयोग गलत था। ययाति के प्रयोग की भांति यह भी एक बहुत भ्रान्त प्रयोग था। ययाति भोग भोग कर विरक्त होना चाहता था। इसी प्रकार परशुराम भी रक्त की नदी बहाकर अहिंसा की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। परन्तु अन्ततोगत्वा परशुराम न हिंसक क्षत्रियों को ही मिटा सके, और न अहिंसा की प्रस्थापना ही कर सके।[७५]

ईसाई मत के महान प्रवर्तक ईसा मसीह ने बाईबिल में एक स्थान पर कहा है—

Thou saul not kill—दाउ साल्ट नोट किल—'तू दूसरा को मत मार।' किन्तु अन्य स्थान पर ईसा मसीह स्वयं ही सारे गांव को मछलियाँ मार कर खिलाते हैं।[७६]

कनफ्यूशस धर्म के प्रवर्तक कागफ्यूत्सी ने कहा—'किसी के प्राण न लो।' पर वे किसी खास ऋतु में किसी खास पक्षी का मांस न खाने की ही प्रेरणा देते हैं। यह बात असंदिग्ध है कि कागफ्यूत्सी ने केवल अहिंसा को समझने मात्र की चेष्टा की है। वे उसके अन्तस्तल तक न पहुंच सके, उसकी आत्मा का स्पर्श नहीं कर सके। तभी तो अहिंसा के अमृत में हिंसा का गरल मिला बैठे।

किन्तु जैन धर्म में इस प्रकार की अहिंसा के सम्बन्ध में दुविधा-जनक और परस्पर विरोधी बातें कहीं भी परिलक्षित नहीं होगी। यदि कहीं कोई विवाद ग्रस्त उल्लेख दिखलाई पड़ता है तो वह केवल अपवाद की स्थिति में ही और यदि उन प्रकरणों का पूर्वापर अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट परिज्ञात हो जायगा कि सत्य-तथ्य क्या है? आज उन प्रकरणों को ठीक न समझने के कारण कुछ विचारकों ने असंगत प्रलाप किया है। श्री धर्मानन्द कौसाबी ने 'महात्मा बुद्ध' पुस्तक में महावीर और उनकी परम्परा के श्रमणों पर मांसाहार का लांछन लगाया है। जिसका सचोट उत्तर इतिहासवेत्ता श्री कल्याण विजय जी महाराज ने "मानव भोज्य मीमांसा" में दिया है।[७७]

---

७५ भारतीय संस्कृति। —सानेगुरुजी के भावों के आधार पर

७६ यतीन्द्रसूरि स्मृतिग्रन्थ—अहिंसा का आदर्श। पृ २६
—(लक्ष्मीनारायण सरोज का लेख)

जन धर्म म आध्यात्मिक जीवन निमाण के लिए अहिंसा-तत्त्व सर्वोपरि है। जन श्रमण सवप्रथम अहिंसा व्रत का ग्रहण करता है। गृहस्थ भी इसी व्रत का स्वीकार करता है। यद्यपि यहाँ पूर्णता और अपूर्णता का लेकर दोनों की अहिंसा म पर्याप्त अन्तर है, तथापि उसका प्रायमिकता म कोई मूल भेद नहीं है। यहाँ प्रसगत एक बात म और स्पष्ट कर देना चाहूगा, वह यह कि जन धम की अहिंसा का इतना उच्च स्थान क्या रहा है जब कि अहिंसा के पावन सिद्धान्त को सभी धर्मों ने एक स्वर म स्वीकार किया है ?

इसके उत्तर म कहना होगा कि जन धम के अतिरिक्त प्राय समस्त अन्य धर्मों के प्रवत्तक अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार करके भी प्राणी मास खाने रहे ह जो अहिंसा की साधना म बहुत बडा अवरोधक है। साथ ही व परिस्थितियों के सामने झुकते रहे है। *विचार, आचार व उच्चार के द्वारा भी किसी के अकल्याण की कल्पना न करना अहिंसा है* तो प्राणी मास खान पर अहिंसा का अस्तित्व कहाँ और कस अवस्थित रह सकता है ? तभी तो भगवान महावीर न मास भक्षण करने वाले को नरक पथ का पथिक बतलाया है।[७८] इसी कारण से जनधम तथा उसकी अहिंसा की महत्ता सर्वोपरि एव सब विदित है कि उसके प्रवतक प्रचारक व उसके उपासक मासाहार से सर्वथा अलग थलग रहे है।

किसी भी तीर्थङ्कर न मास खाया हो ऐसा उल्लेख शास्त्रों म ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। यही बात उनके उपासकों की है। मास खाना तो दूर रहा व किसी को खाने की प्रेरणा भी नहीं देते और न खाने वाले का समर्थन ही करते ह। यही जन धम की अहिंसा की महत्ता है एव मूलभूत विशेषता है।

जन धम की यह बहुत बडी महत्ता रही है कि हजारो-लाखो वर्षो से आने वाली सद्धान्तिक परम्परा म अब तक किसी प्रकार का परिवर्तन न हो सका। वह हिमालय जसे सुदृढ स्थायित्व को लिए है।

---

७८ औपपातिक सूत्र —प्रथम उपांग

परवर्ती आचार्यों ने भी देश-काल की अनेक स्थितियाँ-परिस्थितियाँ समुत्पन्न होने के बावजूद भी मूलभूत बातों में तनिक भी परिवर्तन नहीं किया, परिस्थितियों के समक्ष धर्म को नहीं झुकाया। परिणामतः आज जैन समाज विभिन्न शाखा प्रशाखाओं में पृथक् हो जाने पर भी अहिंसा के स्वर्णिम सिद्धान्त में एक मत है।

६ | अहिंसा की आवश्यकता

●

❀ यह तो सुविदित हो चुका कि सभी धर्मों ने सीधे रूप में या कुछ घूम फिर कर अहिंसा को धर्म माना है हाँ, उसकी व्याख्या में शाब्दिक अन्तर हो सकता है किन्तु भावान्तर नहीं। किसी ने अहिंसा को सेवा कहा है किसी ने प्रेम कहा है, किसी ने नीति कहा है, किसी ने क्षमा कहा है तो किसी ने आत्मीयभाव कहा है। ये सब अहिंसा के ही अंग हैं, रूप है।

अहिंसा का अमोघ अस्त्र

आज के इस अणु-युग में अहिंसा की क्या उपयोगिता है? यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। जबकि विश्वक्षितिज पर तृतीय विश्व युद्ध के नगाड़े गड़गड़ाने लग गये हैं राष्ट्रों के बीच तनाव की स्थिति काफी गम्भीर बन चुकी है न जाने कब और किस क्षण मानव युद्धाग्नि में पतंग की तरह स्वाहा हो जायगा, ऐसी स्थिति में सुरक्षा के लिए अणुबम व उदजनबम समर्थ नहीं वरन् अहिंसा और प्रेम के अमोघ अस्त्र ही मानव जाति का त्राण कर सकते हैं। इन्हीं के द्वारा ही विश्व की रक्षा सम्भव है। आज बहुत से वैज्ञानिकों के उर्वर मस्तिष्क इस कल्पनालोक के झूले पर झूल रहे हैं कि हम विश्व की रक्षा अणुबम के द्वारा ही करेंगे। किन्तु इस विषय में हमें यह कहना है कि आज विश्व को विनाशक अणुबम की आवश्यकता नहीं, सृजनात्मक अहिंसाणुबम की आवश्यकता है और यही विश्व शान्ति का मूल सूत्र है।

विश्वशान्ति का सार्वभौम आधार

युगयुगान्तर के ऋषि-महर्षियों पैगम्बरों व तीर्थंकरों ने अहिंसा साधना के जो प्रयोग किये हैं उनसे भी यह प्रमाणित होता है कि विश्व शान्ति का कोई सार्वभौम आधार बन सकता है तो वह केवल अहिंसा ही है, यह शाश्वत ध्रुव एवं सत्य निर्णय है।

अहिंसा एक ऐसा धर्म है जिसकी आवश्यकता व्यक्ति, परिवार, समाज, देश, और राष्ट्र-सभी को है। इसके अभाव में न व्यक्ति जीवित रह सकता है और न परिवार, समाज व राष्ट्र ही अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रख सकता है। अतः सांस्कृतिक व आत्मिक विकास के लिए अहिंसा का स्वर जन जन के अन्तर्मानस में झंकृत करने की अपेक्षा है।

दो सामाजिक हिंसा एक चिन्तन

* सामाजिक हिंसा के विविध रूप
  शोषण का कुचक्र
  धर्म के ये ठेकेदार
  दहेज का दावानल
* जातीयता के घेरे मे
  कर्म की प्रधानता
  प्रभु के दरबार में
  घृणा किससे ?
* प्रागतिहासिक वर्ण व्यवस्था
  वैदिक संस्कृति में
* मानव जाति एक है
  जाति से पहचान
* मानव और उसके कार्य
  सामाजिक हिंसा की लहर से बचाव

सामाजिक हिंसा के विविध रूप

●

※ भारतीय तत्त्वचिन्तकों ने हिसा के दो प्रकार बतलाये हैं—एक प्रत्यक्ष हिसा और दूसरी परोक्ष हिसा। प्रत्यक्ष हिसा को मानव अपनी आँखों से सामने रात दिन देखता है, अनुभव करता है और उससे बचने का प्रयत्न भी करता रहता है। किन्तु परोक्ष हिसा का रूप इतना सूक्ष्म, व्यापक और विशाल है कि साधारणतया वह व्यक्ति की समझ में नहीं आता। अतः उसकी गहराई को छू नहीं पाते। अधिकांश का तो उसकी तरफ ध्यान ही नहीं जाता, फिर उससे बचने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? पर हम यह विस्मरण नहीं कर देते हैं कि प्रत्यक्ष हिसा से भी अधिक कभी-कभी परोक्ष हिसा आत्मा के सद्गुणों का घात करने में सहायक सिद्ध होती है।

परोक्ष हिसा के विविध और विचित्र रूप हैं—जो सामाजिक धार्मिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्रों में परिव्याप्त हैं और विविध धाराओं में प्रवाहित हैं। आज प्रत्येक सभ्य नागरिक प्रत्यक्ष हिसा से तो बचने का यथा सम्भव प्रयत्न करता है, पर परोक्ष हिसा से वह कहाँ बच पाता है? अतः यहाँ पर हम सामाजिक हिसा के विविध पहलुओं पर जरा गम्भीरता के साथ विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

शोषण का कुचक्र

आज का युग जनतन्त्र का युग है। इस जनतन्त्र के युग में भी शोषण का कुचक्र अपनी क्रूर तथा द्रुतगति से चल रहा है। देश के लाखों व्यक्ति रोटी रोजी के लिए तड़फ रहे हैं। उद्योगपति व मजदूर वर्ग के बीच एक गहरा तनाव पैदा हो रहा है, और इस तनाव का मूल कारण है—आर्थिक वैषम्य। जब तक आर्थिक वैषम्य की परिसमाप्ति नहीं होगी, तब तक यह तनाव बना ही रहेगा। इसके उन्मूलन के लिए देश में विभिन्न प्रयत्न जारी हैं किन्तु वे प्रयत्न किस सीमा तक सफल हुए हैं या हो रहे हैं, यह एक चिन्तनीय प्रश्न है। आज का प्रत्येक समाजवादी विचारक उद्योगपति के पक्ष में नहीं, अपितु मजदूर वर्ग के पक्ष में है। शोषकों के पक्ष में नहीं, शोषितों के पक्ष में है। वह चाहता है कि यह शोषण का कुचक्र शीघ्र ही समाप्त हो और विश्व शोषितों की आहों से सन्तप्त न हो, पर खेद है कि शोषण का यह कुचक्र समाप्त नहीं हो रहा है। अधिक से अधिक तेज होता जा रहा है। शोषण वृत्ति जीवित मानव का रक्त सोचने वाली एक गुप्त मशीनरी है। इसके द्वारा लाखों व्यक्तियों की जिन्दगियाँ अव्यवस्थित हो गई हैं, व हो रही हैं। यह हमारे देश के लिए अभिशाप व कलंक है। किन्तु वर्तमान में इस घृणित वृत्ति से कौन मुक्त है? एक सामान्य क्लर्क से लेकर उच्चस्तरीय अधिकारी भी इससे मुक्त नहीं है। व्यापारी समाज भी किसी सीमा तक इससे पीछे नहीं है। वह भी शोषणचक्र को व्यापक बनाने में सहयोगी बना हुआ है। शोषण की उत्तप्त विषैली वायु को दुर्दान्त लपटें समग्र भूमण्डल पर फैल चुकी हैं। हिन्दी साहित्य के महाकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर की भाषा में—

> सोम सागिनी से विष फूंका
> शुरू हो गई चोरी।
> लूट मार शोषण प्रहार,
> छीना झपटी बरजोरी॥

आज भाग्य देश भारत में क्या नहीं हो रहा है? यह देश वह देश है जहाँ सोने चाँदी व मोतियों की दुकानें खुली पड़ी रहती थीं।

जिसकी उज्जस्वल गौरव गाथा पाश्चात्य विचारकों ने मुक्त कण्ठ से गाई है। किंतु आज उसके गौरव की ऊर्जस्वलता शोषण के धूलि कणों से मलिन हो गई है। जब से मानवजीवन को लोभ नागिन ने अपने प्रबल शिकंजे से ग्रस्त कर लिया है तब से मानव दानव बनकर, लूटमार शोषण प्रहार कालाबाजार, रिश्वत आदि के काले कृत्यों के विष से ग्रस्त हो रहा है।— अहिंसा परमो धर्म ' और "मित्ती मे सव्वभूएसु" का पाठ पढ़ने वाले भी शोषण के हथकण्डों से मुक्त कहाँ हैं ? इस कारण आज हमारी अहिंसा केवल बौद्धिक स्तर तक ही सीमित रह गई है, वह आचार में नहीं आ रही है। कई व्यक्ति कीड़े मकोड़े तथा चींटियों पर दयाभाव रखते हैं। दूर-दूर जंगलों में जाकर आटा और शक्कर उन्हें खिलाते हैं। उन्हे बचाने के लिए उनकी करुणा सदा सजग रहती है किन्तु दलित शोषित व गरीब मनुष्यों का शोषण करते समय न जाने उनका वह दयास्रोत कहाँ सूख जाता है ? अपने आश्रितों को प्रताडित करने में वे जरा भी नहीं हिचकिचाते। जो व्यक्ति कीड़े मकोड़ों और चींटियों पर करुणा का अमृत वर्षण कर सकता है, वह अपने एक नौकर के साथ सद्व्यवहार क्यों नहीं कर सकता ? आज नौकर और अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ कितना अनुचित एवं पशुताका-सा व्यवहार किया जा रहा है ? उसे दिन भर काम में घसीटा जाता है, समय की पाबन्दी कुछ भी नहीं रखी जाती, मनमाना उसपर रौब गाठा जाता है। यदि उसके हाथ से कभी छोटी-सी भूल हो गई— अथवा कारणवशात वह समय पर उपस्थित न हो सका तो उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाता है ? उपालम्भ की बौछारों के अतिरिक्त उस बिचारे गरीब की एक दिन की रोजी ही काट ली जाती है। वह रोजी नहीं, वरन् एक प्रकार से उस गरीब के मुँह का कौर छीना जाता है।

धर्म के ये ठेकेदार

समाज में कई धर्म के ठेकेदार ऐसे भी हैं जो गरीब किसान को कुछ रकम देते हैं पर जितनी देते हैं उसकी कई गुनी ब्याज के रूप में पुनः ले लेते हैं। वर्षों तक ब्याज चलता है। ब्याज चुकाते चुकाते उस व्यक्ति की उम्र ही पूरी हो जाती है। फिर भी उसे मुक्ति कहाँ ?

उसके पुत्र-पौत्र प्रपौत्र से भी मय ब्याज के मूल रकम वसूल की जाती है। अहिंसा की बातें करने वाले जरा इस सूक्ष्म हिंसा की भयानकता को भी समझें। क्या अहिंसा धर्म का पालन करने वाले के लिए यह व्यवहार उचित है? क्या यह अहिंसा-सम्मत व्यवहार है? अहिंसा और करुणा जिस मानस में विराजमान होगी वह इस शोषण को सहन कर सकेगा? शोषण निर्दयता है, अहिंसा के साथ उसकी कोई संगति नहीं बैठ सकती। जरा हृदय की तराजू पर चढ़ाकर इसे परखें।

दहेज का दावानल

●

वर्तमान काल में दहेज प्रथा का दावानल बड़े जोरों से प्रज्वलित हो रहा है। उसकी भयंकर आग की लपटें सर्वत्र धधक रही हैं। उन लपटों में देश समाज और राष्ट्र सभी बुरी तरह झुलस रहे हैं।

सामाजिक परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए विवाह संस्कार एक आवश्यक तथा मंगलमय पवित्र बंधन समझा जाता रहा है। किन्तु आज उसने एक भीषण समस्या का रूप धारण कर लिया है। आज विवाह संस्कार का अर्थ हो गया है—एक प्रकार का सौदा-व्यापार। मानव के तृष्णातुर मानस ने इस पवित्र संस्कार को भी अर्थार्जन का माध्यम बनाकर विकृत कर डाला है। विवाह एक व्यापार बन गया है। यह बात कितनी लज्जास्पद है कि मानव अपनी सन्तान को पशु आदि की तरह खुले आम बोलियां लगाकर बेचता है। कभी लड़कियों पर बोलियां लगाई जाती थीं तो आज लड़कों पर लगाई जा रही हैं। जब लड़कियों के भाव तेज थे तो लड़के वालों को रुपया देना पड़ता था। पर आज लड़कों के भाव तेज हैं तो लड़की वालों को तिजोरियां खाली करनी पड़ रही हैं। लड़के का पिता विवाह-संस्कार को धनप्राप्ति का एक सुंदर अवसर समझता है और इसका पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए वह विवाह के पूर्व ही दहेज का ठहराव कर लेता है। उस ठहराव में—लड़के की पढ़ाई आदि का व्यय मय ब्याज के वसूल करने की चेष्टा की जाती है। जब ठहराव पूर्ण निश्चित हो जाता है तब कहीं विवाह तय हो पाता है। परिणामतः विवाहसंस्कार एक मंगलमय प्रसंग होने पर भी आज लड़की वाले के लिए भार और संकट बन गया है। भारत वर्ष

में दहेज प्रथा प्राचीन समय में भी थी, किंतु इस घृणित रूप में नहीं थी, जिस रूप में आज दिखलाई पड़ रही है। पहले कोई लुक छिपकर दहेज-ठहराव लेता या देता तो पता होने पर उसे समाज का अपराधी समझा जाता था। लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। किन्तु आज खुलम-खुला दहेज लिया दिया जा रहा है। कोई किसी से नहीं डरता। ऐसा प्रतीत होता है—जैसे कि दहेज सामाजिक प्रतिष्ठा का एक प्रमुख आधार बन गया है। किन्तु वस्तुतः यह भी शोषण वृत्ति की तरह ही समाज के लिए हेय है। यह सभ्य समाज का कलंक है। इससे न जाने कितने परिवार उजड़ गए हैं। कितने ही आर्थिक भार के कारण इतने टूट गये हैं जो वर्षों के परिश्रम के पश्चात् भी अब तक ऊपर न उठ सके। कभी-कभी दहेज का अभिशाप नव विवाहिता वधुओं के प्राणों का ग्राहक भी बन जाता है। अभीष्ट दहेज न मिलने पर ससुराल में वधुओं को निर्दयतापूर्वक सताया जाता है, धिक्कारा जाता है और इतना अधिक सताया व धिक्कारा जाता है कि वे अधीर होकर आत्मघात करने पर भी उतारू हो जाती हैं। इस प्रकार दहेज नृशंस हिंसा का रूप नहीं तो क्या है? दहेज सामाजिक उत्कर्ष में बहुत बाधक है। अपने तुच्छ आर्थिक प्रलोभन में पड़कर भावी परिजनों के जीवन का बर्बाद करना कहाँ तक उचित समझा जा सकता है? समाज में सभी व्यक्तियों की स्थिति समान नहीं होती। कुछ देने की स्थिति में होते हैं, तो कुछ नहीं भी। जिसके पास देने का कुछ नहीं है, फिर भी प्रथा निर्वाह के लिए उसे कुछ देना ही पड़ता है। वह चाहे घर बार बेच के दे अथवा ऋण लेकर दे, पर देना अवश्य होता है। किन्तु जब ऋण समय पर नहीं चुका पाता, तब उसके भीतर मानसिक हिंसा की प्रक्रिया कितनी भयंकर रूप से जागृत हो उठती है? इसकी कल्पना करना कठिन है। वस्तुतः इस दहेज प्रथा की बदौलत कितने परिवारों की स्थिति अस्त-व्यस्त हो जाती है।

दहेज प्रथा का ही यह परिणाम है कि आज बहुत सी लड़कियाँ, जो शादी के योग्य हैं अपने पिता के घर में मन मारकर, अपमान का विषघूँट पीकर, नीचा सिर किये बैठी हुई हैं। कइयों ने अपने पिता को इस चिन्ता से मुक्त करने के लिए प्राण दे डाले हैं कई गरीब अभागे पिता तो विवश विकल होकर 'ऊँट के गले में बिल्ली

बाधने वाली उक्ति के अनुसार प्रौढ या वृद्ध पुरुषो के साथ अपनी प्राणप्यारी मोन-सी बेटी का सम्बन्ध जोड देते हैं। फिर भी सामाजिक व्यवस्था के इस दोष का निवारण करने के लिए अब तक किए गए सभी प्रयत्न बहुत ही अकिंचित्कर तथा असफलप्राय सिद्ध हुए हैं।

दहेज वर्तमान भारतीय समाज की एक ज्वलन्त समस्या है जो समाज के कर्णधारो को गहराई से चिन्तन करने के लिए उत्प्रेरित करती है। यह सामाजिक हिंसा का नग्नतम रूप है।

EE

२ | जातीयता के घेरे

आज हम समाज के जीवन पृष्ठो का गहराई से अध्ययन करते है तो वहा न जाने कितने ही वादो का झमेला हमारे समक्ष समुपस्थित हो जाता है। कही व्यक्तिवाद है तो कही परिवारवाद है। कही समाजवाद है तो कही पथवाद है। कही धर्मवाद है तो कही जातिवाद है। सभी वाद अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग आलाप रहे है। इन वादो मे वास्तविकता कम है अवास्तविकता अधिक सचाई का अश अल्प है, असत्य का विशेष, हित और लाभ की मात्रा कम है, अहित तथा अलाभ की मात्रा अधिक। यो यो कहना चाहिए कि ये वाद स्वार्थी मानवो के मनका एक मात्र दुराग्रह है। इन वादो के घेरे म घिरकर मानव अपनी सही मजिल को भूल गया है। अपने ध्येय स च्युत हो गया है। उसे कत्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान ही नही होने पा रहा है। उसकी दृष्टि धुधली हो गई है, और चिन्तन का दायरा भी अत्यधिक सकुचित हो गया है। ऐसी स्थिति म ही तो हिंसा और अज्ञान को पनपने का अवसर मिलता है।

धम या अहिंसा के नाम पर पथ सम्प्रदाय व जाति को आश्रय देना हिसा को प्रोत्साहित करना है। वास्तव मे मानव मानव के बीच भेद भाव की दीवार खडी करना हिंसा का ही एक रूप है, अधम है।

श्रमण सस्कृति के सूत्रधार भगवान् महावीर ने जातिवाद का घोर विरोध किया है। भारत के इस विराट् प्रागण म उस समय जातिवाद के नाम पर ऊँच-नीच तथा स्पृश्यास्पृश्य की विषली

लहर पर्याप्त फैल चुकी थी। ब्राह्मण वर्ग के अतिरिक्त न किसी को स्वतन्त्रता-पूर्वक बोलने का अधिकार था, और न किसी को वेदशास्त्र पढ़ने का ही। वेदमन्त्र का उच्चारण करना तो दूर रहा यदि कोई कानों से वेदमन्त्र सुन भी लेता तो उसके कानों में गरमा गरम शीशा उडेल दिया जाता था। शूद्रों के साथ तो इतना कठोर व्यवहार किया जाता था कि लोग उनकी छाया से भी परहेज किया करते थे। राजपथ पर उन्हें चलने का अधिकार नहीं था। इस प्रकार अस्पृश्यता के दूषित वायुमण्डल में जनसमाज का, मानव की आन्तरिक चेतना का दम घुटता जा रहा था। उक्त परिस्थितियों में क्रान्ति के महान सूर्य भगवान् महावीर ने जात पात का खण्डन करते हुए कहा—'समस्त मानव जाति एक है अखण्ड है। जाति के आधार पर मनुष्यों में ऊँच-नीच की कल्पना करना मानवता का घोर अपमान है, सदाचार और सद्गुणों का तिरस्कार है। वस्तुतः जाति से न कोई ऊँच है न नीच न पवित्र है न अपवित्र। शरीर सबका एक समान है। आखिर देह जड़ पुद्गल का पिण्ड ही तो है। इसमें नैसर्गिक भेद कुछ भी नहीं है। पवित्रता और अपवित्रता उत्कृष्टता और निकृष्टता, उच्चता और नीचता जाति पर नहीं किन्तु मानव के सदसद आचरण पर अवलम्बित है।[1]

कर्म की प्रधानता

भगवान् महावीर ने वर्णव्यवस्था में कर्म (आचरण तथा आजीविका) को प्रधानता दी है। कर्म से ही मानव ब्राह्मण, कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।[2] अर्थात् कोई भी व्यक्ति जन्म से ऊँच-नीच नहीं होता। कर्म से ही ऊँच-नीच होता है। यदि कोई मानव जन्म से ही ऊँचा होता है तो जरा इतिहास के पृष्ठ उलट कर देखना चाहिए। रावण विश्व की एक

---

१ सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, न दीसइ जाइविसेस कोई।

—उत्तराध्ययन सूत्र १२।३७

२ कम्मुणा बम्भणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

—उत्तराध्ययन सूत्र, २५-३३

२ | जातीयता के घेरे में

●

आज हम समाज के जीवन पृष्ठों का गहराई से अध्ययन करते है तो वहा न जाने कितने ही वादो का झमेला हमारे समक्ष समुपस्थित हो जाता है। कही व्यक्तिवाद है तो कहीं परिवारवाद है। कहीं समाजवाद है तो कहीं पथवाद है। कहीं धर्मवाद है तो कहीं जातिवाद है। सभी वाद अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग आलाप रहे है। इन वादो में वास्तविकता कम है अवास्तविकता अधिक, सचाइ का अंश अल्प है, असत्य का विशेष,हित और लाभ की मात्रा कम है अहित तथा अलाभ की मात्रा अधिक। या यो कहना चाहिए कि ये वाद स्वार्थी मानवो के मनको एव मात्र दुराग्रह है। इन वादो के घेरे में घिरकर मानव अपनी सही मंजिल को भूल गया है। अपने ध्येय से च्युत हो गया है। उसे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान ही नही हाने पा रहा है। उसकी दृष्टि धुंधली हो गई है, और चिन्तन का दायरा भी अत्यधिक संकुचित हो गया है। ऐसी स्थिति मे ही तो हिंसा और अन्याय को पनपने का अवसर मिलता है।

धर्म या अहिंसा के नाम पर पथ सम्प्रदाय व जाति को आश्रय देना हिंसा को प्रोत्साहित करना है। वास्तव मे मानव-मानव के बीच भेद भाव की दीवारें खडी करना हिंसा का ही एक रूप है, अधर्म है।

श्रमण संस्कृति के सूत्रधार भगवान् महावीर ने जातिवाद का घोर विरोध किया है। भारत के इस विराट प्रांगण में उस समय जातिवाद के नाम पर ऊँच-नीच तथा स्पृश्यास्पृश्य की विषैली

लहर पर्याप्त फन चुकी थी। ब्राह्मण वर्ग के अतिरिक्त न किसी को स्वतन्त्रता-पूर्वक बोलने का अधिकार था और न किसी को वेदशास्त्र पढ़ने का ही। वेदमन्त्र का उच्चारण करना तो दूर रहा, यदि कोई कानों से वेदमन्त्र सुन भी लेता तो उसके कानों में गरमा गरम शीशा उँडेल दिया जाता था। शूद्रों के साथ तो इतना कठोर व्यवहार किया जाता था कि लोग उनकी छाया से भी परहेज किया करते थे। राजपथ पर उन्हें चलने का अधिकार नहीं था। इस प्रकार अस्पृश्यता के दूषित वायुमण्डल से जनसमाज का, मानव की आन्तरिक चेतना का दम घुटता जा रहा था। उक्त परिस्थितियों में क्रान्ति के महान सूर्य भगवान् महावीर ने जात पात का खण्डन करते हुए कहा— समस्त मानव जाति एक है अखण्ड है। जाति के आधार पर मनुष्यों में ऊँच-नीच की कल्पना करना मानवता का घोर अपमान है सदाचार और सद्गुणों का तिरस्कार है। वस्तुतः जाति से न कोई ऊँच है न नीच, न पवित्र है न अपवित्र। शरीर सबका एक समान है। आखिर देह जड़ पुद्गल का पिण्ड ही तो है। इसमें नैसर्गिक भेद कुछ भी नहीं है। पवित्रता और अपवित्रता, उत्कृष्टता और निकृष्टता, उच्चता और नीचता जाति पर नहीं किन्तु मानव के सदसद् आचरण पर अवलम्बित है।"[1]

कर्म की प्रधानता

भगवान् महावीर ने वर्णव्यवस्था में कर्म (आचरण तथा आजीविका) को प्रधानता दी है। कर्म से ही मानव ब्राह्मण, कर्म से ही क्षत्रिय कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।[2] अर्थात् कोई भी व्यक्ति जन्म से ऊँच-नीच नहीं होता। कर्म से ही ऊँच-नीच होता है। यदि कोई मानव जन्म से ही ऊँचा होता है तो जरा इतिहास के पृष्ठ उलट कर देखना चाहिए। रावण विश्व की एक

---

१ सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, न दीसइ जाइविसेस कोई।
—उत्तराध्ययन सूत्र १२।३७

२ कम्मुणा बम्भणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा॥
—उत्तराध्ययन सूत्र, २५-३३

बहुत बड़ी शक्ति थी। वह जन्म की दृष्टि से क्षत्रिय था, और वैदिक परम्परा के अनुसार ब्राह्मण फिर क्यों जनता की दृष्टि में घृणा का पात्र बना? प्रत्येक इतिहासकार की लेखनी ने क्या तिरस्कार की भाषा में उसका चित्र चित्रित किया? इन्सान की परख उसके सद्विचारों और सद्गुणों से होती है, न कि अमुक जाति में जन्म लेने से। एक उर्दू शायर का यह तराना देखिए—

> सीरत के हम गुलाम हैं,
> सूरत हुई तो क्या?
> सुर्खो—सफेद मिट्टी की,
> सूरत हुई तो क्या?

हरिकेशी जाति में कौन थे? जैन परम्परा के अनुसार उनकी उत्पत्ति चाण्डाल कुल में हुई थी। जब वे जीवन लेकर संसार के रंगमंच पर आए तो चारों ओर से उन्हें घृणा व तिरस्कार का पुरस्कार मिला। जगह जगह अपमान का विष मिला। कहीं पर भी उन्हें आदर सम्मान का अमृतकण प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु जब उन्हें पवित्रता की राह प्राप्त हुई और उस पर अपने दृढ़ कदम बढ़ाने आरम्भ किए तो सारा संसार उनके समक्ष नतमस्तक हो गया। उस महात्मा के चरणों में सम्राटों और कोटि-कोटि देवों के मस्तक श्रद्धा से झुक गये। अर्जुन माली का जीवन भी एक क्रूर दैत्य का सा जीवन था। बारह सौ साठ स्त्री पुरुषों को उसने अकाल में ही काल कवलित बना दिया। किन्तु जब वह राजगृह का हत्यारा अर्जुन दिव्य-पुरुष भगवान महावीर के सान्निध्य में आया और उसे जीवन की सही दिशा मिली तो कुछ ही समय में वह करुणा का देवता विश्व-वंद्य बन गया। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय परम्परा में कर्म की ही विशेषता रही है, न कि जन्म की।

प्रभु के दरबार में

भगवान् महावीर के चरणों में जितने भी साधक आए उन सबका समान स्वागत हुआ। गौतम जैसे विचक्षण बुद्धि के धनी ब्राह्मण भी आए तो ऐवन्ता जैसे सुकुमार क्षत्रिय बालक भी आए, और जीवन की सान्ध्यवेला में खोया-खोया सा दरिद्र कठियारा

भी आया किन्तु प्रभु के हृदय मे उन सबके लिए समान स्थान था। जो भी उनके चरणो मे आया, उस एक ही आदेश मिला—'जहाँ सुह देवाणुप्पिया! मा पडिबन्ध करेह" देवानुप्रिय, आत्मकल्याण के कार्य मे विलम्ब मत करो। कौन ऊँचा और कौन नीचा कौन महान् और कौन हीन कौन योग्य और कौन अयोग्य—इसका मापदण्ड *जाति व कुल नहीं, किन्तु त्याग व सयम की साधना होती थी, वहाँ* समत्वमूलक दृष्टि का साम्राज्य था। कवि की भाषा मे—

ऊँच नीच का भेद नहीं था,
जन जन में समता थी।
था कुटुम्ब-सा जनसमाज
सब पर सब की ममता थी॥

आत्मौपम्य का यह विलक्षण दृश्य भगवान् महावीर के दरबार मे साक्षात देखा जा सकता था। वहाँ धनी और गरीब का कोई भेद नहीं था। सबको समान स्थान प्राप्त था। भगवदवाणी सुनने के सभी समान अधिकारी थे। समान रूप से ही प्रभु का उपदेशामृत सब पर बरसा करता था। जो वाणी एक रक के लिए मुखरित होती थी वही वाणी एक सम्राट् के लिए भी, और जो वाणी एक सम्राट के लिए मुखरित होती थी वही एक रक के लिए भी।[1] विश्व के समस्त प्राणियो पर भगवान महावीर की अभेद दृष्टि थी।

घृणा किससे ?

जनधर्म का यह अमर उद्घोष है कि—विश्व की समस्त जीव जाति स्वभावत समान एव पवित्र-पावन है। कोई भी आत्मा स्वभावत बुरा या पतित नही है। वह अनन्त अनन्त सदगुणो का प्रभास्वर पुज है। यदि कोई बुराई है तो वह केवल व्यक्ति की अपनी भूलो और गलतियो के कारण ही है। एक व्यक्ति जब तक बुराइयो की राह पर चलता है तब तक वह अपने सद्गुणो से गिरा रहता है किन्तु जब वह अपनी बुराइयो का परित्याग कर सयम और सदाचार के राज-पथ पर कदम बढाता है तो एक दिन समाज का

---

१ जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ, तहा पुण्णस्स कत्थइ॥ —आचाराग, १।२ ६

समादरणीय बन जाता है और अपने सद्गुणों का विकास कर लेता है। इससे यह सिद्ध होता है कि घृणा व्यक्ति से नहीं, बल्कि उसके गलत कार्यों से होनी चाहिए। तभी तो जनदर्शन का यह स्वर हजारों वर्षों से भरत है— मानव! तुम पाप से घृणा करो, पापी से नहीं, चोरी से घृणा करो चोर से नहीं, शराब से घृणा करो शराबी से नहीं, व्यभिचार से घृणा करो, व्यभिचारी से नहीं।' प्रस्तुत आदर्श की प्रतिच्छाया सुप्रसिद्ध विद्वान् शेक्सपियर की वाणी में भी उतर आई है— तुम दोष को धिक्कारो, दोषी को नहीं।" किसी भी मानव से घृणा करना एक प्रकार से हिंसा का आश्रय लेना है। अहिंसा की दृष्टि इतनी विराट है कि वह पापी से पापी आत्मा से प्रति भी घृणा करने से इन्कार करती है। चूँकि घृणा मूलतः हिंसा की जड़ है। जिसका आचरण पवित्र होता है, वह सब के लिए आदरणीय है। जन संस्कृति का स्वर है—'कोई व्यक्ति जाति से भले ही चाण्डाल हो किन्तु यदि वह व्रती है तो उसे देवता भी ब्राह्मण मानते हैं।"[४] प्रत्येक आत्मा में ईश्वरत्व छिपा है। आवश्यकता है उसे प्रकट करने की। जब तक अज्ञान की कुण्ठा दूर नहीं होगी, और प्रत्येक आत्मा में अखण्ड ज्योति के दर्शन करने की दृष्टि जागृत नहीं होगी तब तक सत्य का द्वार खुल नहीं सकेगा, और ईश्वरत्व भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। सारांश यह है कि संसार का कोई भी प्राणी मूलतः बुरा नहीं है तिरस्कृत करने योग्य नहीं है। हर एक व्यक्ति परमात्मा का जीता-जागता रूप है। व्यक्ति के रूप रंग आदि भिन्न भिन्न हो सकते हैं, किन्तु उसका चैतन्य एक है। "यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे" जो शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में है और जो ब्रह्माण्ड में है वही शरीर में है। जन दर्शन की स्वरलहरी इसी रूप में लहरा रही है— एगे आया कहकर जन दर्शन समस्त आत्माओं के प्रति समत्वमूलक दृष्टि प्रदान कर रहा है। विश्व की समस्त आत्माओं का स्वरूप एक है। जैसा सरल व सत्य व्यवहार अपने साथ किया जाता है वैसा ही सत्य व सरल व्यवहार अन्य आत्माओं के के साथ करना अहिंसा की सबसे बड़ी साधना है। भेदमूलक दृष्टि से ही हिंसा का जन्म होता है, हिंसा को उत्तेजन मिलता है और उसका विस्तार होता है।

४ व्रतस्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः। —पद्म पुराण ११ २०३

३ | प्रागैतिहासिक वर्णव्यवस्था

•

जैन परम्परा के अनुसार इस युग की आर्य संस्कृति के आद्य संस्थापक भगवान ऋषभदेव माने जाते हैं। आपने लोक-कल्याण तथा लोकहित की भावना से उत्प्रेरित होकर पुरुषों को बहत्तर कलाएँ, स्त्रियों को चौंसठ कलाएँ और सौ शिल्पों का परिज्ञान कराया।[५] जन समाज के बीच मर्यादा व कार्य पद्धति की सरस सरिता प्रवाहित होती रहे, उसमें किसी प्रकार की अव्यवस्था व अराजकता पैदा न हो, इसके लिए भगवान ऋषभदेव ने असि, मसि और कृषि अर्थात् सुरक्षा, व्यापार और उत्पादन की व्यवस्था की। सामाजिक प्रवृत्तियों का विकास कर जीवन के व्यवहारों को व्यवस्थित बनाया।[६] उक्त व्यवस्था के अनुसार जनसमाज तीन विभागों में विभक्त हो जाता है। अन्याय अत्याचार का प्रतिकार करने वाला रक्षक दल 'असि' विभाग में आता है। ज्ञान-दान देने वाला अर्थात् शिक्षा-दीक्षा, पठन-पाठन लेखनादि का कार्य करने वाला वर्ग 'मसि' विभाग के अन्तर्गत आता है। जो जीवनोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करता है तथा विनिमय वितरण द्वारा जनसमाज की व्यवस्था एवं सुख-सुविधा को अक्षुण्ण बनाए रखता है, उस वर्ग को 'कृषि' विभाग में अन्तर्निहित किया जाता है। यह व्यवस्था और यह बँटवारा उस युग की एक महान सामाजिक

---

५ कल्प सूत्र सू० १६५। पृ० ५७, पुण्यविजयजी सम्पादित।

६ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति, २ वक्षस्कार

आतिवाही दन थी। वर्तमान म युग के साथ सभ्यता और संस्कृति म पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है। प्रत्येक युग म युगानुरूप व्यवस्था बनाई जाती है। समय आने पर उसम आवश्यक परिवर्तन भी किया जाता है किन्तु यह परिवर्तन व्यवस्था की दृष्टि से होता है भावात्मक दृष्टि से नहीं। महापुराण के अनुसार भगवान् ऋषभदेव ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ग स्थापित किये थे।[७] श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थ आवश्यक चूर्णि और त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मण वर्ग की स्थापना की। उसका वर्णन इस प्रकार है – ऋषभदेव ने जब गृहस्थ जीवन का परित्याग कर मौन संयम साधना स्वीकार की तो भरत ने उनके राज्यभार को अपने कन्धों पर लिया। भरत चक्रवर्ती सम्राट बने। राज्य व्यवस्था के लिए भरत ने चतुरंगिनी सेना तथा राजनीति का नूतन पद्धति से निर्माण किया। भरत ने अपने भाईयों को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए अत्यधिक विवश किया। किन्तु भरत की अधीनता स्वीकार करना किसी ने पसन्द नहीं किया। अन्ततोगत्वा समस्त बन्धु प्रतिबुद्ध हुए और राज्य लिप्सा को ठुकरा कर श्रमण बन गए।

केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् भगवान ऋषभदेव अष्टापद पर्वत पर पधारे। भरत चक्रवर्ती को ज्ञात होने पर वे भगवान् के दर्शन करने को तैयार हुए। मुनियों को दान देने की भावना से उत्प्रेरित होकर भरत पकवानों भोजन गाड़ियों में भरकर अपने साथ ले चले। भगवान के दर्शन करने के पश्चात भरत ने भगवान् से भोजन ग्रहण करने की प्रार्थना की। किन्तु भगवान ने राजपिंड अकल्पनीय है, कहकर उसे अस्वीकृत कर दिया। इस घटना से भरत को खिन्नता का अनुभव होने लगा। निराश भरत को स्वर्गाधिपति इन्द्र ने आकर आश्वस्त किया, समझाया और उस निमित्तक विपुल भोजन का उपयोग स्वधर्मी गृहस्थों को भोजन कराने म करने को कहा। इन्द्र के कथनानुसार भरत ने उस भोजन का उपयोग स्वधर्मी गृहस्थों को जिमाने में किया।

---

७ उत्पादितास्त्रयो वर्णा तदा तेनादिवेधसा।
क्षत्रियाः वणिजः शूद्राः क्षतत्राणादिभिर्गुणैः ॥
—महापुराण, १६३। १६। ३६२

भरत चक्रवर्ती ने वहाँ एक भोजनशाला का निर्माण किया। उसमें कई धर्मनिष्ठ सद्गृहस्थ भोजन करते। जब उस भोजनशाला में भोजनलुब्धक मानवों की संख्या दिनानुदिन बढ़ने लगी और कई व्यक्ति नकली श्रावक बनकर आने लगे तो अन्त में भरत चक्रवर्ती के पास शिकायत पहुँची भरत चक्रवर्ती ने श्रावकों की परीक्षा के हेतु एक सुन्दर युक्ति निकाली और उस परीक्षा में जो श्रावक पास हो गये, उनके बायें कंधे से दाहिने उदर तक यज्ञोपवीत के चिह्न की तरह काकिणी रत्न से तीन रेखाएं खिंचवादी,[८] जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के प्रतीक रूप में थी। परिणामतः भरत चक्रवर्ती का यह प्रयोग सफल रहा। नकली श्रावकों की भीड़ छँट गई और वास्तविक श्रावक रह गए। वे श्रावक वहाँ भरत निर्मापित आर्य वेदों का अध्ययन करते और भरत के आदेशानुसार उन्हें सावधान रखने हेतु 'जितो भवान वर्द्धते भी तस्मान्माहन माहन' इन शब्दों को उद्घोषित करते रहते। जिससे भरत चक्रवर्ती सदा सजग एवं जागृत रहते। वे श्रावक मत मार मत मार इस अर्थ को सूचित करने वाले मा हन् मा हन पद को बार बार बोलने के कारण माहन के नाम से प्रसिद्ध हो गये। जो कालान्तर में जन ब्राह्मण कहलाये।

महापुराण के अनुसार एक दूसरा विकल्प यह भी मिलता है कि जब भरत चक्रवर्ती छह खण्ड की विजय करके अपनी राजधानी को लौटे, तब उन्हें यह विचार उत्पन्न हुआ कि प्रस्तुत विपुल धनराशि का त्याग कहाँ करना चाहिए? इसका पात्र कौन हो सकता है? भरत ने शीघ्र ही निर्णय किया कि ऐसे सदाचार युक्त प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों को चुनना चाहिये जो तीनों वर्णों को चिंतन का आलोक प्रदान कर सकें। उसके लिए भरत ने एक विराट उत्सव का आयोजन किया। उस आयोजन में नगर निवासियों को सादर आमन्त्रित किया। भरत ने व्रतधारी विनों की परीक्षा हेतु राजभवन के पथ पर हरियाली उगवादी, जिसे देख कर हरियाली पर न चलने के व्रत के कारण पाप भय

---

८ क्रमेण माहनास्ते तु ब्राह्मणा इति विश्रुता।
काकिणीरत्नलेखास्तु प्रापुर्यज्ञोपवीतताम्॥
—त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, १।६।२४८

से व्रतीजन वही रुक गये और जो व्रतरहित थे व उसको रौंदते हुए भीतर चले गये। जब भरत ने उन व्रतधारियों से इसका कारण पूछा तो उन्होंने बतलाया कि "हम लोग व्रतधारी हैं। आपके राजभवन के पथ पर हरितकाय वनस्पति उगी हुई है। उसे परों से कुचल कर हम किस प्रकार आ सकते हैं? उसे कुचलने में जीवों का प्राणघात होता है।" भरत का हृदय उनकी इस दया वृत्ति से खिल उठा। अन्त में उन्हें दूसरे प्रासुक मार्ग से राजभवन में प्रवेश कराया गया और भरत ने उन्हें ब्राह्मण की संज्ञा प्रदान की।

इन वृत्तान्तों से स्पष्ट है कि वर्णों के सम्बन्ध में जैन दृष्टि क्या है? वर्णों की व्यवस्था वास्तव में गुण कर्म के आधार पर ही की गई है, और समाज की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करना इसका मूल ध्येय रहा है।

वैदिक संस्कृति में

श्वेताम्बर ग्रन्थों में वर्ण व्यवस्था का स्पष्ट ऐतिहासिक वर्णन देखने को नहीं मिलता। दिगम्बर जैन विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में वर्णव्यवस्था का उल्लेख अवश्य किया है। वैदिकसाहित्य में तो वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा है ही। वहां ईश्वर को जगत्कर्त्ता मानकर एक लाक्षणिक रूपक बतलाया गया है और वह रूपक वर्ण व्यवस्था की निष्पत्ति का उल्लेख करता है। विराट पुरुष (ब्रह्मा) के शरीर से चारों वर्णों की निष्पत्ति हुई है। मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय पेट से वैश्य, और परों से शूद्र।[१] वास्तव में यह एक आलंकारिक वर्णन है। इस अलंकार के पीछे रहे हुए आशय को हमें ढूंढना है। ब्रह्मा जी के मुख से ब्राह्मण पैदा हुए हैं इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि ब्राह्मण ज्ञान और उपदेश के द्वारा जन समाज की सेवा करे। समाज में फैले हुए अज्ञान के तिमिर को ज्ञान की रोशनी फैलाकर दूर करे। इसी प्रकार क्षत्रिय की उत्पत्ति भुजा से मानी है। इसका रहस्य यह

---

१ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
—ऋग्वेद संहिता १०।९०।
(क) शुक्ल यजुर्वेद संहिता —३१।१०।११

है कि क्षत्रिय अपनी भुजाओं के बल से देश में होने वाले अन्याय अत्याचार को रोके। सबल के द्वारा सताये जाने पर निबलों की रक्षा करना और देश की शासन व्यवस्था को सुदृढ़ व सुन्दर बनाए रखना, क्षत्रिय के भुजा में उत्पन्न होने का आशय है। वैश्य की उत्पत्ति पेट में कही है। इसका अर्थ भी गंभीर है। भोजन पेट में पहुँचता है और उस भोजन से रस बनता है। वह रस सारे शरीर में शक्ति का संचार करता है। वैसे ही वैश्य जीवनोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन कर वाणिज्य द्वारा उनका वितरण करे और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करे। यह वैश्य का कर्तव्य है। चौथा वर्ग है शूद्र। शूद्र का जन्म पैरों से होना कहा गया है। इसका अर्थ है कि शूद्र समस्त मानव समाज की सेवा करे। अपने मूल्यवान श्रम और शक्ति के द्वारा समाज का सुख-सुविधा पहुँचाता रहे। जैसे शरीर के भिन्न भिन्न अंगों से भिन्न भिन्न काम लिये जाते हैं, वैसे ही समाज रूप शरीर के ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र—ये चार अंग हैं। इन सभी से भिन्न भिन्न काम लिया जाता है। इनके सहयोग से ही समाज का कार्य सुचारु रूप से चल सकता है।

जैसे एक परिवार में चार भाई अपने अपने कर्तव्यों का बँटवारा कर लेते हैं तो उस परिवार का संचालन सुचारु रूप से होता है, इसी प्रकार समाज के सुव्यवस्थित संचालन के उद्देश्य से चार वर्णों की व्यवस्था की गई। इस व्यवस्था के मूल में उच्च-नीच की कल्पना को कोई स्थान नहीं था। धीरे धीरे स्वार्थभाव उत्पन्न हुआ और उच्चता-नीचता का सम्बन्ध इस व्यवस्था के साथ जुड़ गया। इस प्रकार विशुद्ध समाज व्यवस्था में भावात्मक हिंसा का सम्मिश्रण हो गया। शोषण का भाव उत्पन्न हो गया।

४ | मानव जाति एक है

जन दशन एक विराट दशन है। वह किसी प्रान्त, देश या राष्ट्र की चार दिवारी म रहकर ही चिन्तन नही करता। उसके चिन्तन का पमाना व्यापक है। वह अपने आप तक ही सीमित नही है किन्तु विश्व के समस्त पहलुओ पर उसने गम्भीरता से सोचा है, चिन्तन किया है। मानव जाति के प्रति उसका यह दिव्य सन्देश कितना ममस्पर्शी है—'विश्व के जितने भी मनुष्य है व सभी मूलत एक ह। कोई भी जाति अथवा कोई भी वग मनुष्य जाति की मौलिक एकता को भग नही कर सकता।'' आचाय जिनसेन ने इस सम्बन्ध म यह स्पष्ट उदघोषणा की है कि—'आज जो मनुष्य जाति में विभिन्न वर्ग दिखलाई दे रहे ह, व अधिकाश कार्यों तथा धन्धा के भेद स है, न कि जाति भेद से।[11] व्रतसस्कार स ब्राह्मण, शस्त्र धारण स क्षत्रिय, न्यायपूण धनाजन मे वैश्य और सेवा वत्ति से शूद्र होता है।[12] श्री ऋषभदेव ने मानवा को प्रेरणा प्रदान की कि

---

१० अहिंसा दशन, —(उपाध्याय अमर मुनि) पृ० स० १६३

११ मनुष्यजातिरेकैव, जातिनामोदयोद्भवा।
वत्तिभेदाहिताद् भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते॥
—महापुराण पव० ३८ श्लोक ४५ प० २४३

१२ ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रिया शस्त्रधारणात्।
वणिजोऽर्थार्जनान्न्याय्याच्छूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात्॥
—महापुराण, श्लोक ४६ पव० ३८ प० २४३

कर्म-युग मे एक दूसरे के बिना सहयोग के कार्य नही हो सकता । ग्रत ऐसे सेवानिष्ठ व्यक्तियो की आवश्यकता है जो बिना किसी भेदभाव के सेवा कर सकें । जो व्यक्ति सेवा के लिए तैयार हुए उनको श्री ऋषभदेव ने शूद्र कहा । इसी प्रकार शस्त्रधारण कर ग्राजीविका करने वाले क्षत्रिय हुए । खेती ग्रौर पशु पालन के द्वारा जीविका करने वाले वैश्य कहलाए ।[13]

ग्रतीत के तलहट मे जाकर जब हम देखते हैं तो वहाँ समस्त मानवजाति एक ग्रखण्ड इकाई के रूप मे परिलक्षित होती है । किन्तु समय के परिवर्तन ने उसे विभिन्न वर्ग तथा वर्णों मे विभाजित कर उसके टुकडे-टुकडे कर दिये हैं । इन टुकडो मे उसका मूलरूप इतना विकृत हो गया है कि उसकी ग्रसलियत का ग्रता पता ही नही रहा ।

जाति से पहचान

●

ग्राज मानव की पहचान उसके पवित्र ग्राचार विचार से नही है । वह जाति विशेष से पहचाना जाता है । जाति ही उसकी ऊँचता नीचता का मापदण्ड है । इस ऊँच-नीच की कल्पना से मानवजाति का गौरवपूर्ण इतिहास धूमिल हो गया है ग्रौर भारतीय संस्कृति को इस कारण कई बार दुर्दिन भी देखने पडे है । भारत की पराधीनता का भी यह एक मुख्य कारण रहा है । फिर भी दुर्भाग्य है कि भारत ग्रब तक भी नही सम्भल सका । भारत ग्रौर पाकिस्तान का विभाजन मानवमन की इस संकीर्ण वृत्ति का ही दुष्परिणाम है ।

घृणा मानव हृदय की एक भीषण ग्राग है । इस ग्राग मे हजारो लाखो व्यक्ति झुलस गये । वह ग्राग ग्रब भी शीतल नही हो पाई है । दिन प्रतिदिन उसकी तेज लपटे ग्रासमान को छूने के लिए लपलपा रही है ।

---

१३ क्षत्रिया शस्त्रजीवित्व ग्रनुभूय तदाभवन् ।
वैश्याश्च कृषिवाणिज्यपशुपाल्योपजीविता

—महापुराण. १६४।१८१-८२

५ | मानव और उसके कार्य

०

सामाजिक हित के उद्देश्य से किए जाने वाले सभी कार्य समाज के लिए उपयोगी होते हैं। उनमें कौन ऊँचा और कौन नीचा ? काम कोई ऊँचा नीचा नहीं होता। जहाँ प्रेम और सद्भावना की सुरसरी प्रवाहित है, वहाँ सभी काम समान हैं। एक बार धर्मराज-युधिष्ठिर ने कोई बहुत बड़ा उत्सव किया। उसमें बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आमन्त्रित किया गया। व्यवस्था के लिए कामों का बँटवारा किया गया। सभी काम जब बँट चुके तो अन्त में श्रीकृष्ण से पूछा गया—आप कौन सा काम करेंगे ?" श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले—"जो काम शेष रह गया हो उसी को मैं करूँगा। राजभवन में प्रवेश करते समय आगन्तुकों के पैर धोना और उनकी झूठी पत्तलें उठाना, ये दो काम अभी शेष रहे हैं, मैं सहर्ष इन्हें करूँगा। यही कार्य मुझे सौंप दिये जाएँ। यह है—श्रीकृष्ण के महान् जीवन की एक झाँकी। इसी प्रकार की एक दूसरी घटना भी श्रीकृष्ण के जीवनादर्श पर प्रकाश बिखेर रही है। द्वारिका के बाहर उपवन में तीर्थंकर नेमिनाथ का समवसरण लगा हुआ था। उनके लघुभ्राता नव दीक्षित मुनि गजसुकुमाल भी भगवान के साथ थे। उनके दर्शनार्थ श्रीकृष्ण सेना के साथ गजारूढ होकर राजपथ पर चले जा रहे थे। मार्ग में एक जरा जर्जरित वृद्ध पुरुष ईटों के ढेर में से एक एक ईंट को उठाकर दूसरी ओर रख रहा था। श्रीकृष्ण ने जब उसे पनी आँखों से उसे निहारा तो उनका हृदय दया से द्रवित हो उठा। वे हाथी से नीचे उतर पड़े और उस वृद्ध पुरुष को सहयोग देने के लिए

उन्होंने भी एक ईंट उठाकर दूसरी ओर रख दी। जब द्वारिकाधी के इस सौजन्यपूर्ण व्यवहार को उनके अनुचरों ने देखा तो उस के सहायक में व सभी जुट पड़े और ईंटों का ढेर कुछ ही समय इधर से उधर हो गया।[14] वस्तुत काम कोई छोटा-बड़ा न होता। काम में कर्त्तव्य की भावना व मन की रसधारा ह चाहिए। वह किसी का हितविघातक न हो वरन् हितविधायक तो उच्च और पवित्र होता है।

बहुत से व्यक्ति यह सोचते हैं—हमारा काम उच्चस्तरीय दूसरों का निम्नस्तरीय है। किन्तु यह भावना मानवमस्तिष्क संकीर्णता है। इसी संकीर्णवृत्ति ने जातिवाद को जन्म दिया और इसी से हिंसा के नग्नताण्डव उपस्थित हुए हैं। जातिवाद विष अहिंसा की साधना में बाधक व अवरोधक तत्त्व सिद्ध हु है। आज उस विष को हटाने की सबसे बड़ी आवश्यकता है त अहिंसा का अमृत हमारा मंगल व कल्याण कर सकेगा।

सामाजिक हिंसा की लहर से बच

सामाजिक हिंसा की लहर आज विद्युत् तरंगों की तरह सम मानव समाज के जीवनाकाश में लहरा रही है। इस हिंसा का प्रति तभी सम्भव है जब मनुष्य जातीयता एवं प्रान्तीयता की कल्पित दीव लांघकर मानव मात्र से प्रेम करेगा उसके पवित्र आचार विच के प्रति सम्मान करना सीखेगा व उसमें भ्रातृभाव का अनुभ करेगा। समाजिक हिंसा का उन्मूलन होकर जिस दिन विश्व सुरम्य प्रांगण में सामाजिक अहिंसा की प्रतिष्ठा होगी भेद घृणा की जगह अभेद एवं प्रेम का वातावरण बनेगा, उस दिन मा इस धरती पर स्वर्गीय जीवन बिताता हुआ शान्ति का सुख सुराज्य प्राप्त कर सकेगा।

१४ मतकृत् दशा सूत्र

तीन अहिंसा की साधना अपरिग्रहवाद

* परिग्रह स्वरूप और त्याग
  - परिग्रह की परिभाषा
  - परिग्रह का त्याग
* आवश्यकता और उसकी सीमाएं
* विषमता की जननी संग्रहवृत्ति
* सादा जीवन ऊँचे विचार
* मानव और मानवता
* अपरिग्रहवाद की ओर
* इच्छाओं पर नियन्त्रण
* साम्यवाद और उसके निर्माता
* सर्वोदय और अपरिग्रहवाद
* अपरिग्रहवाद की उपयोगिता

१ | परिग्रह स्वरूप और त्याग

•

परिग्रह की परिभाषा

❀ अहिंसा के साथ अपरिग्रह का एक प्रकार का तादात्म्य सम्बन्ध है। परिग्रह (सम्पत्ति) के उपार्जन के लिए हिंसा करनी होती है उसके संरक्षण के लिए भी हिंसा का आश्रय लेना होता है। परिग्रह अर्थात् अर्थसंग्रह सम्पत्ति आदि पर ममत्व अपने आप में हिंसा है। इसलिए परिग्रह का त्याग किए बिना अहिंसा का वास्तविक सौन्दर्य खिल नहीं सकता। क्योंकि जहाँ परिग्रह है वहाँ हिंसा अवश्यंभावी है। भगवान महावीर की भाषा में आत्मा के लिए यदि कोई सबसे बड़ा बन्धन है तो वह परिग्रह है।[1] परिग्रह के जाल में आबद्ध आत्मा विविध हिंसामय प्रवृत्तियों में प्रवृत्त होता है। आचार्य उमास्वाति ने परिग्रह की व्याख्या करते हुए बतलाया है—**मूर्च्छा परिग्रह** अर्थात् मूर्च्छाभाव परिग्रह है। पदार्थ के प्रति हृदय की आसक्ति ममत्व की भावना ही परिग्रह है। आचार्य शय्यम्भव ने भी परिग्रह की व्याख्या इसी प्रकार की है— **मुच्छा परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा।**" (दशवै०६।) किसी भी वस्तु में बँध जाना अर्थात् उसे अपनी मान कर, उसकी ममता में लिप्त हो जाना तथा ममत्व के वश होकर आत्म विवेक को खो बैठना परिग्रह है। इस प्रकार किसी वस्तु को मोहबुद्धिवश, आसक्ति पूर्वक ग्रहण करना ही परिग्रह है।[2] परिग्रह हिंसा को जन्म देने वाला है। साथ ही परिग्रह आत्मविकास में एक

---

१ नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्वजीवाणं।

—प्रश्न व्याकरण सूत्र २।१

२ परिसमन्तात् मोहबुद्ध्या गृह्यते स परिग्रहः।

तीन अहिंसा की साधना अपरिग्रहवाद

* परिग्रह स्वरूप और त्याग
परिग्रह की परिभाषा
परिग्रह का त्याग
* आवश्यकता और उसकी सीमाएं
* विषमता की जननी सग्रहवृत्ति
* सादा जीवन ऊँचे विचार
* मानव और मानवता
* अपरिग्रहवाद की ओर
* इच्छाओं पर नियन्त्रण
* साम्यवाद और उसके निर्माता
* सर्वोदय और अपरिग्रहवाद
* अपरिग्रहवाद की उपयोगिता

१ | परिग्रह स्वरूप और त्याग

•

परिग्रह की परिभाषा

अहिंसा के साथ अपरिग्रह का एक प्रकार का तादात्म्य सम्बन्ध है। परिग्रह (सम्पत्ति) के उपार्जन के लिए हिंसा करनी होती है, उसके संरक्षण के लिए भी हिंसा का आश्रय लेना होता है। परिग्रह अर्थात् अर्थसंग्रह सम्पत्ति आदि पर ममत्व अपने आप में हिंसा है। इसलिए परिग्रह का त्याग किए बिना अहिंसा का वास्तविक सौन्दर्य खिल नहीं सकता। क्योंकि जहाँ परिग्रह है वहाँ हिंसा अवश्यभावी है। भगवान महावीर की भाषा में आत्मा के लिए यदि कोई सबसे बड़ा बन्धन है तो वह परिग्रह है।[1] परिग्रह के जाल में आबद्ध आत्मा विविध हिंसामय प्रवृत्तियों में प्रवृत्त होता है। आचार्य उमास्वाति ने परिग्रह की व्याख्या करते हुए बतलाया है—**मूर्च्छा परिग्रह** अर्थात् मूर्च्छाभाव परिग्रह है। पदार्थ के प्रति हृदय की आसक्ति ममत्व की भावना ही परिग्रह है। आचार्य शय्यम्भव ने भी परिग्रह की व्याख्या इसी प्रकार की है— **मुच्छा परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा।**" (दशवै०६।) किसी भी वस्तु में बँध जाना अर्थात् उसे अपनी मान कर, उसकी ममता में लिप्त हो जाना तथा ममत्व के वश होकर आत्म विवेक को खो बैठना परिग्रह है। इस प्रकार किसी वस्तु को मोहबुद्धिवश, आसक्ति पूर्वक ग्रहण करना ही परिग्रह है।[2] परिग्रह हिंसा को जन्म देने वाला है। साथ ही परिग्रह आत्मविकास में एक

---

१ नत्थि एरिसो पासो पडिबन्धो अत्थि सव्वजीवाणं।

—प्रश्न व्याकरण सूत्र २।१

२ परिसमन्तात मोहबुद्ध्या गृह्यते स परिग्रह।

बहुत बड़ा बाधक तत्त्व है। इससे आत्मविकास की दिशा अवरुद्ध हो जाती है।

विश्व का कोई भी धर्म परिग्रह को स्वर्ग या मोक्ष का साधन स्वीकार नहीं करता। सभी धर्मों ने इस पापों का संग्रह व आत्म पतन का मूल कारण माना है। परिग्रह की कड़ी आलोचना करते हुए ईसाई धर्म के महान प्रवर्तक ईसा ने बाइबिल में कहा है—'सूई की नोक में ऊँट कदाचित निकल जाय किन्तु धनवान् स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकता।' क्योंकि परिग्रह आसक्ति का मूल कारण है, और जहाँ आसक्ति है वहाँ अनासक्ति का अभाव रहता है, और अनासक्ति के बिना कोई भी व्यक्ति सद्गति सम्पादन नहीं कर सकता। परिग्रह का आरम्भ आसक्ति से होता है और साथ ही वह आसक्ति को बढ़ाता भी है। इसी का नाम मूर्च्छा है। ज्यों-ज्यों मूर्च्छा-वृद्धि आसक्ति बढ़ती है त्यों त्यों हिंसा भी बढ़ती है और यह हिंसा आत्मपतन के साथ-साथ सामाजिक वैषम्य को भी जन्म देती है। अतः परिग्रह सामाजिक विषमता का मूल है। विषमता स्वयं में एक हिंसा है। इस दृष्टि से परिग्रह को भी हिंसा की परिधि में लिया गया है। प्रश्न व्याकरण सूत्र (१।५) में एक उपमा द्वारा बताया गया है कि—परिग्रहरूपी वृक्ष के स्कन्ध अर्थात् तने हैं लोभ, क्लेश और कषाय। चिन्ता रूपी सैकड़ों ही सघन और विस्तीर्ण उसकी शाखाएँ हैं। इसलिए अहिंसा और शान्ति की कामना करने वाले को अपरिग्रह की साधना करनी होगी।

परिग्रह का त्याग

●

भारतीय तत्त्व-चिंतकों ने अहिंसा की साधना-आराधना के लिए परिग्रह का त्याग आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य बतलाया है। इसके बिना हमारी अहिंसा अपूर्ण है। संयम की साधना करने वाला व्यक्ति यदि किसी प्रकार का संग्रह स्वयं करता है, दूसरा से करवाता है अथवा करने वाले का अनुमोदन व प्रेरणा करता है तो वह दुःखों से कदापि छुटकारा नहीं पा सकता। यह भगवान महावीर

का स्पष्ट उद्घोष है।[3] जनदर्शन की दृष्टि से महा आरम्भी एव महापरिग्रही व्यक्ति नरकगति का अधिकारी होता है।[4] अत परिग्रह का त्याग करके अपरिग्रह भाव की ओर बढ़ना अहिंसा की साधना के लिए अपेक्षित है।

जनाचार्यों ने बतलाया है कि अल्प परिग्रह और अल्प हिंसा करने वाला व्यक्ति और कुछ भी साधना न करे तब भी वह अगले जन्म मे मनुष्य गति प्राप्त करता है।[5] आवश्यकता से अधिक सग्रह करना व्यर्थ परेशानी मोल लेने के अतिरिक्त एक प्रकार की सामाजिक चोरी भी है। महाभारत के प्रणेता महर्षि व्यास ने कहा है— उदर पालन के लिए जो आवश्यक है वह व्यक्ति का अपना है। इससे अधिक जो व्यक्ति सग्रह करके रखता है वह चोर है और दण्ड का पात्र है।[6] इस तस्करवृत्ति से बचने के लिए ही अपरिग्रह वृत्ति को स्वीकार करना परमावश्यक है। आज व्यक्ति समाज और राष्ट्रो मे जो अन्तर्द्वन्द्व चल रहे हैं उसके मूल मे भी अनुचित सग्रह वृत्ति ही मूल कारण है। रक्षा के लिए उचित प्रतीकारात्मक साधन प्रसाधन जुटाना और बात है और दूसरों की सुख सुविधाओं का अपहरण करके उन पर अनुचित अधिकार करना दूसरी बात है।

---

३ चित्तमतमचित्त वा परिगिज्झ किसामवि ।
अन्न वा अणुजाणाइ, एव दुक्खा ण मुच्चइ ॥
—सूत्रकृताग १।१।१।२

४ बह्वारम्भपरिग्रहत्व नारकस्यायुष । —तत्त्वार्थ सूत्र ६।१५

५ अल्पारम्भपरिग्रहत्व मानुषस्य —तत्त्वार्थ सूत्र ६।१७

६ उदर भ्रियते यावत् तावत् स्वत्व हि देहिनाम् ।
अधिक योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥ —महाभारत

२ | आवश्यकता और उसकी सीमाएँ

•

• अहिंसा मूलक आचार पद्धति का अनुसरण करने के लिए अपरिग्रह वृत्ति का अपनाना नितान्त आवश्यक है। अपरिग्रहभावना जब तक जीवन क्षेत्र मे नही उतरती तब तक जीवन म शान्ति के दशन नही हो सकते।

एक व्यक्ति अपने ही भोग के लिए स्वार्थान्ध होकर आवश्यकता से अधिक परिग्रह सचित कर लेता है तो उससे समाज में असमानता पैदा होती है और भविष्य म उसका परिणाम अत्यन्त हानिकारक होता है। आवश्यकता से अधिक सग्रह सामाजिक, राष्ट्रीय एव आध्यात्मिक आदि सभी दृष्टियो से हानिप्रद है।

हमारे समक्ष प्रश्न यह है कि आवश्यकता का मापदण्ड क्या है? वास्तव में यह प्रश्न अत्यन्त जटिल है। मनुष्य की रुचि, परिस्थिति और जीवन पद्धति की विविधताओ को देखते हुए, आवश्यकता का एक मापदण्ड निर्धारित करना बहुत ही कठिन है। तथापि मोटे तौर पर आवश्यकता की परिभाषा यह हो सकती है कि—"जिन साधन-प्रसाधनो से व्यक्ति सयम एव सादगी के साथ अपनी जीवन-यात्रा सुख पूवक बिता सके जिस वस्तु के अभाव म उसे जीवन निर्वाह करना कठिन या असम्भव हो तथा सामाजिक, आध्यात्मिक एव नैतिक विकास मे जो साधन रूप हो वही वास्तविक आवश्यकता है।"

आवश्यकता के सम्बन्ध म गाँधी जी के विचार भी मननीय हैं। उनका सिद्धान्त था कि 'प्रत्येक व्यक्ति को यह ध्यान रखना चाहिए कि जो कुछ उसके लिए आवश्यक है, वह दूसरो के लिए भी

आवश्यक होगा। इसलिए उसमें सबका भाग होना चाहिए। जब तक ऐसा सम्भव न हो, तब तक मुझे उस चीज को अपने लिए आवश्यक मानने का कोई अधिकार नहीं। इस सीमा का उल्लंघन कर अपनी आवश्यकताओं की वृद्धि और उनका विस्तार ही हिंसा है। इस असन्ताप के रहते शान्ति हो ही नहीं सकती। अतः हम समाज की शान्ति और कल्याण के लिए आवश्यकताओं के क्षेत्र में पीछे हटना होगा। कारण यह आवश्यकता ही तो संघर्ष का मूल है। इसी का नाम अपरिग्रह है।"[7] इसी प्रकार एक बार गांधी जी से मद्रास में रचनात्मक कार्यकर्ताओं के सम्मेलन में पूछा गया कि— आपकी राय में आर्थिक समानता के सही माने क्या हैं? उत्तर में गांधी जी ने कहा—"आर्थिक समानता की मेरी कल्पना का यह अर्थ नहीं कि हर एक को शब्दशः एक ही रकम दी जाय। उसका सीधा-साधा मतलब यह है कि हर स्त्री या पुरुष को उसकी जरूरत की रकम मिलनी चाहिए। हाथी को चींटी से हजार गुना खाना ज्यादा लगता है, मगर यह असमानता का सूचक नहीं। इसलिए आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ है— हर एक को उसकी जरूरत के माफिक दिया जाय।"[8] यदि सामाजिक लोग आवश्यकता की इस मर्यादा को समझकर चलते तो उन्हें असमानता के वही दर्शन नहीं होते, और न समाजवाद साम्यवाद आदि वादों को ही जन्म ग्रहण करना पड़ता। आज इस मर्यादा का पालन न करने के कारण ही देश में वैषम्य और वर्ग संघर्ष के बीज दिनानुदिन पनपते जा रहे हैं। अतः इस स्थिति के निराकरण के लिए आवश्यक तो यह है कि मानव अपने वैज्ञानिक साधनों का उपभोग करता हुआ दूसरों की जिन्दगी की तरफ भी लक्ष्य दे। साथ ही उनकी आवश्यकताओं पर कुठाराघात न करता हुआ अपनी आवश्यकताओं पर नियन्त्रण रखे, और अन्य को अधिकाधिक सुख शान्ति पहुँचाने का प्रयास करे। यही सामाजिक शान्ति की वास्तविक भूमिका है।

---

७ गांधी और विश्व शान्ति —देवीदत्त शर्मा पृ० ७०

८ गांधी और विश्व शान्ति, —देवीदत्त शर्मा पृ० ६२

३

विषमता की जननी : संग्रहवृत्ति

•

* संग्रह वृत्ति अनर्थों की विष बेल है। यह निरन्तर बढ़ती रहती है। इसमें अनेक कटुतारूपी फल लगते हैं। ये फल भले ही दीखने में अत्यन्त सुन्दर व रमणीय होते हों, किन्तु उनका परिणाम मारणान्तिक है। रशियन क्रान्तिकारक 'लेलिन' ने तो इस संग्रह वृत्ति को मानव-समाज की पीठ का एक जहरीला फोड़ा कहा है। उसका आपरेशन हो तभी उसमें रहा हुआ कालाबाजार और अप्रामाणिकता का खून तथा उसमें फलने वाली शोषणवृत्ति की दुर्गन्ध दूर हो सकती है। परन्तु आज तो मानव का मानस ऐसे फोड़ों को बढ़ाने में ही विशेष प्रयत्नशील है। एक व्यक्ति के पास इतना अधिक संग्रह हो रहा है कि दूसरे उसके अभाव में रात और बिलखते हुए दम तोड़ते रहते हैं।

आज धनी और गरीब के बीच जो एक गहरी खाई परिलक्षित होती है, वह इसी आर्थिक वैषम्य का परिणाम है। हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने वर्तमान में फैली देश की विषमता का जो मार्मिक चित्रण किया है वह दिल को गुद-गुदा देने वाला है—

> श्वानों को मिलता दूध वस्त्र,
> भूखे बालक अकुलाते हैं।
> माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर,
> जाड़े की रात बिताते हैं॥

युवती की लज्जा वसन बेच
जब ब्याज चुकाये जाते हैं ॥
मालिक तब तेल फुलेलों पर
पानी सा द्रव्य बहाते हैं ॥

यदि मानवता की दृष्टि को सम्मुख रख कर विचार किया जाय तो कोई भी विज्ञ इस बात को स्वीकार नहीं करेगा कि हम असीम वैभव का उपभोग करने का हक है जबकि दूसरी ओर इस धरती पर लाखों व्यक्ति भूखे और नंगे घूमते हों। पर समाज की स्थिति तो आज अत्यन्त विचित्र है।

समाज का एक वर्ग वह है, जो खाने के नाम पर दाने-दाने के लिए तरसता है। पेट की ज्वाला बुझाने के लिए दर दर का भिखारी बन कर गलीकूचों में घूमता है। कड़ी मेहनत के बावजूद भी जिसे शाम तक दो रोटी नहीं मिल पाती। तो दूसरा वर्ग वह है जो बादाम व पिस्ता की बर्फी खा खा कर बीमार हो रहा है और वैद्यों तथा डाक्टरों के द्वार खट-खटा रहा है। एक के पास गर्मी-सर्दी व वर्षा से बचने के लिए एक मामूली घास फूस का झौंपड़ा भी नहीं है, तो दूसरी ओर कई हिमधवल गगनचुम्बी एवं वातानुकूलित अट्टालिकाएँ हैं, जो बिजली की जगमगाहट से प्रभास्वर है। एक ओर तन ढकने के लिए लज्जा निवारण हेतु फटे-पुराने वस्त्र का चिथड़ा भी नहीं है, दूसरी ओर इतने मूल्यवान् वस्त्र सन्दूकों में भरे पड़े हैं जो भीतर ही भीतर सड़े गले जा रहे है।

कहना चाहिए, आज की भौतिक सुख-सुविधा के साधन कुछ इने गिने व्यक्तियों के पास ही एकत्रित हो गए हैं। शेष व्यक्ति अनिवार्य आवश्यक सामग्री के अभाव से पीडित है। इस स्थिति में वे न अपनी भौतिक उन्नति करने में समर्थ हो रहे हैं और न आध्यात्मिक उन्नति करने में ही। इस विषमता का हटना तभी सम्भव है जब कि व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह अपने पास न रखे, और जिसको आवश्यकता है या जिसके अभाव में दूसरा कोई पीडित है, उसे वह दे डाले। इसी के प्रकाश में 'कुरुक्षेत्र' की ये पंक्तियाँ बोल रही हैं —

जब तक, मनुज मनुज का यह
सुख भाग नहीं सम होगा।

शमित न होगा कोलाहल
सघर्ष नहीं कम होगा ।

मानवता प्रिय मानव को चाहिए कि वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति के साथ अपने भाइयो की आवश्यकताओ की पूर्ति का भी ध्यान रखें। यद्यपि ऐसा करने से भले ही भौतिक दृष्टि से वह कुछ खो सकता है किन्तु आध्यात्मिक एव मानवता की दृष्टि से वह बहुत कुछ पायेगा। उक्त दृष्टि को जीवन धरा पर उतारने के लिए मानव को अपने उच्चतम रहन सहन के स्तर को कुछ नीचा करना होगा, और जो अत्यन्त निम्नस्तर पर अवस्थित है, उन्हे कुछ ऊपर की ओर उठाना होगा। पर, यह मानव की सहयोग सहअस्तित्व की भावना पर ही आधारित है।

यही बात राष्ट्रो के सम्बन्ध मे लागू होती है। जो राष्ट्र निर्बल है, उन्हे सबल राष्ट्र अर्थात साधन सम्पन्न राष्ट्र अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर उन्नतिशील बनाएँ। इसके लिए धनिक राष्ट्र अमेरिका आदि जैसो का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने बन्धु राष्ट्रो के लिए कुछ त्याग कर अपनी पूँजी का उत्सर्ग करें। अपने सुख सुविधाओ, तथा साधनो का बटवारा करें। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का, एक मानव दूसरे मानव का भाई बन्द है, और भाई के नाते उस बटवारे का अधिकार है। वे अपनी पूँजी का उत्सर्ग करें। ऐसा करने से प्रथम बात तो यह होगी कि वे राष्ट्र विश्व मे अनुपम उदार वृत्ति के गौरव से प्रतिष्ठित होंगे। दूसरी बात भविष्य मे आने वाले युद्धो के खतरो से वे अनायास ही बच सकेंगे। तीसरी बात, इनकी उदारता परायण वृत्ति से अर्धोन्नत व अर्धविकसित राष्ट्र समृद्ध हो जायेंगे। फिर न उन्हें भय रहेगा और न युद्ध का खतरा ही। वे सर्वथा निर्भय रहेंगे।

आज हम देखते है कि धनिक राष्ट्रो की जनता अत्यन्त भयाकुल हो रही है। उन्हें सोते बैठते चैन नही पडती। उनके सामने सतत दुश्मनो का खतरा बना हुआ है। यह स्थिति पूर्वोक्त प्रक्रिया से ही दूर की जा सकती है।

एक बार स्वामी विवेकानन्द अमेरिका गए। वहाँ के किसी वरिष्ठ धनी ने स्वामीजी से तीन प्रश्न किये—

१ मुझे नीद नही आती, उसका क्या कारण है?

२ मेरे दुश्मन अधिक क्या है ?

३ मेरी सद्गति का क्या उपाय है ?

क्रमश तीनों प्रश्नों का उत्तर देते हुए स्वामी जी बोले —

आप जिस पलग पर सोते है, वह पलग कितने मूल्य का है ?

'बीस करोड़ की कीमत का।' धनिक ने स्वामीजी की तरफ देखते हुए उत्तर दिया।

स्वामी जी ने कहा— 'आप इस पलग को गरीब भाईयो के सहाय ताथ बेच दें, और एक सामान्य बिस्तर लगाकर सोयें अवश्य ही निद्रा देवी आपके चरण चूमेगी।

आप अपना उद्योग-व्यापार बन्द कर दें दुश्मन स्वत कम हो जायेंगे।

'सद्गति के लिए राम' का स्मरण करे। यह भारतीय सस्कृति का महामत्र निश्चय ही आपको सद्गति प्रदान करेगा।

यह स्थिति है उस देश की जहाँ मानव विलासिता के अतल सागर मे डुबकियां लगाते रहने पर भी सुखभरी नींद से भी वंचित रहता है। सतत भय म व आशका से उद्विग्न बना रहता है। उस स्थिति के निवारण का उपाय एकमात्र है—अपनी अनावश्यक सम्पत्ति का वितरण कर जीवन को पूर्ण सादा सादगीमय एव सेवा परायण बना दिया जाय।

४ | सादा जीवन और ऊँचे विचार

•

"सादा जीवन और ऊँचे विचार," यह एक आदर्श वाक्य है। इस आदर्श तक पहुँचने के लिए मानव को अपने रहन-सहन के स्तर को बदलना होगा, साथ ही विचार परिष्कार भी अनिवार्यतः करना होगा। यदि खान पान रहन सहन आदि में, बाह्य क्रियाओं में सादगी है किन्तु विचारों में सादगी न हो कर मानव विचार विलासिता के अतल सागर में गोते लगाते रहे तो यह बाह्य सादगी एक प्रकार से व्यर्थ ही सिद्ध होगी। क्योंकि विचारों के द्वारा ही जीवन की सम्पूर्ण क्रियाएँ स्पंदित होती है। अतः विचार की उच्चता हर दृष्टि से अपेक्षित है।

आज के इस विज्ञानवाद के युग में बहुत से व्यक्तियों की यह आस्था बन चुकी है कि हमारे पास जितने विलासिता के व सुखोपभोग के साधन प्रसाधन अधिक होंगे, उतना ही समाज में हमारा प्रभाव एवं दबदबा बना रहेगा, और मान—प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। किन्तु उनकी यह धारणा नितान्त मिथ्या है। आज की सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था मे विलासप्रियता और साधनो की अधिकता कोई महत्व नही रखती। अतीत की ओर जब हम निगाह डालते है तो सम्राट चन्द्रगुप्त के महामन्त्री चाणक्य का सादगीप्रिय जीवन स्मृति के क्षितिज पर चमक उठता है। चाणक्य एक महान् व्यक्ति था। या कहना चाहिए कि उस युग के भारत का निर्माता चाणक्य ही था। किन्तु उसका जीवन कितना सीधा-साधा एवं निष्परिग्रह था। जब चाणक्य आश्रम मे रहते और विद्यार्थियो को पढ़ाते थे उस

समय उनके पास क्या था ? 'एक पत्थर जो कण्डे तोडने के लिए था, और विद्यार्थियों द्वारा एकत्रित ईंधन राशि बस यही उनका सब कुछ था ।[1] और जब वे महामन्त्री के पद पर अवस्थित हुए तब भी उनके पास वही सादगी थी जो पहले थी । वे वृक्ष के नीचे बैठकर भारत के शासन—सूत्र का संचालन किया करते थे । उनके पास न सुरम्य कोठियाँ थीं और न चमचमाती कारें ही । इस सादगी प्रधान जीवन में रहकर ही चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के शासन को चमकाया और भारत के यश को विदेशों तक फैलाया ।

वर्तमान में वियतनाम के राष्ट्रपति डॉ० ची० मिन्ह की सादगी भी अनुकरणीय है । जब वे राष्ट्रपति चुने गए, तब उन्होंने अपने वक्तव्य में जो कहा था उसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं— मुझे राष्ट्रपति इसलिए चुना गया है कि मेरे पास ऐसी कोई चीज नहीं जिसे मैं अपनी कह सकूँ । न मेरा अपना मकान है न परिवार और न भविष्य की चिन्ता । राष्ट्र का हित ही सब कुछ है । राष्ट्र ही मेरा भविष्य और परिवार है । राष्ट्रपति डॉ० ची० मिन्ह के रहने का मकान भी सामान्य-व्यक्तियों की ही तरह कच्चा बांस का ही बना हुआ है और अन्य आवश्यक साधन भी सीमित-परिमित हैं ।

आज हमारे देश के मन्त्रियों व राष्ट्रपति को भी इनसे प्रेरणा प्राप्त करने की आवश्यकता है जो रहन-सहन के ऊँचे स्तर में विश्राम जमाए बैठे हैं । पर यह स्मरण रहे कि मानव की शान शौकत रहन-सहन के ऊँचे स्तर में नहीं है सादगी और अपरिग्रह वृत्ति में है । आज इस मार्ग का पालन करने वाले मन्त्री हमारे देश में कितने हैं ? गांधी जी आश्रम में ये निष्परिग्रह बनकर रहते थे । किन्तु उनके अनुयायी आज कहाँ रहते हैं ? विराट भवनों में । आश्रम सूने-सूने पड़े हैं । आज यह अपेक्षित है कि हमारे नेतागण भी जनता के सम्मुख कुछ त्याग भावना का आदर्श उपस्थित करते हुए भारत के उस गौरव पूर्ण अतीत को पुनः साकार करें ।

---

१ उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानाम् ।
वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एव ॥ —मुद्राराक्षस नाटक

५ | मानव और मानवता

●

मानव का जीवन पशु की तरह आहार और निद्रा तक ही सामित नही है। विश्व का सवश्रेष्ठ प्राणी होने के नाते उसम दया, प्रम, क्षमा और सहानुभूति के भाव भी ह। इन भावा का क्षेत्र जितना विस्तृत होता चलता है, मानव उतना ही ऊपर से ऊपर उठता जाता ह, और जब उसका यह प्रेम विश्व-व्यापी बन जाता है तब वह पूण मानव अर्थात—महामानव कहलाने का अधिकार प्राप्त कर लेता है। किसी विपत्तिग्रस्त भाई को यदि वह उस विपत्ति से मुक्त नही कर सकता, उसके लिए अपन स्वार्थों का बलिदान नही दे सकता, ता वह पशु की स्थिति स उन्नत नहीं कहा जा सकता। जीवन मे आध्यात्मिक एव मानवीय गुणा का विकास ही तो मानव का पशु से पृथक् करता है। जब तक मानव अपन भीतर रही हुई पशुवृत्ति का दमन नही करता वहाँ तक अपन जीवन का वास्तविक मूल्याकन नही कर सकता।

कभी-कभी व्यक्ति अपने स्वार्थो की सृष्टि रचने के लिए दूसरो की जिन्दगी तक को भी कुचल डालता है क्या यह उसकी मानवता है? कहना चाहिए मानवता नही, दानवता है पशुता है। जब किसी एक प्रमुख अतिथि के स्वागत हेतु बन रहे माग मे बाधक एक गरीब की झोपडी ही उखाडकर फक दी गई तब एक कवि की हृदयतन्त्री अनन्त वेदना के स्वर म घुलकर इस प्रकार झकृत हो उठी—

हाय र ! एक पाषाण का
रूप इतना सवारा गया।——

और उसकी खुशी के लिए
फूल असमय मारा गया।

वस्तुत आज के इस भौतिकवाद की चकाचौंध म मानव मानवता को ही भुला बैठा है। प्रसिद्ध सर्वोदयी विचारक दादा धर्माधिकारी ने अपने जीवन का आखो देखा एव जीता-जागता सस्मरण लिखा है— कोई तीस साल पहले की बात है। एक रियासत की राजधानी म शहर के बाहर सुन्दर बगीचे म बना हुआ एक राजमहल हम देखने गए। वहाँ की एक एक चीज अनुपम और दर्शनीय थी। हाथी दात के पलग सुन्दर शीशे चाँदी स मढी हुई कुर्सियाँ और काच। उस वैभव का वर्णन कौन करे? लेकिन उसम मनुष्यता का स्पर्श नहीं था। महल के मालिक के आत्म-स्पर्श की कोई भी निशानी नही थी। दफ्तर के बाबू से पूछा—यह महल किसका है? कुछ लोग हँसकर बोले—'महाराज का है। और किसका? मन पूछा—महाराज इसम कभी रहते है? उन्होने कहा—नही। तो फिर इसम कौन रहता है? मन कहा। वे बोले— कोई नहीं। तुम लोग यहाँ रहते हो? मने पूछा तो वे बोले अपने अपने घरो म! फिर यहाँ क्या आते हो? मने कहा। उन्होंने कहा—इसलिए कि यहाँ कोई रहने न पाए, इन शीशो म कोई देखने न पाए इन मचको पर कोई सोने न पाए, इन कुर्सियो पर कोई बैठने न पाए। इसी काम के लिए हम को तनात किया गया है और इसी काम के लिए हमको तनख्वाह मिलती है।' यह है मानव की विलासप्रियता का एक चित्र जिसम मानवता के दर्शन तक नही हो पाते।

आज विलासप्रधान साधनों को अधिकाधिक महत्व दिया जा रहा है। यही कारण है कि मानव के जीवन म भ्रष्टाचार की दुर्गन्ध दिन-ब दिन अधिक फल रही है। मानव का विलासी मन सोचता है मेरे पास एस विलक्षण प्रकार के साधन हो जो अन्य के पास न हो। मेरे कपडे, मेरा मकान मेरी घडी मेरा रेडियो, मेरी साइकिल, मेरी मोटर आदि एस हो जो अन्य व्यक्तियो स बढ चढकर हो। जब मानव का मन इस प्रकार की स्पर्धा म दौड लगाने लगता है तब वह उन्हे जुटाने के लिए अनुचित उपायो को स्वीकार करने म जरा भी नहीं

१० सर्वोदय मासिक पत्र,

हिचकिचाता। येन-केन प्रकारेण वह साधन-सम्पादन कर ही लेता है। मानव की तृष्णा इतनी बढ चली है कि वह सुरसा के मुख की तरह सब कुछ निगलने को तैयार है। संताप कोसा दूर भागता जा रहा है। परिणामत इसी म समाज म संघर्षो का एक भूचाल पदा हो गया है। इस बुराई को दूर करने के लिए ही तो भगवान् महावीर ने अपरिग्रहवाद की दिशा म प्रयाण करने का संकेत किया है। इच्छाओं को कम करने से आवश्यकताएँ कम होगी और आवश्यकता कम करने से भौतिक प्रतिस्पधा भी शान्त हो जायगी। यही मानवता के आनन्द का एक मात्र माग है।

६ | अपरिग्रहवाद की ओर

•

अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त भगवान महावीर की बहुत बड़ी विरासत है और विश्व के लिए एक अपूर्व देन है। यह समाज में शान्ति, राष्ट्र में समभाव, परिवार व व्यक्ति में आत्मीयभाव का सौम्य प्रकाश फैलाने वाला है। इसकी सम्यक् साधना से ही विश्व का कल्याण हो सकता है। डा० इन्द्र चन्द्र शास्त्री ने अपरिग्रह की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए लिखा है— स्व" को घटाते घटाते इतना कम कर देना कि 'पर' ही रह जाय स्व कुछ न रहे। उपयुक्त व्याख्या बौद्ध दर्शन की है। वेदान्ती इसी का दूसरा रूप में प्रस्तुत करता है, वह कहता है– स्व का इतना विशाल बना दो कि पर' कुछ न रहे। दोनों का अन्तिम लक्ष्य है स्व' और पर' से भेद का मिटा देना, और यही आध्यात्मिक अपरिग्रह है। जैनदर्शन यथार्थवादी बनकर इसी को अनासक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। वह कहता है, व्यक्तियों में परस्पर भेद तो यथार्थ है और रहेगा ही। भेद की सत्ता हमारे विकास को नहीं रोक सकती। किन्तु अपने को किसी एक वस्तु के साथ चिपका देना ही विकास की सब से बड़ी बाधा है। इसी को मूर्च्छा शब्द से पुकारा गया है। इस प्रकार अपरिग्रह का सिद्धान्त समाज और व्यक्ति दोनों के विकास का मूलमन्त्र बन गया है।'[11]

आज विश्वशान्ति की स्थापना के लिए अपरिग्रहवाद के सिद्धान्त का क्रियान्वित करने की अत्यधिक आवश्यकता है। आज जो समाज में

---

११ अपरिग्रह दर्शन भूमिका, —प्र० सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

शोषण-दमन का कुचक्र चल रहा है और भोगवाद को विशेष बढ़ावा मिल रहा है, तथा समाज के अन्तर में विषमता की जो ज्वाला दहक रही है, यदि उसके मूल कारण की खोज की जाय तो अपरिग्रहवृत्ति का अभाव ही परिलक्षित होगा। क्योंकि परिग्रह से जीवन में कभी भी शान्ति का अनुभव नहीं किया जा सकता। तभी तो भारत के इस पावन प्राङ्गण में बड़े बड़े महान त्यागी पुरुषों—राम, बुद्ध महावीर गांधी, आदि ने जनसमाज को अपरिग्रहवृत्ति का दिव्य-सन्देश दिया। वे स्वयं निष्परिग्रही थे और यही कारण है कि विश्व पर उनकी वाणी का चमत्कारी प्रभाव होता था। वर्तमान में भी भूदान यज्ञ के प्रणेता सन्त विनोबा भावे गरीबों की सेवा के लिए भारत में घूम घूम कर प्रयत्न कर रहे हैं जो अत्यन्त मूल्यवान है।

विश्व के सभी राष्ट्रों में अमेरिका अधिक धनी माना जाता है। वह अपनी अतुल धन-राशि के बल पर समस्त विश्व में अपना वर्चस्व तथा प्रभाव जमा देना चाहता है। यद्यपि अमेरिका की वैभव-शीलता और विलासप्रियता से भले ही भारत का दिल गुदगुदाता हो, किन्तु अमरिका की आन्तरिक स्थिति का अध्ययन किया जाय तो रोमांच हो उठेगा। अमेरिका का एक पत्रकार अमेरिका की आन्तरिक स्थिति का क्या चित्रण प्रस्तुत कर रहा है—"अमेरिका में ६० लाख व्यक्ति मानसिक व्याधियों से सन्त्रस्त है तथा १५ लाख व्यक्ति बुद्धिहीनता से पीड़ित हैं। १ करोड़ ७० लाख व्यक्ति ऐसे हैं, जिनका सन्तुलन ठीक नहीं है। अमेरिका के प्रति १२ बच्चों में से १ बच्चा प्रतिवर्ष किसी न किसी भयंकर मानसिक रोग से पीड़ित होता है। गत महायुद्ध में अमेरिका में १ करोड़ ४० लाख आदमियों की जांच की गई थी। जिनमें केवल २० लाख ही सेना में भर्ती के योग्य पाए गए। वहां प्रति २०० व्यक्तियों में से एक व्यक्ति पागल हो जाता है। १५ हजार आदमियों में से ७६ को कोई न कोई साधारण बीमारी है। आजकल अमेरिका में २ करोड़ ८० लाख लोग यानी वहां की सारी जनसंख्या के छठे भाग से भी अधिक किसी न किसी बीमारी से पीड़ित है। ४५ साल की आयु के बाद प्रति ८ पुरुषों में १ और प्रत्येक १४ महिलाओं में एक की मृत्यु कैंसर से होती है। लगभग १७ लाख ५० हजार गम्भीर अपराध वहां प्रतिवर्ष किए जाते हैं। लगभग ५० हजार लोग शराब पीने के आदी हैं। धूम्रपान तो वहाँ

का आम रिवाज ही बन गया है। प्रतिवर्ष १७ हजार व्यक्ति आत्म हत्या करते हैं। प्रतिवर्ष होने वाले प्रति ८ विवाहों के पीछे एक तलाक होता है। प्रति ७ से १७ वर्ष की आयु के करीब २ लाख ६५ हजार अपराधी बच्चे अदालत में पेश किये जाते हैं। यह है अमेरिका के विलासपूर्ण जीवन का एक नग्न चित्र! रोमांचक आवेड! क्या भारत उनके पदचिह्नों पर चलकर अपनी अपरिग्रह परायण वृत्ति की गौरवगरिमा को सुरक्षित रख सकेगा? और शान्ति प्राप्त कर सकेगा? कदापि नहीं!

आज अपरिग्रहवृत्ति के अभाव के कारण ही नतिक और भौतिक-स्थिति में कोई संतुलन प्रतीत नहीं हो रहा है, और विषमता प्रति दिन बढ़ती जा रही है। वर्तमान युग की विषमताओं से पीड़ित विश्व का सचेत करते हुए श्रीकिशोरलाल मशरूवाला लिखते हैं—"आज की स्थिति में जो धन या जाति आदि के रूप में विशेष अधिकारों का सुख भोग रहे हैं, वे यदि उनका त्याग नहीं कर देते, अपनी सम्पत्ति के ईमानदार ट्रस्टी नहीं बन जाते, ऊँच-नीच का भेदभाव छोड़कर जनता में घुलमिल नहीं जाते, देश की गरीबी के साथ अपनी शान शौकत कम नहीं कर लेते तो गांधी जी के समान अहिंसा-मार्गी नेता के अभाव में साम्यवाद और उसके साथ चलने वाली हिंसा अवश्य आयेगी? इस संघर्ष से बचने का एक ही उपाय है और वह यह कि हम अपनी इच्छा के अनुसार आज का जीवन बदलते जायं। ये सब परिवर्तन भी एकदम गांधी जी के आदर्श तक नहीं पहुँचा देंगे। ये अभीष्ट सीढ़ियाँ तो हैं, यदि हम सीढ़ियों द्वारा भी आगे बढ़ने को उत्सुक नहीं तो साम्यवाद की बाढ़ रुक नहीं सकती और यह बाढ़ विनाशक ही होगी।"[12]

सारांश यह है कि अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त मानव जाति की सुख शान्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसका जितना विस्तार होगा उतना ही विश्व में राजनैतिक और धार्मिक सह अस्तित्व के साथ सार्वभौम सह—अस्तित्व की भावना जागृत होगी।

---

१२ गांधी और विश्व शान्ति —पुस्तक में उद्धृत

७ | इच्छाओं पर नियन्त्रण

•

कोई भी बाह्य वस्तु अपने आप में पाप नहीं है। किन्तु उस वस्तु के प्रति मानव मन की आसक्ति ही पाप और हिंसा है। भगवान् महावीर का अपरिग्रहवाद इस आसक्ति को घटाता है, और साथ ही इच्छाओं पर नियन्त्रण भी करता है। मानव मन की अनन्त इच्छाएँ हैं। उनका कभी अन्त नहीं आ सकता। तभी तो भगवान् महावीर ने इच्छाओं की तुलना अनन्त आकाश से की है।[11] जैसे आकाश का कहीं ओर छोर नहीं है, कहीं समाप्ति नहीं है वह सभी ओर से अनन्त है। ठीक उसी प्रकार इच्छाएँ भी अनन्त हैं। मानव जब अपनी इच्छाओं के पीछे पागल बन जाता है तब उसकी पूर्ति के लिए वह रात दिन एक कर देता है। सफलता प्राप्त न होने पर संघर्ष व लड़ाई लड़ने के लिए भी समुद्यत हो जाता है। समरभूमि में तलवारें चमकती हैं और रक्त की नदियाँ बह निकलती हैं। अतीत हमारे सम्मुख है। पाण्डवों की ओर से शान्तिदूत बनकर श्री कृष्ण ने कौरवों से एक छोटी-सी माँग की, और वह भी उस विराट साम्राज्य में से केवल पाँच गाँव ही माँगे। किन्तु समस्त कौरवों का प्रतिनिधित्व करने वाले दुर्योधन का जो अभिमानपूर्ण उत्तर था उसे हजारों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जनमानस भूल नहीं सका। दुर्योधन ने कहा—हे केशव ? तुम तो पाँच गाँवों को देने की बात कहते हो, न जाने वे

---

११ इच्छा हु आगाससमा अणन्तया। —उत्त० अ० ९ गा० ४८

कितने बडे होगे किन्तु म ता सूई के नाक के अग्रभाग पर आए उतनी भूमि भी पाण्डवो को बिना युद्ध के नही दे सकता।"[१४]

दुर्योधन की इस दुर्नीति के कारण ही महाभारत जैसा भयकर युद्ध हुआ। इतिहास के हजारो पन्ने ऐसी घटनाओ के रग स रग पडे हैं। वतमान म भी लडाइयो का मूल कारण परिग्रह ही है। जब तक मानव का मन सतोष व माधुय स तृप्त नही होगा, तब तक य लडाईयाँ चलती ही रहेंगी।

पदार्थ परिमित है और इच्छाएँ असीम है। पेट भरना आसान है, पर पेटी (मन) का भरना कठिन है। ऐसी स्थिति म मानव मन को विराम कहाँ? विश्राम कहा? मृग मरीचिका की तरह भटकते भटकते जीवन ही समाप्त हो जाय किन्तु शान्ति के दर्शन नही हो सकते। शान्ति इच्छाओ के प्रसार म नही निरोध म है। बस इसी शान्ति सूत्र को लेकर भगवान महावीर ने अपरिग्रहवाद का यह आदर्श सन्देश दिया है कि—'मानव! सबसे पहले तू अपनी इच्छाओ पर विजय प्राप्त कर। अपनी बढ़ती हुई इच्छाओ को रोक।" उनको रोके बिना तुम्हारा जीवन बिना ब्रेक की गाडी के समान है। बिना ब्रेक की गाडी स्व और पर दोनो के लिए बहुत बडा खतरा है। अत अपने जीवन को नियन्त्रित बना लो। जब जीवन नियन्त्रित हो जायगा, इच्छाएँ सीमित हो जायेगी तब आवश्यकताएँ भी सीमित हो जायेगी और तब मानव का मन ससार की अनन्त सुख-सुविधाओ की ओर नही भटकेगा, वह अपने में ही केन्द्रित रहेगा। तब न कही युद्ध होगे, न विग्रह और न सघष।

---

१४ सूच्यग्र नव दास्यामि विना युद्धेन केशव!

८ | साम्यवाद और उसके निर्माता

परिग्रहवाद ने अनेक बुराइयों को जन्म दिया है। आज हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि समाज में स्वामी और सेवक, शोषक और शोषित अमीर और गरीब की ये भेद-दीवारें किसने खड़ी की है? इसी परिग्रहवाद ने! और जब तक भेद-दीवारें समाज में खड़ी रहेंगी, तब तक समाज की विषमता मिट नहीं सकेगी।

वर्तमान में साम्यवाद की जो लहर विश्व के वायु मण्डल में तरंगित हो रही है, उस के मूल में क्या है? अनावश्यक परिग्रह का अतिसंचय! अतिसंग्रह!

'साम्यवाद' शब्द कितना सुन्दर है। यदि साम्यवाद शब्द से ध्वनित होने वाले सही अर्थ को प्रत्येक व्यक्ति आत्मसात कर ले तो निश्चय ही देश, समाज और विश्व में व्याप्त विषमताएँ समाप्त हो सकती हैं। यहाँ साम्यवाद से मेरा तात्पर्य कम्युनिज्म से नहीं है न उसके प्रणेता रूस के मार्क्स से ही है, और न उसके प्रबल प्रचारक लेलिन और स्टालिन से ही है। किन्तु मैं उस साम्यवाद के सम्बन्ध में बता रहा हूँ कि जिसके सच्चे निर्माता भारत के सन्त मनीषी हैं, जिन्होंने विश्व को एक दिन साम्यवाद का दिव्य सन्देश दिया था। भगवान महावीर ने करुणार्द्र होकर कहा था—'दुनिया के मानवो! तुम अपनी आवश्यकताओं से अधिक संग्रह न करो,

और जो जीवन की आवश्यकताएँ है उनको भी तुम नियन्त्रित करते जाओ। उन्हे बढाओ नही।' इस साम्यवाद को परिग्रह-परिमाणव्रत के नाम से भी अभिहित किया जाता है। यह अहिंसा प्रधान विचार और पद्धति है। जबकि कार्लमार्क्स, लेनिन, स्टालिन आदि साम्यवादियो द्वारा अपनाई गई विचारधाराए व पद्धतिया हिंसापूर्ण व सघर्षमय है। उनमे अहिंसा का स्थान नही। रक्तमयी क्रान्ति और वर्ग सघर्ष उसका मूल आधार है। हिंसा के विरोध मे हिंसा ही काम करती रही है। क्या कभी हिंसा से हिंसा शान्त हो सकेगी ? कदापि नही ! किन्तु भगवान महावीर का अपरिग्रह अहिंसा की भावना से आप्लावित है और विश्वशान्ति की भावना के अत्यन्त सन्निकट है।

साम्यवाद–समाजवाद का जन्म सामन्तशाही एव पूँजीवादी उत्पीडन एव शोषण के कुचक्र को समाप्त करने के लिए हुआ है। ये वाद व्यक्ति हित की अपेक्षा समाज और राष्ट्रहित को अधिक महत्त्व देते हुए परिलक्षित होते है। इनके मूल मे एव सघर्ष और विरोध की भावना है। त्याग और समर्पण का आदर्श उनके समक्ष नही रहा किंतु छीनने की और जबरदस्ती हडपने की कल्पना ही मुख्य रही है। दूसरी बात उनकी कल्पना मे व्यक्ति व राष्ट्र का भौतिक विकास ही प्रधान रहा है। उनका लक्ष्य है—देश के सभी व्यक्तियो को विकास का समान सुअवसर प्राप्त हो। खाना-पीना पहनना आदि सुख-साधन सब के समान हो। तभी तो कवि का स्वर साम्यवाद के रस मे घुलकर बोल रहा है —

नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नही किसी को कम हो।

क्रान्ति के स्वर मे—

आज सेठों की हवेलियाँ,
कल बनेगी पाठशालाए।

देश मे न कोई भूखा रहे और न कोई नगा रहे। सब का समान अधिकार प्राप्त हो। साम्यवादी पद्धति मे कोई भी व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति नही बना सकता। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति से उसकी शक्ति के अनुरूप काम लिया जाय, तथा उसकी आवश्यकता के अनुसार वस्तुओ की पूर्ति की जाय। किन्तु इस स्थिति को लाने

के लिए साम्यवादी नेता जिन साधनों का प्रयोग करते हैं, वे निर्दोष नहीं है। उनकी प्रक्रिया शुद्ध नहीं है, इसलिए भारतीय चिंतन और अहिंसा की साधना यहाँ पर साम्यवाद को रोकती है, कि शुद्ध और पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए शुद्ध और पवित्र साधना का ही उपयोग होना चाहिए। रक्त क्रांति से किसी का हृदय नहीं बदला जा सकता हृदय परिवर्तन के लिए तो त्याग सेवा और प्रेम की आवश्यकता है। यही अहिंसक क्रांति का मूल स्वर है और यही भारतीय संस्कृति का अहिंसक तथा शान्तिपूर्ण साम्यवाद है।

६ | सर्वोदय और अपरिग्रहवाद

•

सर्वोदय का अर्थ है विश्व म सब देशो की जनता का विकास और कल्याण होना। यह सिद्धात भगवान महावीर के अपरिग्रहवाद से प्राय मिलता जुलता है दोनो के व्यवहार और प्रचार की पद्धति मे भिन्नता हो सकती है किन्तु वचारिक दृष्टि से कोई भिन्नता नही है।

सर्वोदय इस युग का नूतन दन नही है। सर्वोदय की भावना भारत की सस्कृति मे चिरकाल म कहना चाहिए आदि—काल से ही व्याप्त रही है। सब सुखी हो सब निरोग रह, सब कल्याण के भागी हो किसी को भी दुख का सामना न करना पडे।" यह भारतीय मनीषिया की अन्त कामना रही है।[15] इस भावना को व्यक्त करने के लिए सर्वोदय शब्द का प्रयोग भी जनाचाय समन्तभद्र ने करीब १८-१६ सौ वष पहले किया है। उन्होंने तीथकर के शासन का 'सर्वोदय तीथ कहा है'।[16] तीथकर का शासन, सामान्य शासन नही किन्तु एक विशिष्ट प्रकार का शासन है जिसम प्राणीमात्र को आत्म विकास का अवसर मिलता है। सभी का उत्कष और सभी का उदय होना है। हाँ, वतमान म सर्वोदय के अभियान मे गाँधी जी का विशिष्ट योग रहा है। आज भी उनके प्रमुख शिष्य आचार्य विनोबा भाव सर्वोदय विचार दशन को लेकर पदयात्रा

---

१५ सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु खभाग भवेत्॥

१६ सर्वापदामन्तकर निरन्त सर्वोदयतीर्थमिद तवैव।

—युक्त्यनुशासन ६२

करते हुए सर्वोदय का महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन कर रहे हैं। वास्तव में देखा जाए तो अपरिग्रहवाद और सर्वोदय की भावना में कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता। दोनों एक ही कार्य के पूरक हैं जो ना ही व्यक्ति व समाज की शान्ति का कारण है।

भगवान महावीर ने अपरिग्रह की जो व्याख्याएँ और सीमाएँ बताई हैं, उनमें सिर्फ धन सम्पत्ति का त्याग ही नहीं, बल्कि अपने अधिकार में रहे हुए दास सेवक पशु वाहन और खेती, जमीन आदि की सीमा निर्धारण करना भी सूचित किया गया है। अपरिग्रह वाद मूलतः व्यक्ति का अधिकार अधिक से अधिक केन्द्रित करता है, उसकी आवश्यकताओं पर स्वेच्छया नियन्त्रण लगाता है।

सर्वोदय की मूल भावना भी यही है। यह भी पूँजीपति से धन छीनने का नहीं कहता किन्तु वह कहता है–जो धन तुम्हारे पास है वह समाज को अर्पित कर दो अपना स्वामित्व हटाओ, तुम उसके मालिक बनकर नहीं किन्तु रक्षक (ट्रस्टी) व व्यवस्थापक बनकर समाज के कल्याण कार्यों में उसका नियोजन करते रहो।

व्यक्ति अपनी बुद्धि व श्रम से उपार्जित धन को समाज हितार्थ तभी अर्पित करेगा, जब वह अपनी असीम इच्छाओं पर संयम रख सकेगा, आवश्यकताओं पर नियन्त्रण करेगा—इस दृष्टि से सर्वोदय और अपरिग्रह का मूल स्वर एक है और दोनों की फलश्रुति भी बहुत कुछ समान है व्यक्ति व समाज शान्ति पूर्वक जीए सबको आत्म-विकास का अवसर मिले।

वास्तव में जिस दिन अपरिग्रह एवं सर्वोदय के ये सिद्धान्त जन जीवन में पूर्णतया उतर आयेंगे, और यह सामूहिक रूप में प्रयुक्त होने लगेंगे उस दिन अर्थ-वैषम्य जनित सामाजिक समस्याएँ व राष्ट्रीय समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जायेंगी और मानव दुर्लभ सुख का खजाना प्राप्त कर लेगा। अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त उसके व्रत व उपदेश हजारों वर्षों से हमारे समक्ष हैं किन्तु अब तक उन व्रतों व उपदेशों का सम्यक् पालन नहीं किया गया। यदि सम्यक् प्रकार से इसकी परिपालना होती तो विश्व में हिंसा जन्य विप्लव कभी नहीं होते। यह महान् खेद की बात है कि अपरिग्रह के सिद्धान्त का अनुयायी समाज भी आज इससे अछूता है। उसकी वाणी में तो अपरिग्रहवाद झलकता है, किन्तु आचरण में शून्यता दृष्टिगोचर होती है।

अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त मानव को अपनी तृष्णा, ममता एव लोभ वृत्ति को सीमित करने के लिए प्रेरित करता है। साधु-सन्या सियो के लिए ही नही गृहस्थो के लिए भी अपरिग्रह पाँच मूलव्रता म प्रमुख व अन्यतम व्रत है। शेष व्रता के पालन मे भी इसकी बडी उपयोगिता है। इसका पालन प्रत्येक गृहस्थ के लिए आवश्यक बत लाया गया है। व्यक्ति के लिए ही नही, समाज देश, व राष्ट्र के लिए भी हितकर है। मानव अर्थलिप्सा के चक्र म ही न फँसा रह और जीवन के उच्चतर तथ्य को ममत्व के प्रगाढ अन्धकार मे ओझल न करदे, इसके लिए अपरिग्रह की भावना प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आनी ही चाहिए। यह आधुनिक युग की ज्वलन्त सम स्याओ का सुन्दर अहिंसात्मक समाधान है। यदि विश्वजीवन के कण-कण म इसका प्रभाव परिव्याप्त हो जाता है, तो फिर हिंसक क्रान्ति युक्त समाजवाद या साम्यवाद आदि किसी भी वाद की आवश्यकता ही नही रहेगी।

१० | अपरिग्रहवाद की उपयोगिता

वर्तमान विश्व की स्थिति कुछ इस प्रकार है कि यह लगभग दो विभागो मे विभक्त हो कर रह गया है। एक विभाग का नेता अमेरिका है जो पश्चिमी राष्ट्रो के हितो की रक्षा का उत्तरदायित्व लिए बठा है। दूसरे साम्यवादी राष्ट्रो का नेता रूस है। दोनो अपने अपने स्वार्थो स खेल रह हैं, दोनो के बीच शीतयुद्ध तीव्रता से चल रहा है। दोना शान्ति क नारे लगाते हुए भी युद्ध के भीषण साधन सम्पादन कर रहे हैं। यदि ये दोना देश के किसी भूभाग पर कुछ भी हरकत करते है ता सम्पूर्ण विश्व को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इस लिए विश्व के अ य सभी राष्ट्रो की निगाह इन पर गडी हुई हैं। इनकी सामान्य-सी भूल भी विश्व युद्ध की चुनौती बन सकती है।

उपयु क्त ममस्या के समाधान मे और शान्ति का नव विहान लाने मे अपरिग्रहवाद कितना उपयोगी है, यह किस से छिपा हुआ है ? यदि उन व्यक्तिया ने, व राष्ट्रा ने अपना जीवन अपरिग्रहवाद की भावना के अनुकूल बना लिया तो निश्चय ही आज के इस अशान्त वातावरण म एक नूतन एव सुखद परिवर्तन आ जाएगा। यह तो जन मानस का परखा हुआ सिद्धा त है कि अधिक साधन मानव की मानवता का अपहरण कर लेता है उसे दानव बना देता है, और यह दानव-वृत्ति ही हिंसा की जड है। इस हिंसा स बचने के लिए अपरिग्रहवाद को अपनाना आवश्यक ही नही, अनिवाय है। अपरिग्रहवाद जनतन्त्रवाद की बहुत बडी शक्ति है, और इस की सुखद छाया मे रह कर ही हम अहिंसा के उच्च आदश को प्राप्त कर सकते ह।

चार . अहिंसा और अनेकान्तवाद

* अहिंसा के दो रूप
बौद्धिक अहिंसा की आवश्यकता
* अनेकान्तवाद का स्वरूप
अनेकान्तवाद और स्याद्वाद
* क्या स्याद्वाद संशयवाद है ?
* एकान्तवाद नहीं, अनेकान्तवाद
* पदार्थ की नित्यानित्यता
जीव और लोक की नित्यानित्यता
सत् असत् पर विचार
त्रिगुणात्मक पदार्थ
* अनेकान्त की आधारशिला
अनेकान्तवाद एक सुन्दर उद्यान !
समस्या के समाधान की दिशा में

१० | अपरिग्रहवाद की उपयोगिता

वतमान विश्व की स्थिति कुछ इस प्रकार है कि वह लगभग दो विभागों मे विभक्त हो कर रह गया है। एक विभाग का नेता अमेरिका है जो पश्चिमी राष्ट्रो के हितो की रक्षा का उत्तरदायित्व लिए बठा है। दूसरे साम्यवादी राष्ट्रो का नेता रूस है। दोनो अपने अपने स्वार्थों स खेल रहे हैं, दोना म बीच शीतयुद्ध तीव्रता स चल रहा है। दोना शान्ति क नारे लगाते हुए भी युद्ध के भीषण साधन सम्पादन कर रहे है। यदि ये दोना देश म किसी भूभाग पर कुछ भी हरकत करते है, तो सम्पूर्ण विश्व का खतरा उत्पन्न हो जाता है। इस लिए विश्व के अन्य सभी राष्ट्रो की निगाह इन पर गडी हुई हैं। इनकी सामान्य-सी भूल भी विश्व युद्ध की चुनौती बन सकती है।

उपयु क्त समस्या के समाधान मे, और शान्ति का नव विहान लाने मे अपरिग्रहवाद कितना उपयोगी है यह किस से छिपा हुआ है ? यदि उन व्यक्तियो ने, व राष्ट्रो ने अपना जीवन अपरिग्रहवाद की भावना के अनुकूल बना लिया तो निश्चय ही आज के इस अशान्त वातावरण मे एक नूतन एव सुखद परिवतन आ जाएगा। यह तो जन मानस का परखा हुआ सिद्धान्त है कि अधिक साधन मानव की मानवता का अपहरण कर लेता है उस दानव बना देता है और यह दानव-वृत्ति ही हिसा की जड है। इस हिसा से बचने के लिए अपरिग्रहवाद को अपनाना आवश्यक ही नही, अनिवाय है। अपरिग्रहवाद जनतन्त्रवाद की बहुत बडी शक्ति है, और इस की सुखद छाया मे रह कर ही हम अहिंसा के उच्च आदश को प्राप्त कर सकते ह।

चार अहिंसा और अनेकान्तवाद

* अहिंसा के दो रूप

बौद्धिक अहिंसा की आवश्यकता

* अनेकान्तवाद का स्वरूप

अनेकान्तवाद और स्याद्वाद

* क्या स्याद्वाद संशयवाद है ?

* एकान्तवाद नहीं, अनेकान्तवाद

* पदार्थ की नित्यानित्यता

जीव और लोक की नित्यानित्यता

सत् असत् पर विचार

त्रिगुणात्मक पदार्थ

* अनेकान्त की आधारशिला

अनेकान्तवाद एक सुन्दर उद्यान !

समस्या के समाधान की दिशा में

१ | अहिंसा के दो रूप

❋ अहिंसा और अनेकान्तवाद जैनदर्शन के प्राणभूत तत्त्व हैं। जैन दर्शन में इनका वही महत्त्व है जो महत्त्व हमारे शरीर में हृदय और मस्तिष्क का है। अहिंसा आचार प्रधान है, तो अनेकान्त विचार प्रधान। अथवा यों कहना चाहिए कि अहिंसा व्यावहारिक अहिंसा है, तो अनेकान्त बौद्धिक अहिंसा। व्यावहारिक अहिंसा में—पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति तथा त्रस जीवों की हिंसा से विरत रहना, और इनके प्रति दया, करुणा, मैत्री व आत्मौपम्यता की भावना की जाती है। बौद्धिक अहिंसा—अनेकान्त में विचारों का वैषम्य, मनोमालिन्य, विचारगत संघर्ष या दार्शनिक विचार भेद और तज्जन्य संघर्ष दूर होता है। अनेकान्त में—सहअस्तित्व, सद्व्यवहार तथा विरोधी विचारों के प्रति सम्मान का सौरभ महकता है।

बौद्धिक अहिंसा की आवश्यकता

आज मानवीय जीवन में आचार प्रधान अहिंसा के साथ ही विचार प्रधान अहिंसा की भी अपेक्षा है। जहाँ विचारों का सुमेल अर्थात् समानता नहीं है, वहाँ अनेक प्रकार के संघर्ष, कलह, द्वन्द्व व आलोचना प्रत्यालोचना की बाढ़-सी आजाती है। मानव एकान्त पक्ष का आग्रही बन कर अन्धविश्वासों का शिकार बन जाता है, और संकुचित व क्षुद्र मनोवृत्ति में फंस कर एक दूसरे के प्रति छींटाकशी करने लग जाता है। वह अपने विचार व धर्म को सत्य बताता है और दूसरे विचारों तथा धर्मों को मिथ्या। अपनी साधना-आराधना की पद्धति को ही साध्य की सम्प्राप्ति में एक मात्र निमित्त मानता है। दूसरों की साधना को तथ्यहीन व

विडम्बना मात्र समझता है। सच्चा सो मेरा' इस सिद्धान्त का न स्वीकार कर मेरा सो सच्चा' इसी सिद्धान्त की रट लगाता रहता है। परिणामतः इस संकीर्ण वृत्ति से मानव समाज में अशान्ति की लहर-लहरान लगती है। इतना ही नहीं, जब मानव में संकीर्ण वृत्ति जनित-अहंकार, आग्रह तथा असहिष्णुता चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाती है तो सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र भी समर भूमि का रूप धारण कर लेते हैं और खून की नदियां बह चलती हैं। इस परिस्थिति के निराकरण के लिए ही जन दर्शन ने विश्व को अनेकान्त वाद की दिव्य-दृष्टि प्रदान की है।

संसार के विविध प्रकार के संतापों से मुक्ति पाने का साधन धर्म और दर्शन है। इसी पवित्र उद्देश्य से आचार्यों ने इसका प्रचार-प्रसार किया है, किन्तु मनुष्य की दुर्बलता धर्म और दर्शन को भी दूषित बनाने से नहीं चूकी। मानव हृदय की संकीर्णता ने धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी अनेक प्रकार की विकृतियां उत्पन्न कर दी। उसमें भी संकीर्णता आई। संकीर्णता की बदौलत धर्म और दर्शन को लेकर भी संघर्ष हुए। आग बुझाने के लिए पानी का उपयोग किया जाता है और यदि पानी ही आग का काम करने लगे तो आग कैसे बुझेगी? यही हाल यहाँ हुआ। शांति की प्राप्ति के लिए धर्म व दर्शन आए मगर वे भी जब अशान्ति की आग फैलाने लगे तो शांति की स्थापना कौन करता? भगवान महावीर और उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरों ने मानव जाति की इस दयनीय दशा को समझा और उसके प्रतीकार का एक अमोघ साधन बतलाया। वही साधन अनेकान्तवाद के नाम से अभिहित हुआ।

अनेकान्तवाद एक ही दृष्टिकोण से संसार को देखने परखने की हिमायत नहीं करता वरन् प्रत्येक वस्तु को विविध दृष्टि-बिन्दुओं से देखने-परखने की प्रेरणा देता है। अनेकान्तवाद अनाग्रहवाद है। इसका कहना है कि—जहां एक व्यक्ति के दृष्टि-कोण में सत्य है वहाँ अन्य के दृष्टि कोण में भी सत्य हो सकता है। अतः अन्य के दृष्टि कोण के प्रति भी हम उदार होना चाहिए। उस मध्यस्थ-भाव में समझने का धैर्य उत्पन्न करना चाहिए।

१ | अहिंसा के दो रूप

अहिंसा और अनेकान्तवाद जैनदर्शन के प्राणभूत तत्त्व हैं। जैन दर्शन में इनका वही महत्त्व है जो महत्त्व हमारे शरीर में हृदय और मस्तिष्क का है। अहिंसा आचार प्रधान है, तो अनेकान्त विचार-प्रधान। अथवा यों कहना चाहिए कि अहिंसा व्यावहारिक अहिंसा है, तो अनेकान्त बौद्धिक अहिंसा। व्यावहारिक अहिंसा में—पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति तथा त्रस जीवों की हिंसा से विरत रहना और उनके प्रति दया, करुणा, मैत्री व आत्मौपम्यता की भावना की जाती है। बौद्धिक अहिंसा—अनेकान्त से विचारों का वैषम्य, मनोमालिन्य, विचारगत संघर्ष या साम्प्रदायिक विचार भेद और तज्जन्य संघर्ष दूर होता है। अनेकान्त में—सहअस्तित्व, सद्व्यवहार तथा विरोधी विचारों के प्रति सम्मान का सौरभ महकता है।

बौद्धिक अहिंसा की आवश्यकता

आज मानवीय जीवन में आचार प्रधान अहिंसा के साथ ही विचार प्रधान अहिंसा की भी अपेक्षा है। जहाँ विचारों का सुमेल अर्थात् समानता नहीं है वहाँ अनेक प्रकार के संघर्ष, कलह, द्वन्द्व व आलोचना प्रत्यालोचना की बाढ़-सी आजाती है। मानव एकान्त पक्ष का आग्रही बन कर अन्धविश्वासों का शिकार बन जाता है, और संकुचित व क्षुद्र मनोवृत्ति में फँस कर एक दूसरे के प्रति छींटाकसी करने लग जाता है। वह अपने विचार व धर्म को सत्य बताता है और दूसरे विचारों तथा धर्मों को मिथ्या। अपनी साधना-आराधना की पद्धति को ही साध्य की संप्राप्ति में एक मात्र निमित्त मानता है। दूसरों की साधना को तथ्यहीन व

विडम्बना मात्र समझता है। 'सच्चा सो मेरा' इस सिद्धान्त को न स्वीकार कर 'मेरा सो सच्चा' इसी सिद्धान्त की रट लगाता रहता है। परिणामतः इस संकीर्ण वृत्ति से मानव समाज में अशान्ति की लहर-लहराने लगती है। इतना ही नहीं, जब मानव में संकीर्ण-वृत्ति जनित–अहंकार, आग्रह तथा असहिष्णुता चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है, तो सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र भी समर भूमि का रूप धारण कर लेते हैं, और खून की नदियां बह चलती है। इस परिस्थिति के निराकरण के लिए ही जैन दर्शन ने विश्व को अनेकान्त-वाद की दिव्य-दृष्टि प्रदान की है।

संसार के विविध प्रकार के सतापों से मुक्ति पाने का साधन धर्म और दर्शन है। इसी पवित्र उद्देश्य से आचार्यों ने इसका प्रचार– प्रसार किया है किन्तु मनुष्य की दुर्बलता धर्म और दर्शन को भी दूषित बनाने से नहीं चूकी। मानव हृदय की संकीर्णता ने धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी अनेक प्रकार की विकृतियां उत्पन्न कर दीं। उसमें भी संकीर्णता आई। संकीर्णता की बदौलत धर्म और दर्शन को लेकर भी संघर्ष हुए। आग बुझाने के लिए पानी का उपयोग किया जाता है और यदि पानी ही आग का काम करने लगे तो आग कैसे बुझेगी ? यही हाल यहाँ हुआ। शांति की प्राप्ति के लिए धर्म व दर्शन आए, मगर वे भी जब अशान्ति की आग फैलाने लगे तो शान्ति की स्थापना कौन करता ? भगवान महावीर और उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरों ने मानव जाति की इस दयनीय दशा को समझा और उसके प्रतीकार का एक अमोघ साधन बतलाया। वही साधन अनेकान्तवाद के नाम से अभिहित हुआ।

अनेकान्तवाद एक ही दृष्टिकोण में संसार को देखने परखने की हिमायत नहीं करता वरन प्रत्येक वस्तु को विविध दृष्टि बिन्दुओं से देखने-परखने की प्रेरणा देता है। अनेकान्तवाद अनाग्रहवान है। इसका कहना है कि–जहाँ एक व्यक्ति के दृष्टि-कोण में सत्य है वहाँ अन्य के दृष्टि कोण में भी सत्य हो सकता है। अतः अन्य के दृष्टि-कोण के प्रति भी हम उदार होना चाहिए। उसे मध्यस्थ भाव से समझने का धैर्य उत्पन्न करना चाहिए।

२ | अनेकान्तवाद का स्वरूप

०

जैनसंस्कृति का यह अमर स्वर है कि—प्रत्येक पदार्थ अनन्त धर्मों का पिण्ड है।[1] अनन्तगुणों व विशेषताओं को धारण करने वाला है। वस्तु के अनन्तधर्मात्मक होने का अर्थ हुआ कि सत्य अनन्त है तो फिर उस अनन्त सत्य को देखने के लिए दृष्टि भी अनन्त चाहिए। अर्थात् विराट दृष्टि के द्वारा ही उस अनन्त सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है। सीमित व एकांगी दृष्टि से सत्य के पूर्णांश को देखा परखा नहीं जा सकता। पदार्थ के समस्त धर्मों को अर्थात् पूर्ण सत्य को समझने के लिए विविध दृष्टिकोणों की आवश्यकता है। एक ही दृष्टि से पदार्थ का पर्यालोचन करने की पद्धति एकांगी व अप्रामाणिक है। जब कि भिन्न भिन्न दृष्टि बिन्दुओं से पदार्थ—धर्म का कथन करना प्रामाणिक व सत्य है। किसी भी पदार्थ के प्रकट गुणों को ग्रहण करते हुए अप्रकट गुणों को भुलाया नहीं जा सकता।

एक बार गणधर गौतम चिन्तन की चाँदनी में घूम रहे थे कि सामने निकटवर्ती वृक्ष पर एक भ्रमर उड़ता हुआ दिखलाई पड़ा। गौतम ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—'भगवन्? यह जो सामने भ्रमर उड़रहा है, इसके शरीर में कितने रंग है?'

---

१ अनन्तधर्मात्मकं वस्तु, प्रमाणविषयस्त्विह।

—षड्दर्शनसमुच्चय

जिज्ञासु की जिज्ञासा का शान्त करते हुए भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम ? व्यवहार नय स भ्रमर का एक ही रग है, काला, किन्तु निश्चय नय से इसक शरीर म पाँचो ही वण हैं।'[२]

इसी प्रकार गुड के सम्बन्ध म भी गौतम ने एक प्रश्न किया। 'भगवन् ? फाणित-प्रवाहित गुड मे कितन वण कितने गन्ध, कितन रस, और कितने स्पश हैं ?

सवन भगवान् महावीर न उत्तर दिया— गौतम ? व्यवहार नय की अपेक्षा तो वह मधुर कहा जाता है, पर निश्चय नय की अपक्षा से उसम पाच वण, दो गन्ध और आठ स्पश ह।'[३]

निश्चय नय वस्तु के वास्तविक, मौलिक एव अन्तरग स्वरूप का निणय करता है और व्यवहारनय केवल बाह्य एव ऊपरी स्वरूप का। इसस यह सिद्ध हाता है कि वस्तु का वास्तविक स्वरूप कुछ और होता है और इन्द्रिय ग्राह्य स्वरूप कुछ और। अल्पज्ञ छद्मस्थ—वस्तु क बाह्य स्वरूप को (जो इन्द्रिय ग्राह्य है) ही जान सकता है। किन्तु सवन आत्मा बाह्य और आभ्यन्तर दोनो स्वरूपो को जानते, देखते है। और इसीलिए उन्ह सवन कहा गया है कि व वस्तु को सम्पूण रूप स जानते हैं।

हाँ तो, अनेकान्तवाद पदाथ क उन अनन्त धर्मो की तरफ ध्यान केन्द्रीभूत कराता हुआ कहता है—'वस्तु अनन्त गुणात्मक है। उसमे एक नही, अनन्त गुण ह। उन अनन्त गुणो को जानने के लिए अपक्षा दृष्टि की आवश्यकता है, और यह अपेक्षा दृष्टि ही अनेकान्तवाद है। इस अनेकान्तवाद का स्याद्वाद भी कहते हैं।

अनेकान्तवाद और स्याद्वाद

जैनदशन का मूल आधार अनेकान्तवाद है और उसकी अभिव्यक्ति स्याद्वाद है। अनेकान्त केवल एक ज्ञानात्मक अनुभूति है, और यह अनुभूति जब वाणी द्वारा अभिव्यक्त होती है तो उसे स्याद्वाद कहा जाता है। 'स्यात्' का अथ है कथचित्, किसी एक दृष्टि विशेष से, और 'वाद' का अथ है कहना। अर्थात किसी अपेक्षा स वस्तु तत्त्व

२ —भगवती सूत्र १८-६

३ —भगवती सूत्र १८—६

२ | अनेकान्तवाद का स्वरूप

•

जनसंस्कृति का यह अमर स्वर है कि—प्रत्येक पदार्थ अनन्त धर्मों का पिण्ड है।[1] अनन्तगुणों व विशेषताओं को धारण करने वाला है। वस्तु के अनन्तधर्मात्मक होने का अर्थ हुआ कि सत्य अनन्त है तो फिर उस अनन्त सत्य को देखने के लिए दृष्टि भी अनन्त चाहिए। अर्थात् विराट दृष्टि के द्वारा ही उस अनन्त सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है। सीमित व एकांगी दृष्टि से सत्य के पूर्णांश को देखा परखा नहीं जा सकता। पदार्थ के समस्त धर्मों को अर्थात् पूर्ण सत्य को समझने के लिए विविध दृष्टिकोणों की आवश्यकता है। एक ही दृष्टि से पदार्थ का पर्यालोचन करने की पद्धति एकांगी व अप्रामाणिक है। जब कि भिन्न भिन्न दृष्टि बिन्दुओं से पदार्थ—धर्म का कथन करना प्रामाणिक व सत्य है। किसी भी पदार्थ के प्रकट गुणों को ग्रहण करते हुए अप्रकट गुणों को भुलाया नहीं जा सकता।

एक बार गणधर गौतम चिन्तन की चाँदनी में घूम रहे थे कि सामने निकटवर्ती वृक्ष पर एक भ्रमर उड़ता हुआ दिखलाई पड़ा। गौतम ने भगवान महावीर से प्रश्न किया—'भगवन ? यह जो सामने भ्रमर उड़ रहा है, इसके शरीर में कितने रंग हैं ?'

---

१ अनन्तधर्मात्मकं वस्तु, प्रमाणविषयस्त्विह।

—षड्दर्शनसमुच्चय

३ | क्या स्याद्वाद संशयवाद है ?

●

बहुत से व्यक्ति स्याद्वाद के गंभीर रहस्य को न जानने के कारण स्याद्वाद को संशयवाद या अनिश्चित-वाद कहते है। वैदिक परंपरा के आचार्य शंकर ने अपने शांकरभाष्य में स्याद्वाद को संशयवाद के रूप मे उपस्थित किया है। जिन आधुनिक दार्शनिकों ने निष्पक्षभाव से स्याद्वाद को समझने का प्रयास किया है उन्होंने शंकराचार्य के इस निरूपण पर आश्चर्य व्यक्त किया है, और स्पष्ट टीका की है कि वेदान्त के आचार्य ने स्याद्वाद को समझा ही नही। इसी प्रकार कतिपय अन्य दार्शनिकों ने भी इसी प्रकार की भूल की है। किन्तु स्याद्वाद की अन्तरात्मा में प्रवेश कर देखेंगे तो प्रभात के उजले की तरह स्पष्ट ज्ञात हुए बिना नहीं रहेगा कि स्याद्वाद संशयवाद नहीं है। यह तो एक सुनिश्चित दृष्टिकोण है। प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय ने लिखा है—"यह अनेकान्तवाद संशयवाद का रूपान्तर नहीं है। आप उसे संभववाद कहना चाहते हैं परन्तु 'स्यात्' का अर्थ सम्भवतः करना भी न्याय संगत नहीं है। स्यादस्ति घट :—अर्थात् स्वद्रव्य, क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से घट है स्यान्नास्तिघट - अर्थात् पर द्रव्य क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षा से घट नहीं है। जब स्याद्वाद स्पष्ट रूप मे यह कह रहा है कि 'स्यादस्ति यह द्रव्य, क्षेत्र काल भाव इस स्वचतुष्टय की अपेक्षा से है ही तो यह निश्चित अवधारण है। अतः यह न सम्भववाद है और न अनिश्चयवाद है किन्तु खरी अपेक्षा युक्त निश्चयवाद है।'"[५]

---

५ भारतीय दर्शन पृ १७३

का निरूपण करता स्याद्वाद है। स्याद्वाद समन्वयपरक और शान्ति का अग्रदूत है। यह मानव की बुद्धि का वैषम्य दूर करता है और समता का साम्राज्य स्थापित करता है। जीवन के हर क्षेत्र में इसकी बड़ी उपयोगिता है। स्याद्वाद के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वान् डा० थामस के विचार मननीय हैं। उन्होंने लिखा है—"स्याद्वाद का सिद्धान्त बड़ा गम्भीर है। यह वस्तु की भिन्न भिन्न स्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालता है। स्याद्वाद के अमर सिद्धान्त को दार्शनिक जगत् में बहुत ऊँचा स्थान माना गया है। वस्तुतः स्याद्वाद सत्य ज्ञान की कुञ्जी है। दार्शनिक क्षेत्र में स्याद्वाद को सम्राट् का रूप दिया गया है। स्यात् शब्द को एक प्रहरी के रूप में स्वीकार करना चाहिए, जो उच्चरित धर्म को इधर उधर नहीं जाने देता। यह अविवक्षित धर्मों का संरक्षक है, संशयादि शत्रुओं का संहारक व भिन्न दार्शनिकों का संस्थापक है।" स्याद्वाद में जीवन की जटिल से जटिल समस्या को हल करने की क्षमता है। स्याद्वाद की दृष्टि में छोटा भी बड़ा और बड़ा भी छोटा है, पिता भी पुत्र और पुत्र भी पिता है। इस व्यावहारिक सत्य को दार्शनिक रूप देकर विचारों की सही विवक्षा एवं प्रतिपादन करने की क्षमता स्याद्वाद में ही है। स्याद्वाद की दृष्टि से ही उक्त कथन की अभिव्यञ्जना की जा सकती है। प्रत्येक वस्तु सम्बन्धी हमारी अनुभूति सापेक्ष होती है और उसी का व्यवहार में प्रयोग किया जाता है।

स्याद्वाद के गम्भीर रहस्य को बतलाने के लिए आचार्यों ने एक बहुत सुन्दर व सरल उदाहरण प्रस्तुत किया है। किसी व्यक्ति ने पूछा—'आपका स्याद्वाद क्या है?' तो आचार्य ने कनिष्ठा व अनामिका, दोनों अंगुलियाँ फैलाते हुए उससे कहा—'इन दोनों में से बड़ी कौन-सी है?' उत्तर मिला—'अनामिका!' कनिष्ठा को समेट कर मध्यमा अंगुली फैलाते हुए पूछा—'अब बतलाइए दोनों में से छोटी कौन सी है?' उत्तर मिला—'अब अनामिका छोटी है।' तब आचार्य बोले—'बस, यही हमारा स्याद्वाद है, सापेक्षवाद है, जो तुम एक ही अंगुली को छोटी भी कहते हो और बड़ी भी।'[४]

---

४ 'यथा अनामिकायाः कनिष्ठामधिकृत्य दीर्घत्वं
मध्यमामधिकृत्य ह्रस्वत्वम्। —प्रज्ञापनासूत्र वृत्ति

४ | एकान्तवाद नहीं, अनेकान्तवाद

•

वस्तु स्वरूप के सम्बन्ध म एक पक्ष को ही आधार बनाकर किसी तथ्य का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। यदि कोई एक पक्ष का ही प्रतिपादन करता है तो वह एकांगी दृष्टि-कोण है, यह एकान्तवाद है। एकान्तवाद मे मिथ्यात्व का अधकार भरा पड़ा है। अनेकान्तवाद म सम्यक्त्व का प्रकाश जगमगा रहा है। अनेकान्तवाद की यह सर्वोपरि विशेषता है कि वह वस्तु के अन्य विद्यमान धर्मों की ओर से नेत्र बद करके किसी एक ही धर्म का ग्रहण नहीं करता। वह जिस वस्तु स्वरूप का निरूपण करेगा उसके विविध धर्मों का परिज्ञान कराता हुआ कहेगा—इस अपेक्षा से ऐसा 'भी' है और अन्य अपेक्षा से ऐसा 'भी'। यह 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग करता है। 'ही' और 'भी' के अभिप्राय मे पर्याप्त अन्तर है। 'ही' के प्रयोग म एकान्त आग्रह समाया हुआ है। वह एक विचार पक्ष के सामने दूसरे विचार पक्षों को ठुकराता है। अपूर्णता म पूर्णता मानकर मनुष्य को भ्रम म डालता है। जब कि 'भी' दूसरे पक्षों का स्वागत करने के लिए सतत समुद्यत है। समग्र सत्य की ओर इंगित करता है। अत भी विरोधी धर्मों से इन्कार नहीं होता किंतु उनकी सभावना की ओर सकेत करता है। यह समन्वयवाद और अपेक्षावाद की भावना से अनुस्यूत है। इसम वस्तु के प्रधान धर्म के साथ अन्य गौण धर्मों के कथन करने की गुंजाइश रहती है। 'भी' विचार वपम्य और सघर्ष की स्थिति को मिटाता है। वर विरोध की भावना का उन्मूलन करता है। यदि या कह दें तो गलत नहीं होगा कि 'भी' स्याद्वाद है तो 'ही'

नारगी निम्बू की अपेक्षा बडी है, और खरबूजे की अपेक्षा छोटी है, इस कथन की सत्यता म कोई सदेह नही है। क्या इसे सशय परक कथन कहा जा सकता है ? क्या इसका अर्थ यह ह कि सभवत नारगी बडी हो सभवत छोटी हो ? नही ! नारगी मे छोटापन और बडापन दोनो धर्म सुनिश्चित हैं। यद्यपि बडापन और छोटापन एक दूसरे से विरुद्ध धम हैं, मगर अपेक्षा भेद उस विरोध का निवारण कर देता है। विरोध का शमन कर देने मे ही तो स्याद्वाद की सफलता है।

अभिप्राय यह है कि एक ही अपेक्षा से यदि परस्पर विरोधी दो धर्मों का विधान किया जाय तो विरोध को अवकाश मिल सकता है। किन्तु विभिन्न अपेक्षाओं से जब विरोधी धर्मों का विधान किया जाता है तो विरोध के लिए गु जाइश नही रहती। 'नारगी नीम्बू से बडी भी है और छोटी भी है' यह कथन परस्पर विरोधी है, किन्तु 'नारगी नीम्बू से बडी और खरबूजे से छोटी है' इस कथन म अपेक्षाओं की भिन्नता के कारण विरोध का कोई स्थान नही है। यह एक सुनिश्चित सत्य है, जिसकी हमें अपने दैनिक जीवन मे प्रतिपद अनुभूति होती है। अत स्याद्वाद न सशयवाद है और न कल्पना लोक की हवाई उडान ही है। यह तो एक बुद्धिगम्य और सत्य पर आधारित सिद्धान्त है।

४ | एकान्तवाद नहीं, अनेकान्तवाद

•

वस्तु स्वरूप के सम्बन्ध म एक पक्ष को ही आधार बनाकर किसी तथ्य का प्रतिपादन नही किया जा सकता। यदि कोई एक पक्ष का ही प्रतिपादन करता है तो वह एकागी दृष्टि-कोण है यह एकान्तवाद है। एकान्तवाद मे मिथ्यात्व का अधकार भरा पडा है। अनेकान्तवाद म सम्यक्त्व का प्रकाश जगमगा रहा है। अनेकान्तवाद की यह सर्वोपरि विशेषता है कि वह वस्तु के अन्य विद्यमान धर्मों की ओर से नेत्र बद करके किसी एक ही धम को ग्रहण नही करता। वह जिस वस्तु स्वरूप का निरूपण करेगा उसके विविध धर्मों का परिज्ञान कराता हुआ कहेगा—इस अपेक्षा से ऐसा 'भी' है और अन्य अपेक्षा से ऐसा 'भी'। यह 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग करता है। ही और 'भी' के अभिप्राय म पर्याप्त अन्तर है। 'ही' के प्रयाग म एकान्त आग्रह समाया हुआ है। वह एक विचार पक्ष के सामने दूसरे विचार पक्षो को ठुकराता है। अपूर्णता म पूर्णता मानकर मनुष्य को भ्रम म डालता है। जब कि भी' दूसरे पक्षो का स्वागत करने के लिए सतत समुद्यत है। समग्र सत्य की ओर इगित करता है। अत 'भी विरोधी धर्मों से इन्कार नही होता, किन्तु उनकी सभावना की ओर सकेत करता है। यह समन्वयवाद और अपेक्षावाद की भावना से अनुस्यूत है। इसमे वस्तु के प्रधान धम के साथ अन्य गौण धर्मों के कथन करने की गु जाइश रहती है। 'भी विचार वपम्य और सघप की स्थिति को मिटाता है। वर विरोध की भावना का उन्मूलन करता है। यदि या कह दें तो गलत नही होगा कि 'भी' स्याद्वाद है तो 'ही'

५ | पदार्थ की नित्यानित्यता

जैन दर्शन प्रत्येक पदार्थ को नित्यानित्य मानता है। अर्थात पदार्थ नित्य भी है और अनित्य भी है। नित्यत्व पदार्थ के उस मूल स्वभाव से अर्थात द्रव्य से सम्बन्ध रखता है जिसका कभी नाश नहीं होता। पदार्थ अपने मूल रूप में ध्रुव है, शाश्वत है। अनित्यत्व पदार्थ की पर्याय से सम्बन्धित है। उदाहरण के रूप में मिट्टी का घड़ा नित्य भी है और अनित्य भी। मिट्टी और घड़े की आकृति दोनों घड़ा के निज रूप हैं। इसका एक रूप विनाशी है दूसरा अविनाशी। घड़े का आकार सम्बन्धी रूप विनाशी है। यह आज है और कल नहीं। घड़ा बनता भी है और मिटता भी है। जैन दर्शन ने अनित्य रूप को पर्याय कहा है। पर्याय बदलता रहता है इसलिए यह नाशवान है। घड़े का दूसरा रूप मिट्टी है। मिट्टी गतकाल में अर्थात् घड़ा बनने से पूर्व भी थी, वर्तमान काल में भी अवस्थित है, और आगामी काल में भी रहेगी। अर्थात घड़े के नष्ट होजाने पर भी मिट्टी तो मिट्टी रूप में विद्यमान ही रहती है। जैन दर्शन ने पदार्थ के इस द्विविध स्वरूप का द्रव्य और पर्याय कहा है। इस दृष्टि से पदार्थ न एकान्त नित्य है और न अनित्य ही। वह तो तदुभय रूप नित्यानित्य है।

जीव और लोक की नित्यानित्यता

जीव भी कथंचित् शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत है। भगवान् महावीर ने कहा है—'गौतम! द्रव्यार्थिक दृष्टि से जीव शाश्वत है,

पर्यायार्थिक दृष्टि से अशाश्वत है।[6] यहाँ पर दो दृष्टियों से उत्तर दिया गया है। द्रव्य दृष्टि से जीव नित्य है और पर्याय दृष्टि से अर्थात् भाव दृष्टि से जीव अनित्य है। जीव में जीवत्व का कभी अभाव नहीं होता। वह किसी भी अवस्था में हो जीव ही रहता है अजीव नहीं बनता। यह हुई द्रव्य दृष्टि। इस दृष्टि से जीव नित्य शाश्वत है, किन्तु जीव एक रूप में कभी कायम नहीं रहता अर्थात् उसके पर्याय बदलते रहते हैं। एक पर्याय से मुक्त होकर दूसरे पर्याय को ग्रहण करता है। ये पर्याय भी दो प्रकार की हैं—व्यंजन पर्याय और अर्थ पर्याय। व्यंजन पर्याय—वह स्थूल अवस्था है जो त्रिकाल-स्पर्शी होने के कारण चर्मचक्षु द्वारा भी देखी जा सकती है जैसे जीव की देव मनुष्य पशु-पक्षी आदि पर्याय। यह पर्याय एक लम्बे समय तक टिकती है। किन्तु अर्थ पर्याय सिर्फ वर्तमान-स्पर्शी होती है। वह एक समय तक ही रहती है, दूसरे समय नहीं रहती। जीव में अर्थात् आत्मा में प्रतिक्षण निरन्तर जो परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही है वही अर्थ-पर्याय है। इन दोनों प्रकार के पर्यायों की दृष्टि से प्रत्येक जीव और विश्व के अन्य सभी पदार्थ अशाश्वत हैं—अनित्य है।

इसी प्रकार लोक कथंचित् शाश्वत है, और कथंचित् अशाश्वत है। क्या कि अब तक ऐसा समय न तो आया और न आयेगा ही कि जिस समय लोक का अस्तित्व न हो अतः यह लोक ध्रुव नित्य व शाश्वत है। काल चक्र के परिवर्तन प्रभाव के कारण लोक अशाश्वत भी है। अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी और उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी काल आता है।[7] यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। इस काल भेद की अपेक्षा कभी उसमें सुख की मात्रा बढ़ जाती है तो कभी दुःख की मात्रा अधिक हो जाती है। इस विविध रूपता के कारण लोक अनित्य है अशाश्वत है और परिवर्तन शील है।

---

६ जीवाणं भन्ते ! किं सासया, असासया ? गोयमा ! जीवा सिय सासया सिय असासया। गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, भावट्ठयाए असासया।

भगवती सूत्र–७ । २ । ७७३

७ भगवती सूत्र–९ । ६ । ३८७

सत् असत् पर विचार

●

जन दृष्टि के अनुसार पदाथ अपने आप मे सत भी है और असत् भी है। यहाँ पर यह शका उपस्थित हो सकती है कि जो पदाथ सत् है वह असत कसे हो सकता है ? और जो असत् है वह सत कैसे ? एक ही वस्तु मे दो विरोधात्मक धर्म कैसे पाये जाते हैं ? इस रहस्य का परिज्ञान करने के लिए अनेकान्तवादी दृष्टि की अपेक्षा है। अनेकान्तवाद कहता है–स्व रूप से पदार्थ सत है, पर रूप से असत् है। दूध दूध के रूप मे सत है, दही के रूप मे असत है। यदि दूध की दूध के रूप में सत्ता न मानी जाये तो वह शून्य हो जाएगा और यदि दही के रूप में भी सत्ता मानी जाय तो उसम खट्टापन की अनुभूति होनी चाहिए जो प्रत्यक्ष अनुभव विरुद्ध है। इस प्रकार प्रत्येक पदाथ का वास्तविक एव नियत स्वरूप तभी प्रतिफलित होता है जब उसे सत् असत् उभय रूप मे स्वीकार किया जाय।

त्रिगुणात्मक पदाथ

●

जन दशन मे पदार्थ की परिभाषा करते हुए बताया है कि प्रत्येक पदाथ उत्पत्ति, विनाश और स्थिति गुण स्वभाव से युक्त हैं। जहाँ पदार्थ की उत्पत्ति और विनाश है, वहाँ उसकी स्थिरता भी निश्चित है। इनको उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य भी कहते हैं।[८] यहा उत्पाद और व्यय पर्याय रूप हैं, और ध्रौव्य द्रव्य का गुण रूप है। सुवर्ण के पुराने गहनो को तोडकर नवीन आकार प्रकार के गहनो का निर्माण करने पर पुराने आकार का विनाश होता है, नये आकार का निर्माण होता है और दोनों ही अवस्थाओ में स्वर्णत्व अवस्थित रहता है। यहाँ स्वर्णद्रव्य ध्रुव है, और पूर्वाकार का त्याग व उत्तराकार का ग्रहण क्रमश व्यय और उत्पाद है।

यह ध्रुव सिद्धान्त है कि विश्व का कोई भी पदाथ मूलत नष्ट नही होता। पदाथ में उत्पत्ति और विनाश जो देखा जाता है वह केवल उसकी बाह्य आकृति आदि का है, न कि मूल तत्त्व का।

---

८ उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत्—तत्त्वार्थ सूत्र ५।२९।

वस्तु का जो अंश उत्पन्न व नष्ट होता है उसे जैन दर्शन की भाषा मे पर्याय कहा है और जो उसकी अवस्थिति रहती है वह द्रव्य माना जाता है।

द्रव्य वह है जो गुण और पर्यायों का आश्रय है।[9] उत्पत्ति, विनाश और स्थिति ये तीनो गुण पदार्थ के स्वाभाविक धर्म हैं। जैनाचार्यों ने पदार्थ के इन गुण धर्मों को स्पष्ट करने के लिए एक सुन्दर रूपक दिया है[10] —तीन व्यक्ति एक साथ एक स्वर्णकार की दुकान पर पहुंचे। एक को स्वर्ण का घट चाहिए था दूसरे को स्वर्ण का मुकुट और तीसरे को केवल सोना। उस समय स्वर्णकार स्वर्ण कलश को तोड कर स्वर्ण मुकुट बना रहा था। यह दृश्य देखकर पहले व्यक्ति को परिताप-संताप हुआ कि यह स्वर्ण कलश तोड रहा है। दूसरे व्यक्ति को सुखानुभूति हुई कि यह मुकुट बना रहा है। तीसरा व्यक्ति बिल्कुल मध्यस्थ भावों से देखता रहा। क्योंकि उसे स्वर्ण की आवश्यकता थी। तीन व्यक्ति एक ही स्वर्ण में एक साथ तीन रूप देख रहे हैं। एक कलश रूप का विनाश, एक मुकुट रूप की उत्पत्ति और एक स्वर्ण रूप की ध्रुवता। उक्त रूपक के द्वारा पदार्थ के तीनों गुण धर्मों की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है। मुकुट रूप मे उत्पाद, घडे के रूप का विनाश और सोने के रूप में ध्रौव्य। तीनों तत्त्व एक ही वस्तु में स्पष्ट परिलक्षित होते हैं।

卐

---

९. गुणपर्यायवद् द्रव्यम्—तत्त्वार्थ सूत्र ५।३७

१० घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक प्रमोद माध्यस्थ्य जनो याति सहेतुकम्॥

—समन्तभद्र, आप्तमीमांसा

६ | अनेकान्त की आधारशिला

•

तत्त्व के स्वरूप का निश्चय प्रमाण द्वारा होता है, यह प्राय सववादि-सम्मत सिद्धान्त है। प्रमाणा की सख्या और स्वरूप आदि के सम्बध मे भारतीय दशनो मे भले ही मतभेद रहा हो मगर प्रमाण द्वारा वस्तु के निश्चय करने म किसी का मतभेद नही है। किन्तु इस विषय मे जन दशन एक मौलिक दृष्टि प्रदान करता है। उसका निरूपण यह है कि प्रमाण से वस्तु स्वरूप का निर्णय होता है, यह सही है किन्तु अकेला प्रमाण वस्तु के परिपूर्ण स्वरूप का प्रतिपादन नही कर सकता। वस्तु के विश्लेषण के लिए प्रमाण के अतिरिक्त एक और तत्त्व अपेक्षित है, जिसे जन परिभाषा मे 'नय' कहा गया है।[1]

प्रमाण और नय की परिभाषा करते हुए आचार्यों ने बताया है —समग्र वस्तु का ग्राहक ज्ञान प्रमाण' है और वस्तु के एक अश का ग्राहक ज्ञान 'नय' है। इस प्रकार नय न प्रमाण के अन्तगत है और न अप्रमाण ही कहा जा सकता है। जसे समुद्र का एक अश न समुद्र है और न असमुद्र है, बल्कि समुद्राश है उसी प्रकार नय प्रमाणाश है।

नय ज्ञाता का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। एक ही वस्तु के विषय मे अनेक दशको के अनेक दृष्टिकोण होते ह जो परस्पर मेल खाते प्रतीत नही होते तथापि उन्हे असत्य नही कहा जा सकता। कल्पना कीजिए हमारे समक्ष 'क' नामक एक व्यक्ति है। उसकी ओर लक्ष्य करके हम कई मनुष्यो से प्रश्न करते है—यह कौन है?

---

१ प्रमाणनयैरधिगम

— तत्त्वार्थ सूत्र अ० १,६

एक कहता है—यह जीव है।
दूसरा कहता है—यह मनुष्य है।
तीसरा कहता है—यह क्षत्रिय है।
चौथा कहता है—यह मेरा भाई है।
पाचवाँ कहता है—यह मेरा काका है।

इसी प्रकार के अन्यान्य उत्तर भी उसके सम्बन्ध मे दिये जा सकते हैं। प्रश्न यह है कि ये सब पृथक पृथक उत्तर सत्य पर आधारित हैं, या इन मे कोई उत्तर ऐसा भी है जो उस व्यक्ति पर लागू नही हो सकता हो।

उत्तरो मे भले ही विभिन्नता हो फिर भी वे सब सत्य हैं। उत्तर भेद का कारण दर्शक का दृष्टि भेद है। प्रथम उत्तरदाता उस व्यक्ति को एक पूर्ण द्रव्य के रूप मे देखता है। दूसरा उसे द्रव्य पर्याय के रूप मे देखता है। तीसरा पर्याय के रूप मे, और आगे के उत्तर दाता और अधिक बारीकी मे जाकर पर्याय के भिन्न भिन्न रूपो मे देखते हैं। इस प्रकार का दृष्टिकोण ही नय कहलाता है। नय की समीचीनता इस बात पर निर्भर है कि वह अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन तो करे, किन्तु दूसरे के दृष्टिकोण का निषेध न करे। नय-दृष्टि की एक सीमा है और वह यह है कि नय सदा विधायक दृष्टि से ही देखता है वह अपने धर्म का अपनी सत्ता का प्रतिपादन तो करता है किन्तु दूसरे धर्म व दूसरी सत्ता का अपलाप नही करता। प्रथम व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह 'क' को जीव कहे किन्तु 'यह मनुष्य है इस उत्तर का निषेध करने का अधिकार उसे नहीं है। इसी प्रकार दूसरे का अधिकार है कि वह उसे मनुष्य कहे मगर 'यह जीव नही है', ऐसा कहने का अधिकार उसका नही है। क्योकि 'क' मे जीवत्त्व और मनुष्यत्त्व दोनो धर्म विद्यमान है। और उनमे से किसी का अपलाप करना मिथ्या है। इस प्रकार पूर्वोक्त सभी उत्तर दाता अगर दूसरे उत्तरदाताओ को सच्चा मानता है तो वह स्वय भी सच्चा ठहरता है और यदि उन्हे झूठा कहता है तो स्वय भी झूठा सिद्ध होता है। यही नयवाद अनेकान्त की आधार शिला है। अनेकान्तवाद का यही मन्तव्य है कि ससार के समस्त एकान्तवादी वस्तु के एक एक धर्म के अश को ही स्वीकार किये हुए चलते है। यही कारण है कि उनके निरुपण मे भेद दिखाई देता है। यदि वे

सभी एक दूसरे के दृष्टिकोण को उदार दृष्टि से समझने का प्रयत्न कर, अपने दृष्टिकोण के प्रतिपादन के साथ अन्य के दृष्टिकोण का खण्डन न करें तो उनमें कोई विरोध नहीं रह जाएगा। दूसरों को सच्चा मानने पर वह स्वयं सच्चा साबित होगा। इसके विपरीत अगर वह दूसरों को मिथ्याभाषी कहता है, तो वह स्वयं भी मिथ्याभाषी है, क्योंकि सत्य के एक अंश को स्वीकार करके वह समग्र सत्य को स्वीकार करने का झूठा दावा करता है और दूसरे सत्यांशों को स्वीकार करने वालों को मिथ्याभाषी कहने के कारण वह स्वयं मिथ्याभाषी ठहरता है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु में नित्यता, अनित्यता सत्ता असत्ता, एकता, अनेकता आदि अनेक धर्म विद्यमान हैं। उन्हें विभिन्न दृष्टिकोणों से घटित करने पर विरोध की कोई संभावना नहीं रहती। वस्तु में एक एक धर्म की संघटना के लिए जैन दार्शनिकों ने सप्तभंगीवाद का बड़ा ही सुन्दर एवं तर्कसंगत निरूपण किया है, जिसे दार्शनिक ग्रन्थों से समझने का प्रयत्न करना चाहिए। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि विचार जगत के संघर्ष को टालने के लिए और वैचारिक हिंसा का निवारण करने के लिए अनेकान्तवाद एक अमोघ अस्त्र है। विचार जगत के संघर्ष प्रायः एक दूसरे के सत्य पर आधारित दृष्टिकोण को न समझने और न स्वीकार करने के कारण ही उत्पन्न होते हैं। अनेकान्तवाद दृष्टि में समग्रता उत्पन्न करके पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा करने की दिशा सुझाता है और जब पूर्ण सत्य को हृदयंगम कर लिया जाता है तो विचार-लोक के सभी संघर्ष स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

अनेकान्तवाद एक सुन्दर उद्यान

०

पदार्थ में नित्यत्व अनित्यत्व, सत्त्व असत्त्व, एकत्व अनेकत्व, और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य जैसे विरोधात्मक तत्त्वों के सद्भावों के रहस्य का परिज्ञान कराने वाला सिद्धान्त अनेकान्तवाद व स्याद्वाद वस्तुतः सुन्दर सुरभित फूलों का एक बगीचा है, जिसमें नाना रंग और नाना प्रकार की सौरभ में महकते हुए अनेक प्रकार के फूल खिले रहते हैं। प्रत्येक फूल अपनी मादक सौरभ में महकता है किंतु दूसरे की सौरभ व सुन्दरता पर किसी प्रकार का आघात नहीं करता। इसी प्रकार

अनेकान्तवाद के उद्यान मे विविधता मे एकता और एकता म विविधता, नित्यत्व मे अनित्यत्व, अनित्यत्व म नित्यत्व आदि विविध प्रकार के विचार-पुष्पो के दर्शन किए जा सकते हैं। इस विराट् सिद्धान्त के द्वारा विश्व के समस्त दर्शन व धर्मों का समन्वय सहजतया किया जा सकता है।

समस्या के समाधान की दिशा में

●

यह तो हम पिछले पृष्ठो पर लिख ही चुके हैं कि अहिंसा और अनेकान्तवाद जनदर्शन के दो स्तभ है। दोनो के आधार पर जैन दर्शन टिका हुआ है। यो भी कह सकते हैं कि अहिंसा और अनेकान्त न एक दूसरे का सतुलन बनाए रखा है। अनेकान्त के बिना अहिंसा अधूरा है, और अहिंसा के बिना अनेकान्त का कोई मूल्य नही। दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। अनेकान्त म अहिंसा की भावना और अहिंसा में अनेकान्त की भावना का स्पन्दन स्पष्ट दिखाई देता है। अनेकान्त को अहिंसा के अन्तगत भी लिया जा सकता है, और तब यह कह सकते हैं कि—अनेकान्त का मान है, बौद्धिक अहिंसा, वचारिक अहिंसा।

शास्त्रो मे अहिंसा की जो सीमाए निश्चित की गई ह, वे लगभग हमारे जीवन व्यवहारो को छून वाली है। जीवन व्यवहार शुद्ध हो, किसीका शोषण न हो, उत्पीडन न हो, किसी के साथ क्रूरता पूर्ण व्यवहार न हो, अधिक सग्रह न किया जाय और खान पान की शुद्धता तथा पवित्रता रखी जाय, यह अहिंसा का एक व्यवहार पक्ष है। दूसरा पक्ष करुणा और मंत्री का है अनेकान्त इसी भावात्मक पक्ष को परिपुष्ट करता है। हमारे विचारो मे उदारता सहिष्णुता और मंत्री भावना का सचार अनेकान्त के विचार स ही हो सकता है।

वर्तमान युग मे मनुष्य के अन्तर मन स लेकर जीवन, परिवार, समाज, राष्ट्र और अतर्राष्ट्रीय वातावरण तक दो प्रकार की स्थितिया उलझी हुई है। आज मनुष्य एक ओर मनुष्य का शोषण कर रहा है, उसके साथ निदयतापूर्ण पाशविक व्यवहार कर रहा है और उसके विनाश के लिए सहारक शस्त्रो के निर्माण म जुटा हुआ है। तो दूसरी ओर वचारिक द्वन्द्व पारस्परिक मन मुटाव, एव भय व आशका के कारण प्रत्येक राष्ट्र शीतयुद्ध की स्थिति म गुजर रहा है।

धार्मिक जगत मे आये दिन होने वाले साम्प्रदायिक संघर्ष, कलह आदि की जड आखिर क्या है ? इस प्रकार विचार करने से ज्ञात होगा कि करुणा की बात और दया का सन्देश देने वाला धार्मिक मानस भी आज विचारों मे अत्यंत आग्रही और असहिष्णु बना बैठा है। विचारो की यह हठवादिता जातीय, प्रान्तीय और अन्त राष्ट्रीय विवाद एव संघर्ष का मूल कारण है।

जीवन की इन उग्र समस्याओं का समाधान यदि कुछ है तो वह *अहिंसा और अनेकान्त के मार्ग से ही हो सकता है। अहिंसा जगत* की क्रूरता एव शोषण मूलक प्रवृत्तियों पर रोक लगाएगी। अपरिग्रहवाद मनुष्य की भोगलिप्सा और तज्जन्य संघर्ष को शात करेगा और अनेकान्तवाद वैचारिक क्षितिज पर गहराने वाले अशांति के अन्धकार को मिटाकर, शांति का प्रकाश जगमगाएगा। सुरसा के मुख की तरह वर्तमान मे फैलती जाती हुई अशांति और समस्याओं के समाधान की यही एक सही दिशा है।

❀❀

पाच .
भारतीय परम्परा में शाकाहार का रूप

* आदि मानव
  - कुलकरों की दण्ड नीति
  - भारतीय संस्कृति के आद्य संस्थापक
  - आदि मानव का आहार
  - आधुनिक इतिहासकारों की दृष्टि से
* अहिंसा के इतिहास म निरामिषता
* प्रकृति की विकृति मासाहार
  - इतिहास के झरोखे से
  - वैदिक परम्परा में
* मासाहारी प्राणी और मानव
* शाकाहारी भारत का सन्देश
  - शाकाहारियों का कर्तव्य
  - शाकाहार की व्यापकता
* विद्वाना की दृष्टि म मासाहार
* परीक्षण की तुला पर
  - उपसंहारात्मक एक दृष्टि

१ | आदि मानव

❦

ॐ वतमान कालचक्राध के पूव के तीन आरका मे भोगभूमि की प्रवृत्ति रही है। उस युग के मानव शान्त, निमल, अपरिग्रही एव अल्प कषायी थे। उनक जीवन म हिसात्मक प्रवृत्तिया का उदय बहुत अल्प था। वे सभी सुखी तथा अहिसक जीवन व्यतीत करते थे। हिसक पशु भी उस समय क्रूर नही थ। मानवा क साथ निर्वैरभाव स विचरण करते, और घास आदि खाते थे। मानव-युगल स्त्री पुरुप साथ साथ जन्मते, बडे होते और मरते थे। प्राणी मात्र प्रकृति पर निभर था। कल्पवृक्षा की सम्यता थी, वृक्षा से ही मानव की सम्पूण आवश्यकताए पूर्ण होती थी। या या कह कि उस समय के मानव की आवश्यकताए उतनी ही थी जितनी कि वृक्षा स पूरी हो सकती थी। वे वक्षा की शीतल छाया मे फलाहार करके सात्विक जीवन के आनन्द का रसास्वादन करते थे। जैनागमा म उक्त वृक्षा को कल्पवृक्षा के नाम से अभिहित किया जाता है। कई स्थानो पर इनका सविस्तार वर्णन मिलता है। अकमभूमि मे मनुष्या के उपभोगाथ दशविध कल्पवृक्ष बतलाये हैं।[1]

युग परिवतन शील है। युग के साथ साथ प्रकृति मे भी परिवतन-प्रत्यावतन होता रहता है। जब तक मानव को वक्षा से जीवनापयोगी

---

१ मत्त गया य भिगा तुडियगा दीव जोइ चित्त गा।
चित्तरसा मणिअगा गेहागारा अनिगिणा य ॥ प्रव० द्वा० १७१
अर्थ—१ मदाङ्ग २ भृङ्गाङ्ग ३ त्रुटिताङ्ग ४ दीपाङ्ग ५ ज्योतिरङ्ग ६ चित्राङ्ग ७ चित्ररसाङ्ग ८ मण्यङ्ग ९ गृहाकार १० अनाग्नाङ्ग।

तत्वो की उपलब्धि होती रही, तब तक उनकी मन स्थिति म दु स कल्प एव दुर्विकल्पो का प्रसव नहीं हुआ था। पर काल परिवतन होन पर जब वृक्षा का अभाव हुआ और जनसख्या के साथ मानव मन की इच्छाएँ विराट् बनन लगी, तब आवश्यकताएँ बढ़न लगा। आवश्यकताओ क अनुपात म साधन बढ नहा, अत उनकी पूर्ति के साधना के अभाव म मानव इधर-उधर भटकन लगा। असतोप की ज्वाला म झुलसन लगा। असतुष्ट मनुष्य परस्पर म सघप और आक्रमण के शिकार होने लगे। आक्रमण के शिकार होन वालो की शिकायत कुलकर क पास की जाने लगी। कुलकर अपन समय का एक सर्वमवा मान्य हाता था। अन्य व्यक्तिया स वह विशिष्ट विज्ञ हाता था। तात्कालिक मानव समाज की उचित व्यवस्था करता था। अत कुलकर अपनी स्थिति तथा अपराधी क अपराध के अनुसार उनका शिक्षा दन।* समाज म सताप और समता का साम्राज्य सस्थापित करने क लिए कुलकरा न कुछ नियम उपनियम बनाय, जिनका आधार अहिंसात्मक दृष्टि थी।

कुलकरो की दण्ड नीति

कुलकरा के समय तीन प्रकार की दण्डनीतिया प्रचलित थी–हाकार, माकार और धिक्कार।[२] सात कुलकरा[३] की दृष्टि से विमल

*कुलकरों की सख्या के सम्बन्ध म मतक्य नहीं है। उसमें विभिन्न मत हैं। स्थानाङ्ग सूत्र, समवायाङ्ग सूत्र, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक निर्युक्ति तथा त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित में सात कुलकरों के नाम उपलब्ध होते हैं। पउमचरियं महापुराण और सिद्धान्त ग्रन्थ म चौदह व जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में पन्द्रह कुलकरों का उल्लेख मिलता है। सम्भवत यह अन्तर वाचना भद से हुआ हो। किन्तु गभीरता से अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि–चौदह पन्द्रह जो कुलकर हैं उन म भी सात कुलकर ही माने गए हैं, और वे ही मुख्य हैं। आगमों के मान सर्वत्र उपलब्ध हैं अत सात कुलकरों की दृष्टि से उन की अहिंसात्मक दण्ड नीति पर हम यहाँ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

२ हक्कारे मक्कारे धिक्कारे चेव दडनीईओ।
वुच्छ तासि विसेस जहक्कम आणुपुव्वीए॥

—आवश्यक नियुक्ति १६८

वाहन और चक्षुष्मान के समय 'हाकार' नीति, यशस्वी और अभिचन्द्र के समय 'माकार' नीति तथा प्रसनजित, मरुदव और नाभि के समय 'धिक्कार' नीति का प्रचलन हुआ।

प्रथम तथा द्वितीय कुलकर के समय म मानव बहुत सीध-साधे स्वभाव के और स्वच्छ प्रकृति वाल थे। उनके द्वारा किसी प्रकार का अपराध होने पर उन्ह इतना ही कहा जाना "हा" अर्थात् तुमने यह क्या किया? इसको वे बहुत बडा दण्ड समझते, और अपनी भूल स्वीकार कर नीति पथ पर आ जाते। समय के साथ मनुष्य की भावना म भी परिवतन आता है। जब हाकार नीति का प्रभाव क्षीण होने लगा, तब तीसरे और चौथे कुलकर के समय' माकार' नीति का आविष्कार हुआ। मत करो' यह निषेधाज्ञा महान् दण्ड समझी जाने लगी और माकारनीति' के भी असफल हा जाने पर पाचवें, छठे तथा सातव कुलकर ने 'धिक्कार' नीति का आश्रय लिया। अपराधी को धिक्कार देते तो अपराधी पानी-पानी हो जाता और वह अपने को एक प्रकार स दण्डित-सा समझता। इस प्रकार खेद, निषेध और तिरस्कार तीना दण्ड मृत्यु दण्ड से भी अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए। आदि युग की दण्ड नीतिया के अवीक्षण से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि मानव, सभ्यता के आदि युग म बहुत ही सरल, दयालु और निश्छल था, अपराध करते-करते उसकी वृत्ति अपराधी जसी बनने लगी और क्रमश वह धूत, क्रूर और अपराध स्वभाव वाला बनता गया। अन्तिम कुलकर नाभि हुए है, जिन्होंने अपना कार्यभार अपन पुत्र ऋषभदेव का सौंप दिया। नि सन्देह ऋषभदेव ने राजनीनि व समाज नीति को एक नया माड दिया, और मानव सभ्यता के विकास की नई परम्परा का श्री गणेश किया।

भारतीय संस्कृति के आद्य संस्थापक

श्री ऋषभदेव भारतीय संस्कृति के आद्य संस्थापक थे। आपने अकर्मभूमि युग की वनवासी सभ्यता को समाप्त कर कर्मभूमि युग

---

१ पढमित्थ विमल वाहण, चक्खुम जसम चउत्थमभि चदे।
मरो य पसेणइ, पुणमरुदेवे चेव नाभी य। —स्थानांग० ७
(ख) आवश्यक निर्युक्ति

ने मनुष्य नूतन समाज की व्यवस्था का शिलान्यास किया। प्रकृति-प्रदत्त साधनों पर ही निर्भर न रह कर मनुष्य को अपने हाथों से श्रम करने का सन्देश दिया। साथ ही आवश्यक उद्योग धन्धों एवं कलाओं का शिक्षण प्रशिक्षण भी प्रदान किया। भगवान ऋषभदेव ने सर्व प्रथम सामाजिक क्रान्ति की। समाज को नई दिशा दी। उसके पश्चात अध्यात्मवाद का मार्ग प्रदर्शित करके आत्म साधना की ओर उन्मुख हुए। ऋषभदेव भारतीय संस्कृति में प्रथम राजा प्रथम मुनि, प्रथम केवली और प्रथम तीर्थंकर थे।[४] भगवान ऋषभदेव का महत्त्व केवल जन-परंपरा में ही नहीं है। वैदिक परंपरा में भी उनको विष्णु का अवतार मानकर उनकी पूजा अर्चना की जाती है। श्रीमद्भागवत मार्कण्डेय पुराण अग्नि पुराण आदि में ऋषभदेव की जीवन रेखाएँ स्पष्ट अंकित हैं।[५]

आदि मानव का आहार

श्री ऋषभदेव के पूर्व भोग भूमि के मानव का आहार कन्द मूल, पुष्प-फल और पत्र आदि था।[६] जन संख्या की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होने से जब कन्द-मूल पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलने लगे तब ऋषभदेव ने मानवों को कन्द मूल के अतिरिक्त जंगली अन्नादि को हाथों में मसल कर साफ कर खाना सिखाया। पकाने के साधनों के अभाव में कच्चा अन्न दुष्पाच्य होकर मनुष्यों को उदर-पीड़ा देने लगा। तब मानवों ने भगवान ऋषभदेव से प्रार्थना की और समस्या का समाधान मांगा। इस पर ऋषभदेव ने अन्न को पानी में भिगोकर मुट्ठी व

---

४ (क) कल्पसूत्र पुण्य विजय जी। —सू० १९४ पृ० ५७

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति।

५ भागवत, स्कन्ध ५

६ (क) आसी अ कन्दाहारा मूलाहारा य पत्तहारा य।
पुप्फ फलभोइणो ऽवि य आसया किर कुलगरो उसभो॥
—आवश्यक नियुक्ति गा० २०३

(ख) आव० मूलभाष्य गा० ३ हारिभद्रीय वृत्ति।

(ग) आवश्यक चूर्णि जिनदास गणी प० १५४।

बगल मे दवाकर उष्ण करके खाने की राय दी ।[७] किंतु इससे भी समस्या का सही समाधान न हो सका । कुछ दिनो बाद अजीर्ण की व्याधि मानवो को फिर सताने लगी । इधर समय की अनुकूलता होने पर एक बार वृक्षादि के परस्पर मघर्ष से आग पैदा होती देखी गई । ऋषभदेव ने मिट्टी के पात्र मे अन्न को अग्नि पर पकाकर खाने की प्रवृत्ति चलाई ।[८]

श्री ऋषभदेव ने मानव जीवन को अधिकाधिक सात्त्विक बनाने के उपायो की खोज की और मासाहार से बचाने के लिए कृषि का आविष्कार किया । यह आविष्कार उस युग का एक बहुत बडा वैज्ञानिक चमत्कार था, और अहिंसा की तो यह एक सुदृढ नींव थी, जिसकी नीव पर आज हजारो लाखो वर्ष के इतिहास का सुरम्य मनोहर प्रासाद अवस्थित है ।

आधुनिक इतिहासकारो की दृष्टि से

जैन परम्परा की मान्यतानुसार आदि युग का मानव मांसाहारी नही, शाकाहारी था । जिसका दिग्दर्शन ऊपर की पक्तियो मे हम करा चुके हैं । किन्तु आधुनिक इतिहास और अर्थ शास्त्र की दृष्टि से समाज के आर्थिक सगठन का इतिहास साधारण पाँच अवस्थाओ मे विभाजित किया जाता है,[९]—

(१) आखेट अवस्था
(२) पशुचारण अवस्था

---

७ (क) आसी य पाणिघसी तिम्मिय तदुल-पवालपुडभोई ।
हत्थयलपुडाहारा जइया किल कुलगरो उसभो ॥
घसेऊण तिम्मण घसणतिम्मणपवालपुडभोई ।
घसियतिम्मपवाले हत्थउडे कक्खसेए य ॥
—आव० नि० गा० २०६–२०७

(ख) आव० मू० हारिभद्रीयावृत्ति० मू० भा० ८ प० १३१।१

८ पक्खेवडहणमोसहिकहण निग्गमण हत्थिसीसम्मि ।
पयणारम्भपवित्ती ताहे कासीय ते मणुया ॥
—आव० नि० गा० २०१

९ उच्चतर माध्यमिक अर्थ शास्त्र —पृ० ४६, प्रो० सत्य देव

(३) कृषि अवस्था
(४) हस्तकला अवस्था
(५) उद्योग अवस्था

जब इस भूमि पर सभ्यता का सूत्रपात नहीं हुआ था, उसके पूर्व अधनग्न मानव जगलो मे पहाडो मे, कन्दराओ मे और गुफाओ में निवास करता था। प्रकृति से जीवन निर्वाह के तत्त्व पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध नहीं होने से क्षुधा से छटपटाने लगा। तब "बुभुक्षित किं न करोति पाप" के अनुसार मानव हाथाम तीर कमान लेकर जगल म निकल पडता, और शिकार के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करता था। पर सृष्टि पर जब सभ्यता के कुछ कुछ चिह्न प्रस्फुटित होने लगे और मानव ने अपनी बौद्धिक शक्ति का कुछ विकास किया तो वह मासाहार से हटकर वनस्पत्याहार की तरफ आकर्षित हुआ। प्रगति के कुछ और चरण आगे बढे, तथा कृषि का आविष्कार हुआ तो मानव ने अपने हाथो के तीर कमान दूर फेंक दिये और हल, हासिया लेकर वह मदान मे उतर पडा। सदियो से खून का प्यासा मानव अहिंसा के प्रतिष्ठान मे श्रम की महत्ता को पहचानकर विश्व के सुनहरे प्रागण मे आगे बढ गया।

२ | अहिंसा के इतिहास में निरामिषता

●

जब मानव समाज मे आसुरी वृत्ति चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है और हिंसा का विप्लव होने लगता है उस समय इस आर्यभूमि पर दिव्यदृष्टि वाले किसी न किसी नरपुगव का जन्म होता है। वह नरपुगव अपने प्रभास्वर- व्यक्तित्व के द्वारा समाज मे फली हुई आसुरी वृत्ति का दमन करता है।

धरती का आदि मानव जब गडबडाने लगा—सघर्ष और आक्रमण बढने लगे, मनुष्य के मन मे हिंसा प्रतिहिंसा की भावनाएँ जाग्रत होने लगी, उस समय मे अहिंसा के आद्यप्रणेता भगवान् ऋषभदेव ने अवतरित होकर मानव जाति के अव्यवस्थित जीवन को यथावत् मर्यादित एव सस्कारित किया। कृषि के माध्यम से अन्नाहार का आविष्कार किया। क्रियात्मक अहिंसा के इतिहास मे यह एक महत्त्वपूर्ण आलेख है। डा० कामता प्रसाद जैन ने 'विदेशी सस्कृतियो मे अहिंसा' शीर्षक निम्बन्ध मे तीर्थंकर कालीन हिंसा अहिंसा के विकास का ब्यौरा देते हुए बतलाया है कि "भगवान् ऋषभदेव के पश्चात काल क्रम से २३ तीर्थंकर हुए हैं। वे भी अहिंसा धर्म के प्रचारक थे। ऋषभदेव से १८ तीर्थंकरो पर्यन्त अहिंसा धर्म का प्राबल्य रहा। किन्तु तीर्थंकर मल्ली और मुनिसुव्रत के काल मे यहाँ आसुरी वृत्ति का श्री गणेश हुआ। असुरो ने आकर अहिंसक ब्राह्मणो को भगाकर पशु यज्ञ करने की कुप्रथा को जन्म दिया, तभी से यहाँ हिंसा अहिंसा का द्वन्द्व चला।"[1]

---

१० गुरुदेव श्री रत्न मुनि स्मृति ग्रन्थ पृ० स० ४००

सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ ने मेघरथ राजर्षि के भव में एक कपोत की प्राणरक्षा कर विश्व को अहिंसा प्रेम का पाठ पढ़ाया था। मौत के मुख से किसी प्राणी को बचाना यह धर्म का उच्चादर्श है। प्रस्तुत आदर्श के संरक्षणार्थ ही राजर्षि ने अपने शरीर के मांस को काट कर क्षुधापीडित व्याध को अर्पण कर दिया। किन्तु शरणागत कपोत की उपेक्षा नहीं की। करुणा के उस मसीहा ने प्राणों की ममता त्याग कर भी कपोत की जान बचाई।

प्रस्तुत घटनाचक्र में मांसाहार का निषेध और अहिंसा धर्म की पुष्टि के ही संदर्शन होते हैं।

भगवान अरिष्टनेमि का जीवन तो अहिंसा के इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ रहा है। उन्होंने अपने विवाह प्रसंग पर होने वाले पशु-वध से दयार्द्र होकर सदा सदा के लिए विवाह से ही मुख मोड़ लिया।[11] प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलाल जी ने जैन संस्कृति का अन्तर हृदय' शीर्षक निबन्ध में भगवान नेमिनाथ के जीवन तत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है— 'एक समय था जब कि केवल क्षत्रियों में ही नहीं, पर सभी वर्गों में मांस खाने की प्रथा थी। नित्य प्रति के भोजन, सामाजिक उत्सव धार्मिक अनुष्ठान के अवसरों पर पशु पक्षियों का वध ऐसा ही प्रचलित और प्रतिष्ठित था जैसा आज नारियलों और फलों का चढ़ाना। उस युग में यादवजाति के प्रमुख राजपुत्र नेमि कुमार ने एक अजीब कदम उठाया। उन्होंने अपनी शादी पर भोजन के लिए कतल किए जाने वाले निर्दोष पशु पक्षियों की आर्त मूक वाणी से सहसा पिघल कर निश्चय किया कि वे ऐसी शादी न करेंगे जिसमें अनावश्यक और निर्दोष पशु पक्षियों का वध होता हो। उस गंभीर निश्चय के साथ वे सब की सुनी अनसुनी करके बारात से शीघ्र लौट आए, द्वारिका से सीधे गिरनार पर्वत पर जाकर उन्होंने तपस्या की। कौमार वय में विवाहार्थ प्रस्तुत सुन्दर राजकन्या का त्याग और ध्यान-तपस्या का मार्ग अपना कर उन्होंने उस चिर प्रचलित पशु पक्षी वध की प्रथा पर आत्म-दृष्टान्त से इतना प्रहार किया कि जिससे गुजरात भर में और गुजरात के प्रभाव वाले दूसरे प्रान्तों में भी वह प्रथा नामशेष हो गई। वह परंपरा वर्तमान में चलने वाली पिंजरापोलों की

---

११ उत्तराध्ययन सूत्र, अ २२

लोकप्रिय संस्थाओं में परिवर्तित हो गई।" [१२] यदुकुमार नेमिनाथ के पश्चात भगवान पार्श्वनाथ ने अहिंसा तत्त्व को विकसित करने के लिए एक दूसरा नया ही कदम उठाया। पञ्चाग्नि जैसी तामस तपस्या का खण्डन करते हुए प्रभु ने बतलाया कि यह तपस्या किसी काम की नहीं, जिसमें अनेकों सूक्ष्म व स्थूल प्राणियों के जल जाने का कोई भान ही नहीं रहता। सद् असद का कोई भान ही नहीं होता। ऐसी हिंसाजन्य तपस्या, तपस्या नहीं निरा देह दण्ड है उसमें आत्मविराग की कोई गुञ्जाइश नहीं है। इतना ही नहीं, प्रभु ने जन समाज को पाखण्ड धर्म से सावधान किया और वास्तविक धर्म से परिचित कराकर जीवों के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा। इस प्रकार धर्म क्षेत्र में सदियों से फैले हुए अज्ञानतिमिर को दूर कर विवेक के प्रकाश में अहिंसा तत्त्व को जगमगाया।

यद्यपि सर्प की घटना को लेकर भगवान पार्श्वनाथ को कमठ तापस व उनके अनुयायियों का कोप पात्र बनना पड़ा, फिर भी उन्होंने उसकी तनिक भी परवाह नहीं की और हिंसाजन्य अज्ञान-तप की जड़ ही उखाड़ डाली। यह भगवान् पार्श्वनाथ की अपूर्व देन है कि आज भी जनधर्म या उससे प्रभावित क्षेत्र में सर्पों के प्रति करुणा की वर्षा बरसती हुई दिखलाई पड़ती है मानव सर्पों को नागदेवता के रूप में पूजने लगा है।

भगवान पार्श्वनाथ के द्वारा विकसित अहिंसा की भावना ज्ञात पुत्र भगवान महावीर को विरासत में प्राप्त हुई। भगवान महावीर और बुद्ध के युग का इतिहास तो बड़ा ही विचित्र रहा है। जब भारत के धर्म क्षेत्रों में यज्ञ यागादि के नाम पर पशुबलि और दास प्रथा के रूप में शोषण का दौर चल रहा था स्वार्थी, धर्मान्ध व रस-लालुप व्यक्ति हिंसा को विशेष प्रोत्साहित कर रहे थे। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' यज्ञार्थं पशवः सृष्टा "स्वर्गकामो यजेत" आदि आदि सूत्रों का निर्माण कर धर्म के नाम पर पशुओं का बेरहमी से वध किया जाता था। इस तरह हिंसा को व अहिंसा का चोगा पहना देते थे। हिंसा, अहिंसा का नकाब पहनाकर पुन आम जनता के सम्मुख आने लगी। मानव के द्वारा मानव का तिरस्कार और अपमान देखकर वस्तुतः

---

१२ दर्शन और चिंतन,

मानवता अपमानित होने लगी वह हजार-हजार आंसुओं से सिसक उठी। उस समय भगवान महावीर और तथागत बुद्ध ने अहिंसा में नये प्राण और नई चेतना का स्पंदन भरने के लिए संपूर्ण मानव जाति को दया और करुणा का दिव्य-संदेश दिया। सारे समाज में अहिंसक क्रान्ति की व्यापक लहर पैदा की। इतना ही नहीं अपने धर्म प्रवचनों में खुल्लम-खुल्ला याज्ञिक प्रचलित यज्ञों का खण्डन करते हुए कहा—

धर्म का सम्बन्ध आत्मा की पवित्रता से है, मूक पशुओं का रक्त बहाने में धर्म कहां है? यह तो आमूलचूल भयंकर भूल है पाप है। जब आप किसी मरते जीव को जीवन नहीं दे सकते तो उसे मारने का आपको क्या अधिकार है? पैर में जरा-सा कांटा जब हमें बेचैन कर देता है तो जिनके गले पर छुरियाँ चलती हैं, उन्हें कितना दुःख होता होगा? यज्ञ करना बुरा नहीं है। वह अवश्य होना चाहिए। परन्तु ध्यान रखो, कि वह विषय विकारों के पशुओं की बलि से हो न कि इन जीवित देहधारी मूक पशुओं की बलि से। सच्चे धर्म यज्ञ के लिए आत्मा को अग्निकुण्ड बनाओ उसमें मन वचन और काय के द्वारा शुभप्रवृत्ति रूप घृत उंडेलो। अनन्तर तप अग्नि के द्वारा दुष्कर्म का ईंधन जलाकर शान्ति रूप प्रशस्त होम करो।[13] इस प्रकार भगवान महावीर ने हिंसात्मक यज्ञों का विरोध कर अहिंसा तप आदि रूप यज्ञों का निरूपण किया।[14] तथा प्रचलित मांसाहार का सशक्त स्वर में घोर विरोध किया। विरोध की आवाज इतनी प्रचण्ड थी कि स्वार्थी—धर्मान्ध व्यक्ति अपने स्वार्थों पर होने वाले आघातों से आहत होकर कुछ समय के लिए कुलबुला उठे। किन्तु शान्ति के इस महान देवदूत की एकाग्र तपस्या व उनकी अहिंसा परायण निष्ठा के सम्मुख एक दिन उन्हें नतमस्तक होना पड़ा। परिणामतः जो व्यक्ति मांस व यज्ञप्रिय थे उनके शुष्क हृदयों में करुणा का अजस्र-स्रोत प्रवाहित हो उठा।

भगवान महावीर और बुद्ध के पश्चात तो अहिंसा भावना की जड़ भारत के मानस में इतनी अधिक गहरी जमी कि समस्त

---

१३ महावीर सिद्धान्त और उपदेश पृ० ३ —उपाध्याय अमर मुनि

१४ तवो जोई जीवो जोइठाणं जोगा सुया सरीरं कारिसंग
कम्मेहा संजम जोग सन्ती होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ॥
—उत्तराध्ययन सूत्र, अ० १२।२४

भारतीय धर्मों का वह हाद बन बैठी । तात्कालिक बडे-बडे प्रभाव शाली ब्राह्मण व क्षत्रिया को उमन अपनी ओर आकर्षित कर लिया । सामाजिक, धार्मिक आदि उत्सवा म भी अहिंसा ने अपना प्रभाव जमा लिया । सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य फैल गया । भगवान महावीर ने विश्व को जो अनेक प्रकार की देन दी हैं उनमें अहिंसा सम्बन्धी यह देन सर्वोपरि है ।

भगवान् महावीर तथा बुद्ध द्वारा उपदिष्ट अहिंसा और करुणा तत्व का सम्राट् चद्रगुप्त, अशाक तथा उसके पौत्र सप्रति न और अधिक प्रतिष्ठित एव व्यापक बनाया, इतिहास जिसका साक्षी ह । कलिंग-युद्ध म नर रक्त को बहत देखकर अशोक का हृदय करुणाद्र हो उठा, और उसने भविष्य म युद्ध न करन का सकल्प कर लिया । अशाक ने अहिंसा और करुणा के सदश का शिला लखा द्वारा स्थान स्थान पर उत्कीर्ण कराके प्रचारित किया । अशोक का पौत्र सम्राट सम्प्रति ने अहिंसा की भावना को अपने अधीनस्थ राज्या तक ही सीमित नही रखा वरन राज्या के सीमावर्ती प्रदशा म भी दूर-दूर तक फैलाकर उसका प्रबल प्रचार किया । बारहवी सदी म आचाय हेमचन्द्र ने गुजरपति सिद्धराज को अहिंसा की भावना न प्रभावित कर एक बहुत बडा आदर्श उपस्थित किया । सिद्धराज के राज्य म जहाँ देवी-देवताओं के समक्ष नानाविध हिंसाएँ हाती थी, व हिंसाएँ सब रुक गई । सिद्धराज का उत्तराधिकारी महान सम्राट कुमारपाल भी अहिंसा मे सपूर्ण निष्ठा रखता था । उसने अहिंसा भावना का जितना विस्तार किया वह इतिहास म बजोड है । उनकी दयाद्र वृत्ति के लिए एक सुप्रसिद्ध जनश्रुति है कि—'कुमारपाल अपने राज्य में अश्वो का पानी भी छान छान कर पिलाया करता था उस की अमारि घोषणा' अत्यन्त लोकप्रिय बनी जो अहिंसा भावना की एक विशिष्ट द्योतक थी ।

अहिंसा भावना के प्रचार म जहाँ अनेको वरिष्ठ व्यक्तियो के हाथ अग्रसर रहे हैं, वहाँ निग्रन्थ परपरा के श्रमणो का भी इसमे विशेष श्रेय रहा है । वे हिमालय से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक पदयात्रा करके अनेक मुसीबतो व अनेक कष्टो को झेलकर जन जन को अहिंसा का अमृत बाँटते रहे है । उनके अन्तर मे प्रेम पीयूष उछलता

रहे हैं। अगणित व्यक्तियों को हिंसा-जनित मांस-मदिरा के व्यसनों का परित्याग करवा कर उन्हें धर्माभिमुख किया है।

जैसे शंकराचार्य ने भारत के चारों कोनों पर मठ स्थापित करके अद्वैत का विजय स्तम्भ रोपा है, वैसे ही महावीर के अनुयायी अनगार निर्ग्रन्थों ने भारत जैसे विशाल देश के चारों कोनों में अहिंसाद्वैत की भावना के विजय स्तम्भ रोप दिए हैं ऐसा कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। लोकमान्य तिलक ने इस बात को यों कहा था कि— 'गुजरात की अहिंसा भावना जैनों की ही देन है, पर इतिहास हमें कहता है कि अहिंसामूलक धर्मवृत्ति में निर्ग्रन्थ—सम्प्रदाय का थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य काम कर रहा है। उन सम्प्रदायों के प्रत्येक जीवन-व्यवहार की छानबीन करने से कोई भी विचारक यह सरलता से जान सकता है कि इसमें निर्ग्रन्थों की अहिंसा भावना का पुट अवश्य है।'[१५]

वस्तुतः निर्ग्रन्थ परंपरा के श्रमणों का अहिंसा के उत्कर्ष में विशेष अवदान रहा है। श्री हीरविजय सूरि ने भारत के मुगल-सम्राट अकबर को अपने प्रभाव में खींच कर अहिंसा का दिव्य सन्देश दिया और सम्राट से कुछ प्रमुख तिथियों पर 'अमारि घोषणा' जारी करने का वचन भी प्राप्त किया। कई मांसाहारी जातियों को अहिंसा धर्म में दीक्षित किया। भारत में बहुत-सी मांसाहारी जातियाँ आज अहिंसक जीवन बिता रही हैं इसका श्रेय अधिकांश में निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के श्रमणों को ही प्राप्त है।

मध्यकाल में कुछ ऐसे संत महात्माओं की अवतरणा भी हुई है कि जिनका उपदेश वाणी व रचना अहिंसा-दया का अमृत-कोष कहा जा सकता है। भारत की वायु में अहिंसा के जो परमाणु देखे जाते हैं, वे सब इन्हीं संत महात्माओं की देन है। भारत उनके उपकारों से उपकृत है।

महात्मा गांधी ने भारत में नवजीवन का प्राण स्पन्दित करने के लिए अहिंसा का ही आश्रय ग्रहण किया था। मैं समझता हूँ गांधी जी की सफलता का रहस्य भी अहिंसा ही है, और अहिंसा के

---

१५ दर्शन और चिन्तन (हिन्दी) खण्ड २ पृ० सं० २७६।

—पं० सुखलाल जी

सहारे से ही वे एक बहुत बडे राष्ट्र को सर्वतन्त्र स्वतन्त्र बना सके। इसमे कोई शक नही कि गाधी जी ने अहिंसा का राजनीति मे प्रयोग करके भारत के अहिंसक वातावरण को और अधिक सजीव एव व्यावहारिक बनाया है। यही नही, कहना चाहिए कि गाधी जी ने अहिंसा के इतिहास मे एक नया पृष्ठ जोडा है। उन्होने राजनीति के क्षेत्र मे अहिंसा भगवती की प्रतिष्ठा करके उसके व्यवहार-क्षेत्र मे भी उत्साहजनक अभिवृद्धि की है।

इस प्रकार अहिंसा का इतिहास भगवान् ऋषभदेव से लेकर वर्तमान गाधी युग तक सतत सात्विक गति से चलता रहा है। यह ठीक है कि उसके बीच बीच मे शिथिलता और रुकावट अवश्य आती रही, किन्तु शिथिलता और रुकावट उसे अपने पथ से विचलित न कर सकी। आज भारतीय अहिंसक समाज उन महापुरुषो का अत्यन्त कृतज्ञ है, जिन्होने अपने प्राणो का उत्सर्ग करके दया और करुणा का सदेश दिया। वैवाहिक समारम्भ का त्याग कर हजारो पशुओ को जीवन दान दिया। अहिंसात्मक तपस्या तथा अहिंसात्मक यज्ञ की साधना बतला कर विश्व को मासाहार एव पशुबलि की घिनोनी परपरा से बचाया और उन्हे निरामिषता की दिशा मे बढने की प्रबल प्रेरणा दी।

३ | प्रकृति की विकृति मासाहार

मामाहार मानव प्रकृति से सवथा विरुद्ध है। वह किसी भी अवस्था म मानव के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। मास भक्षी पशुओ की शरीर रचना म मनुष्य के शरीर की रचना नितान्त भिन्न प्रकार की है। विशेषज्ञो के मतानुसार मनुष्य के उदर की रचना इस प्रकार की है कि वह मास को पचाने के योग्य नही है। अतएव मास खाने की जो प्रवत्ति मानव म देखी जाती है वह उसका नसर्गिक रूप नही किंतु विकृति-जन्य रूप है।

कभी कभी तो मानव को परिस्थितिया म विवश होकर भी मास खाना पडता है। जसे कि प्रसिद्ध विचारक उपाध्याय अमर मुनि ने लिखा है— मासाहार का अन्य कारणो के साथ-साथ एक मुख्य प्रयोजन यह भी रहता है कि ठडे मुल्का म, पहाडो और जगली प्रदेशो म जो बहुसख्यक मानव समाज रहता है उस अन्न उपलब्ध नही हो सकता, वहा खेती भी सभव नही लगती और वहा के वातावरण मे मास जसी गर्मी देने वाली वस्तु के बिना काम नही चल सकता। इस समस्या का हल मासाहार के द्वारा कसे हो सकता है इसके अनुसधान का प्रयत्न नही हुआ। यह कमी हम हमारी कमी माननी होगी।[१६] ये कुछ स्थितियाँ होते हुए भी यह सब मान्य सिद्धात तो सभी को एक स्वर मे स्वीकार करना ही होगा कि मानव निसगत मासाहारी नही, शाकाहारी है। अनुभव से भी यह स्पष्ट है कि शिशु अवस्था मे मनुष्य मुख्यत दुग्ध एव घृत का आहार करता है

---

१६ अहिंसा तत्त्व दर्शन

श्रौर बड़ा होने पर वह श्रादनादि श्रन्न का श्राहार करता है।[17] प्रस्तुत गाथा के 'सप्पि' शब्द पर इतिहास महादधि श्री कल्याण विजय जी ने टिप्पण इस प्रकार किया है—वर्तमान काल में भी बच्चा का जन्मते ही दूध तथा सर्पिष प्राय म लेकर बच्चे के मुँह म डाला जाता है इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य का मुख्यभोज्य पदार्थ दुग्ध एवं घृत ही है। परन्तु ये पदार्थ जीवन पर्यन्त सभी के लिए पर्याप्त नहीं, अतः बड़ा होने पर उनको अन्न खाना सिखाया जाता है।[18] वस्तुतः मानव का श्राहार दुग्ध व अन्न ही है। तभी तो अन्न की महत्ता बताते हुए उपनिषदकार को कहना पड़ा—'अन्न व प्राणा' अर्थात् अन्न ही प्राण है जीवन है। इसके बिना मानव जीवन का टिकना संभव नहीं अधिकाधिक अन्न उपजाना ही राष्ट्रीय व्रत माना है—अन्न बहु कुर्वीत तदव्रतम्।[19]

इतिहास के झरोखे से!

यह तो सुविदित है कि मांसाहार का श्राम प्रचलन अनार्य लोगों के अतिरिक्त भारतवर्ष में कहीं नहीं था। अनार्य तथा विदेशियों के संपर्क से ही भारत में इस कुप्रथा को अधिक प्रश्रय मिला है। उनके दीर्घ कालीन संपर्क सूत्र ने आर्य लोगों के मानस को विकृत बना डाला और मास को खाद्य पदार्थ के रूप में खुल्लम खुला प्रयोग किया जाने लगा। जो कि आर्य संस्कृति के विघात के लिए पूर्ण घातक सिद्ध हुआ है। इस सम्बन्ध में मुनि श्री कल्याण विजय जी के विचार मननीय हैं। श्रापने मांसाहार के प्रचलन का कारण बतलाते हुए स्पष्ट लिखा है—'प्राण्यंगमांस' खाद्य पदार्थ है यह पहले कोई नहीं जानता था। परन्तु दुष्काल आदि विषम समय में सभ्य बस्तियों से दूर रहने वाले अनार्य लोगों ने पेट की ज्वाला शांत करने के लिए श्रारण्यक जानवरों को मार कर उनका मांस खाने की प्रथा चलाई और इस प्रथा को शिकार करने वाले क्षत्रिय वर्ग को भी चेप

---

१७ डहरा समाणा खीरं सप्पि भणुपुव्वेण।
मुज्झा श्रोवणं । —सूत्रकृताङ्ग सूत्र

१८ मानव भोज्य मीमांसा पृ० ११

१९ ऐतरेय उपनिषद् ३।९

लग गया। जो कि पहले मानव रक्षा के लिए केवल हिंस्र-पशुओं का ही शिकार करना उनके कर्तव्य में सम्मिलित था परन्तु डायानिसस आदि विदेशी आक्रमणकारियों के सम्पर्क से यहां के क्षत्रिय लोग भी धीरे धीरे मांस मदिरा खाना सीख गये थे फिर भी आर्य जातियों में यह पदार्थ सर्वमान्य कभी नहीं हो सका।

वैदिक धर्म के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में पशु यज्ञ तथा ब्राह्मणों को मांस खाने का अधिकार नहीं है। वेदों का अनुशीलन करने वाले ब्राह्मण भी अश्वमेध करते और उसका मांस खाते थे यह कथन कोई सत्यता नहीं रखता।"[20] इतिहास के झरोखे से देखने पर यह भी ज्ञात होगा कि उत्तर भारत सदा से सभ्य आर्यों से बसा हुआ था और वह पूर्ण शाकाहारी था। यह तथ्य भारत वर्ष का भ्रमण करने वाले विदेशी यात्रियों ने जो अपनी यात्रा के संस्मरण उद्धृत किए हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है। 'ग्रीकयात्री मेगास्थनीज जो चन्द्रगुप्त मौर्य की राज सभा में राजदूत के रूप में वर्षों तक रहा था और उत्तरीय भाग के अनेक देशों का भ्रमण किया था उसके यात्रा विवरण से भी उत्तर भारत में आर्यों की प्रधानता और वनस्पत्याहार की मुख्यता थी। उसके वृत्तान्त के अनुसार वहां पहाड़ी अनार्यों को छोड़ कर नागरिक लोग यज्ञ प्रसंग के बिना मांस मदिरा का उपयोग नहीं करते थे।

बौद्धयात्री फाहियान, जो ईसा की पांचवीं शताब्दी के लगभग भारत में आया था वह उत्तर भारत के मध्य देश के विषय में लिखता है—

देशभर में कोई मांसाहारी नहीं है। नहीं कोई मादक द्रव्यों का उपयोग करता है। वे प्याज और लहसुन नहीं खाते। केवल चांडाल लोग ही इस नियम का उल्लंघन करते हैं। वे सब बस्ती के बाहर रहते हैं। और अस्पृश्य कहाते हैं। इनको कोई छूता भी नहीं नगर में प्रवेश करते समय लकड़ी से कुछ संकेत और आवाज करते हैं। जिसको सुनकर नागरिक हट जाते हैं। इस देश के लोग सुअर नहीं पालते। बाजार में मांस और मादक द्रव्य की दुकानें भी नहीं हैं।

---

२० मानव भोज्य मीमांसा पृ० सं० १२०

व्यापार हेतु यहाँ के निवासी कौड़ी का व्यवहार करते हैं। केवल चंडाल मात्र ही मास,मछली मारते और शिकार करते हैं।"[२१]

वैदिक परंपरा में

●

भारत वर्ष की प्राचीन सभ्यता व इतिहास के अनुसार वेदकालीन यज्ञ भी बहुत सीधे सादे होते थे, उनमें जीवित प्राणियों की आहुति नहीं दी जाती थी, और न देवता ही मास-भक्षण करते थे। वे 'व्रीहि'-यवादि से संतुष्ट हो जाते थे। इतिहासकार लिखते हैं—

वैदिक काल में जो और गेहूं खेत की खास पैदावार और भोजन की खास वस्तु जान पड़ती है। ऋग्वेद में अनाज के जो नाम मिलते हैं वे कुछ संदेह उत्पन्न करने वाले हैं, क्योंकि पुराने समय में जो उनका अर्थ था वह आजकल बदल गया है। आजकल संस्कृत में 'यव' शब्द का अर्थ केवल जौ है, पर वेद में इसी शब्द का मतलब गेहूं और यव में लेकर अन्नमात्र से है। इसी तरह आजकल 'धान' शब्द का अर्थ कम से कम बंगाल में चावल से है, पर ऋग्वेद में यह शब्द भुने हुए जौ के लिए आया है जो कि भोजन के काम में आता था, और देवताओं को भी चढ़ाया जाता था।

"ऋग्वेद में व्रीहि चावल का उल्लेख नहीं है। हम लोगों को इन्हीं अनाजों से बनी हुई कई तरह की रोटियों का भी वर्णन मिलता है, जो खाई जाती थी, और देवताओं को भी चढ़ाई जाती थी। 'पक्ति' (पच पकाना) का अर्थ है 'पकी हुई रोटी' इसके सिवाय कई दूसरे शब्द जैसे पुरदास (पुरोडाश) 'अपूप' और 'करम्भ' आदि शब्द भी पाये जाते हैं।"[२२]

इस प्रकार मान्य वैदिक ग्रन्थों का पर्यवेक्षण करने से भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि देव और मानव का भोजन घृत तथा दुग्ध एवं वनस्पतिजन्य पदार्थ ही रहे हैं।

❋

---

२१ फाहियान पृ० २६-२७ —मानव भोज्य मीमांसा में उद्धृत

२२. प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास —प्र० भा० प्रक० वैदिक काल १ काण्ड

४ | मासाहारी प्राणी और मानव

शरीर शास्त्रियो का मत है कि मानव शरीर की रचना और उसकी प्रकृति दुग्धपायी प्राणियो से काफी मिलती जुलती है, अत मासाहारी प्राणियो से वह बिल्कुल भिन्न पडता है। मासाहारी जीवो का जन्म काल स जिस प्रकार के तीक्ष्ण नाखन व दात होते ह वसे मानव के नही होते। मासाहारी जीवो के दात टढे मढे होते है, किन्तु मानव के दात बिल्कुल सीधे और चपट होते है। मानव की पाचन शक्ति (जठराग्नि) इतनी तज नही कि वह कच्च मास को आसानी से पचा सके जबकि हिंस्र जीव उस सहज ही पचा लत है। सिंह, चीता, व्याघ्र और बिलाव आदि मासाहारी जीव जिह्वा स लप्-लप करके पानी पीते हैं, किन्तु मानव जिह्वा स नही, होठो से पीता है। प्रोफेसर विलियम लारेस एफ० आर० एस० ने बतलाया है—'मासाहारियो की आँखें निरामिष भोजियो से भेद रखती ह, मासाहारी जानवरो की नेत्रज्योति सूर्य का प्रकाश सहन नही कर सकती। लेकिन व रात को दिन की भाति दख सकत हैं। रात को उनकी आखें दीपक के समान अङ्गारो की तरह चमकती है। परन्तु मनुष्य दिन को भलीभाँति देख सकता है। सूर्य का प्रकाश उसका उसकी नेत्र ज्योति का विघातक नही, बल्कि सहायक है और मनुष्य की आँख रात को न तो चमकती ह और न प्रकाश के बिना दख सकती हैं।

मासाहारी जीव का बच्चा जब पदा होता है, तब उसकी आँखें बहुत दिनो तक बन्द रहती है। किन्तु निरामिष भोजी के बच्चे पैदा होते ही थोडी देर में आँख खोल देते है।

'मासाहारी जानवरो को गर्मी भी सहन नही होती। वे थोडे

परिश्रम में थक कर हार जाते हैं, लेकिन मनुष्य गर्मी बरदाश्त कर सकता है और थोड़े से काम से हार नहीं जाता।'

मांसाहारी जीवों के शरीर से अधिक परिश्रम और दौड़ धूप के बाद भी पसीना नहीं निकलता, विपरीत इसके मनुष्य एवं निरामिषाहारी जीवों का अधिक श्रम का कार्य करने पर पसीना आ जाता है।"[२१]

राष्ट्रपिता गांधी जी ने एक स्थान पर अपनी विचार श्रेणी प्रस्तुत करते हुए लिखा है—शरीर-रचना को देखने से जान पड़ता है कि कुदरत ने मनुष्य को वनस्पति खाने वाला बनाया है। दूसरे प्राणियों के साथ अपनी तुलना करने से जान पड़ता है कि हमारी रचना फलाहारी प्राणियों से बहुत अधिक मिलती है। अर्थात् बन्दरों से बहुत ज्यादा मिलती है। फाड़ कर खाने वाले शेर, चीते आदि जानवरों के दांत और दाढ़ों की बनावट हम से और ही प्रकार की होती है। उनके पंजे के सदृश हमारे पंजे नहीं हैं। साधारण पशु मांसाहारी नहीं हैं, जैसे गाय बैल। हम इन से कुछ मिलते हैं। परन्तु घास आदि खाने के लिए गायें जैसी आंतें उनकी हैं, वैसी हमारी नहीं हैं। इन बातों से बहुत से शोधक ऐसा कहते हैं कि मनुष्य मांसाहारी नहीं है। रसायन शास्त्रियों ने प्रयोग करके बतलाया है कि मनुष्य के निर्वाह के लिए जिन तत्त्वों की आवश्यकता है, वे सब फलों में मिल जाते हैं। केले, नारंगी, खजूर, अंजीर सेव, अननास, बादाम अखरोट मूंगफली नारियल आदि में तन्दुरुस्ती को कायम रखने वाले सारे तत्त्व हैं। इन शोधकों का मत है कि मनुष्य को भोजन पकाने की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे और प्राणी सूर्य के ताप से पकी हुई वस्तु पर तन्दुरुस्ती कायम रखते हैं, वैसे ही हमारे लिए भी होना चाहिए।'

❀ ❀

---

२१ मानव-भोज्य मीमांसा

५ | शाकाहारी भारत का सन्देश

भारत वप हजारा लाखो वर्षों स विश्व का शाकाहार का दिय मन्देश दता रहा है। यही कारण है कि ग्राज ग्रहिंसा के सम्बन्ध में सूक्ष्मतम चिन्तन करने वाले तथा शाकाहारी जीवन बिताने वाले व्यक्ति भारत में सबसे अधिक मिलते हैं। शाकाहार का प्रयाग भारत वप की सस्कृति में महत्वपूर्ण और गौरवपूर्ण ग्रध्याय है। सभ्यता के ग्रादि सस्कर्ता भगवान ऋषभदेव का शाकाहार की परपरा में विशष ग्रवदान रहा है। कृषि कर्म के माध्यम से मासाहार के स्थान पर शाकाहार की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देकर उन्होने विश्व का एक महान् देन दी है। उनका यह उपकार ग्रविस्मरणीय है। किन्तु खेद है कि शाकाहार का महान सिद्धान्त विश्व में अधिक व्यापक न बन सका। जबकि ग्रावश्यकता इस बात की थी कि यह सिद्धान्त विश्वव्यापी होकर जन-जन के मन का ग्राकर्षण केन्द्र बनता पर यह नहीं हो सका। यदि यो कह दें ता ग्रतिशयाक्ति नहीं हागी कि इस युग में तो इस सिद्धान्त का विकास न होकर प्रतिदिन ह्रास ही हाता जा रहा है। ग्रब भी समय है भारत के जो शाकाहारी हैं वे ग्रहिंसा के प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा मासाहारी जन समाज को शाकाहार की ग्रोर ग्राकर्षित करें, उनके जीवन में ग्रहिंसा की ग्रास्था जगाए खोई हुई चेतना का पुन सम्पादन करें। निराश होना मनुष्य का धर्म नहीं है। कहा भी है—

'जो सोये सपनों के तम में, वे जागेंगे यह सत्य बात।
देखा जिसने जीवन निशीथ, वह देखेगा जीवन प्रभात।।"

उपाध्याय श्री ग्रमर मुनि जी महाराज की भाषा में—"उन पर जिम्मेदारी है जा स्वय शाकाहारी हाते हुए भी मासाहारियों को

शाकाहारी होने के लिए प्रभावित न कर सकते। शाकाहारियों का कर्तव्य है कि वे शाकाहार की उपयोगिता पर नई खोज करते, तथा उसके अनुसार यह सिद्ध कर देते कि मांसाहार न केवल निरर्थक और अनावश्यक है—बल्कि हानिप्रद भी है। मांसाहार के बिना भी इस संसार की खाद्य समस्या का हल हो सकता है। इस तरह यदि क्रियात्मक ढंग से मांसाहार के विरुद्ध वातावरण तैयार किया होता तो निश्चय ही संसार के बहुसंख्यक लोग शाकाहार की वास्तविकता का तत्त्व समझ लेते।[२४]

शाकाहारियों का कर्तव्य

शाकाहार की प्रतिष्ठा के लिये शाकाहारियों का यह कर्तव्य है कि वे अनावश्यक आरंभ-समारंभ तथा परोक्ष हिंसा जन्य प्रवृत्तियों से बचें। आज हिंसा की कई ऐसी प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, जिन पर विचार व अनुसंधान करना आवश्यक ही नहीं, वरन् अनिवार्य भी है। बिना उस अनुसंधान के मांसाहारी तथा निरामिषभोजी दोनों समान रूप से उस निर्मम हत्या के साझीदार होते हैं, जो शाकाहारी के लिए बिल्कुल त्याज्य है। आज कितने ही जीवित पशुओं को मार कर उनके अवयव दवाई आदि के रूप में काम में लिये जाते हैं। कितने ही जीवित पशुओं का चर्म फैशन का सामान बनाने में काम लिया जा रहा है। सम्प्रति बाजारों में जो नूतन फैशनेबुल घड़ी के पट्टे, मुलायम जूते और लेदर बैग आदि मिलते हैं वे सभी जीवित पशुओं को मारकर उनके चमड़े से बनाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में यह भी सुना जाता है कि कोमल नाजुक चमड़े की जितनी भी वस्तुओं का निर्माण होता है वह अधिकांश जिन्दी गायों के गर्भाशय से निकाल कर नवजात बछड़ों को मार कर ही होता है। क्या आज का प्रगतिशील कहलाने वाला तथा शाकाहार को प्रश्रय देने वाला मानव उपर्युक्त ढंग की क्रूरतापूर्ण हत्या द्वारा निर्मित वस्तुओं का प्रयोग कर सकता है? यदि प्रयोग करता है तो क्या, वह अपने को पूर्ण शाकाहारी कहलाने के गौरव से गौरवान्वित हो सकता है? नहीं, कदापि नहीं।

---

२४ अहिंसा तत्त्व दर्शन,

जिस देश में शाकाहार के प्रचार प्रसार की लम्बी चौडी चर्चाएँ चलती है और जो देश अपने को अहिंसा का प्रहरी कहता है उसी देश की सरकार स्वयं जनता को मांसाहार की ओर ले जा रही है यह कितने परिताप का विषय है ? जो शासन सदियों से आर्य संस्कारों में पला-पुसा है, वह आज मुर्गी पालन, मछली पालन तथा वैज्ञानिक ढंग के कत्तलखाने खोलने की योजनाएँ बना रहा है तथा ऋषि महर्षियों के द्वारा बतलाई हुई हजारों वर्षों की आत्मौपम्य की साधना पर पानी फेर रहा है। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है ? आश्चर्य ही नहीं, पर इस बात का अत्यन्त खेद भी है कि भारतीय सरकार विदेशी सरकारों द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं की भोंडी नकल कर अपनी आर्य संस्कृति के मुख पर कालिख पोतने का काम कर रही है। ऐसी स्थिति में निरामिषभोजी जनता को जाग्रत होना है, तथा भारतीय सरकार को अहिंसात्मक विद्रोह द्वारा बाध्य करके शाकाहार के पथ को प्रशस्त बनाना है।

शाकाहार की व्यापकता

●

सामान्य रूप से मांसाहार विश्व के सभी धर्मों में निषिद्ध है। यदि कुछ धर्मावलम्बी मांसाहार का प्रयोग करते हैं तो वे निश्चित रूप में अपने धर्माचार्यों और धर्मप्रवर्तकों की आज्ञा का उल्लंघन करते हैं। यह तो निश्चित है कि शाकाहार का प्रचार प्रसार भारत वर्ष में ही नहीं वरन अन्य भूखण्डों में भी रहा है और वह भी समस्त कालों में रहा है। श्री शिवचन्द्र कोचर ने मनुष्य जाति का सर्वोत्तम आहार-शाकाहार शीर्षक निबन्ध में बतलाया है- ग्रीस देश के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वानों—पिथागोरस, इम्पीडाक्लिस प्लेटो, सोक्रेटिज, ओविड, सनेका पार्फिरी, प्लूटार्क आदि ने तथा आरिजेन, टरटयूलियन, क्रिसास्टोम तथा अलक्जेंड्रिया के क्लीमेंट जैसे ईसाई धर्म गुरुओं ने भी शाकाहार का प्रतिपादन किया है। भारतवर्ष के महान सम्राट अशोक ने अपने विशाल साम्राज्य में स्थान-स्थान पर इस आशय के शिलालेख उत्कीर्ण करवाये थे कि कोई व्यक्ति किसी प्राणी की हत्या न करे। महान मुगल सम्राट अकबर ने भी आदेश दिया था कि उसके साम्राज्य में विशेष पर्वों के अवसरों पर किसी प्रकार का प्राणि

वध न किया जाय। ससार के प्रसिद्ध विद्वान् स्वीडनबोर्ग, टालस्टाय वाल्टेयर, मिल्टन, वेस्ले आइजक, न्यूटन, बूथ, पिटमन, बर्नार्डशा इत्यादि शाकाहारी थे, और उन्होंने अपनी रचनाओं मे शाकाहार का पूर्णरूपेण प्रतिपादन किया है।"[२५]

मासाहार के सम्बन्ध म बहुत से व्यक्तियों की यह धारणा है कि मासाहार स शक्ति बढती है, वह शक्ति का अमित स्रोत है। किन्तु उनकी यह धारणा अवैज्ञानिक है। इसका उत्तर सर टी० लोडर ब्रटन के शब्दों म इस प्रकार है—"मासाहार शक्ति प्रदान करने के बदले निर्बलता का शिकार बनाता है। और उससे जो 'नाइट्रोजिनस' पदार्थ उत्पन्न होता है वह स्नायु जाल पर जहर का काम करता है। आज कई डाक्टरों तथा वैज्ञानिकों न परीक्षण के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि मास की अपेक्षा फल तथा शाक भाजी एव गोदुग्ध म अधिक पोषकतत्त्व पाये जाते है। जिन का प्रयोग—शक्ति, स्फूर्ति तथा बुद्धिबल आदि सभी दृष्टि से उपयुक्त लाभप्रद है। मास मे इनका अभाव पाया जाता है। साथ ही इससे नानाप्रकार की हानियाँ भी होती है। शाकाहारी मनुष्य म उदारता सहनशीलता तथा धैर्य प्रभृति गुण जितने अशो मे अधिक पाये जाते हैं उतने मासाहारी मनुष्य मे नही।

विश्व इतिहास पर नजर डालने से दो बातें स्पष्ट हो जाती है कि—मास मनुष्य का प्राकृतिक भोजन कभी नही रहा है। मानव शरीर के लिए उसकी न कोई आवश्यकता है और नहीं कुछ उपयोगिता। दूसरी बात—ससार मे जितने भी महान प्रतिभाशाली पुरुष हुए है, वे लगभग शाकाहारी थे। बडे से बडे वैज्ञानिक, विचारक, साहित्यकार और महापुरुष हुए है वे सभी शाकाहार मे विश्वास रखते थे।

मनुष्य म मानवीय गुणो की उद्भावना के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम उसे शाकाहार के मार्ग पर लाया जाय।

विद्वानो की दृष्टि मे मांसाहार

पण्डित मदनमोहन मालवीय ने मासाहार का विरोध करते हुए

२५ मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ स० ४७१

एक स्थान पर लिखा है— पहले राक्षस लोग मनुष्य का मास खाते थे, अब मनुष्य पशुओ का मास खाते हैं यह सब से बडा पाप है।

प्रो० एच० शाफ होभेन का अभिमत है कि—'मास खाने का स्वभाव यह कोई मनुष्य की मूल प्रेरणा नही है।

डाक्टर सिल्वस्टर ग्रोहास का कथन है कि— शरीर सम्बन्धी बनावट के मुकावले की विद्या सिद्ध करती है कि मनुष्य स्वाभाविक रीति से पक्व फल बीज, मेवा और अनाज के ऊपर निर्वाह करने वाला प्राणी है।

प्रो० सर चार्ल्स बेल एफ० आर० एस० का अभिप्राय है कि— मेरा ऐसा अनुमान है कि इस भाति कथन करने म जरा भी आश्चय नहीं है कि बनावट के साथ सम्बन्ध रखने पर एक दष्टान्त सिद्ध कर देता है कि मनुष्य मूल से ही फल खाने वाले प्राणी के रूप में उत्पन्न हुआ था। यह मत दांतो और पाचन करने वाल अङ्गो की बनावट पर से तथा चमडी की रचना के ऊपर से प्रधानत निर्धारित किया गया है।'

डॉ० हेग का वक्तव्य है कि— मास और शराब के सेवन से मनुष्य की स्नायुए इतनी कमजोर बन जाती है कि वह जीवन से निराश होकर आत्महत्या करने के लिए भी तयार हो जाता है। उसकी विचार शक्ति नष्ट प्राय हो जाती है। इग्लेण्ड मे ज्यादा आत्म-हत्याओ का कारण मसाहार ही है।'

डॉ० एस० टी० क्लाउटसन एम०डा० के विचारानुसार पशुओ का आहार क्षेत्र परिमित होता है। सिंह आदि ज्यादातर वनचरो को ही खाते हैं। किन्तु सष्टि का सवश्रेष्ठ प्राणी मानव—कुत्ता, बिल्ली चूहा, सप, भेड, बकरा गाय, बेल, सूअर आदि सभी को खा जाता है। इस दृष्टि से मानव गया बीता है पशुओ से भी।

श्री दयानन्द सरस्वती ने तो मासाहारियो की वृत्ति पर एक गहरी चोट करते हुए कहा— हे मासाहारियों? जब अमुक समय के बाद पशु नही मिलेंगे तब तुम मनुष्यो के मास को भी नही छोडोगे क्या?

सिक्ख धम के प्रवतक गुरु नानक साहब का फरमान है कि— कपडे पर लोहू का दाग पडने से शरीर अपवित्र माना जाता है, तो यह खून-लोहू पेट म जाने से चित्त निमल कसे हो सकता है?

पैगम्बर मुहम्मद साहब का कथन है कि—'हमने स्वर्ग से मेह बरसाया, जिससे बाग पैदा हुए और अनाज की फसल पैदा हुई और खजूरों से लदे हुए मोटे लम्बे वृक्ष उत्पन्न हुए जो मनुष्य के लिए भोजन होंगे।"[२५]

'सब प्रकार का मांस दयावान के लिए अभक्ष्य है। जो सर्व प्राणियों को अपने समान जानने वाला है, वह इन सब प्राणियों के वध से उत्पन्न हुए मांस को कैसे भक्ष्य समझेगा।'[२६]

महात्मा जरथुश्त ने भी कहा है—'प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक प्राणी का मित्र होना चाहिए। दुष्ट व्यक्ति जो अनुचित रूप से पशुओं और भेड़ों तथा अन्य चौपायों की घोर हत्या करता हैं, उसके अवयव नष्ट किये जाएँगे।[२७]

जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने चार कारण नरक गति में उत्पन्न होने के बतलाए हैं, उनमें चौथा कारण मांसाहार है। पंचेन्द्रिय प्राणी का मांस खाने वाला व्यक्ति नरक गति का बन्ध करता है।[२८]

---

२५ कुरान, सूराकाफ ६, ११।

२६ लंकावतार सूत्र।

२७ पावविरफ १७४ १६२।

२८ एवं खलु चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइत्ताए कम्मं पकरेंति,
महारम्भयाए, महापरिग्गहयाए
पंचिंदियवहेण, कुणिमाहारेण।

—औपपातिक सूत्र—१ उपाङ्ग

७ | परीक्षण की तुला पर

०

मानव जीवन के लिए – मासाहार की क्या उपयोगिता है ? यह बात आज वैज्ञानिक परीक्षण का विषय बना हुआ है । अनेक स्थानो पर इस प्रकार के परीक्षण हुए हैं और उनके जो परिणाम आये है वे यह स्पष्ट उद्घोषित कर रहे हैं कि मानव शरीर के पोषण एवं विकास के लिए मास अनावश्यक ही नही वरन् हानिकारक है ।

सन् १६०५ म लडन वेजिटेरीअन सोसाइटी की सेक्रेटरी कुमारी एफ० इ० निकलसन ने वृद्ध बालको को ६ महीने तक निरामिष भोजन कराया था । उसी समय लदन काउटी काउसिल द्वारा उतने ही बालको को सामिष भोजन करवाया गया । ६ महीन के पश्चात दोनो दलो के बालको का डाक्टरी परीक्षण हुआ । उस परीक्षण से सिद्ध हुआ कि मास खान वाले बालको की अपेक्षा शाकाहारी बालक अधिक तेज, स्वस्थ व बलिष्ठ है । तब से लदन काउटी कासिल की प्राथना पर उसकी देख रेख म नीचे वेजिटेरिअन एसोसिएसन द्वारा लदन के हजारो असहाय गरीब बालको को निरामिष भोजन देने की व्यवस्था की गई ।

डा० जोशिया आल्डफील्ड डी० सी एम ए एम आर सी, एल आर सी पी सीनियर फिजिसियन, मारगेरेट हास्पिटल ब्राह्मले न बताया है—'मास अप्राकृतिक भोजन है । इसीलिए शरीर मे अनेक प्रकार के उपद्रव पदा करता है । आजकल का सभ्य समाज इस मास के खाने से कसर, क्षय, ज्वर, पट के कीड आदि भयानक रोगो से जो एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य म फलत है बहुत—अधिक पीडित होता है । इसमे कोई—आश्चय नही कि मासाहार उन भयानक रोगो

के कारणों में से एक कारण है जो मौत के निवालों का बताते हैं।"[29]

ऐसे सिलवेस्टर, ग्रेहम डा० एस० ग्रीन्डर० जे० एच० सूटा, जे० स्मिथ, डा० ग्रा० एफ० प्रलकूट, डिक्शनरी शीन लम्बवाल ट्रूजी, थोरास, पेम्बरटन हार्टेना आदि विश्वमान्य डाक्टरों ने प्रबल शुद्ध प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि मांस, मछली के खाने से हमारा शरीर व्याधि मन्दिर बन जाता है। यहां राजयक्ष्मा, मृगी, प्लेग, वातरोग-सन्धिवात गठिया आदि तथा नासूर एवं क्षय रोग मांस खाने से उत्पन्न होते हैं और बढ़ते हैं।

इन अनुभवी डाक्टरों ने प्रत्यक्ष उदाहरणों के द्वारा यह सिद्ध किया है कि—मांस मछली खाना छोड़ देने से कई विशेष रोग स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं और मानव शरीर हृष्ट पुष्ट बन जाता है। डा० एम० ग्रेहेमन, डब्लू० एम० फूलर, डा० पामरी मरम, बर्नार्डमिन्स्टर बेलर, जेपोटर ए० जे० राइट और ज० स्मिथ इत्यादि डाक्टर स्वयं मांस खाना छोड़ देने पर यक्ष्मा, अतिसार अजीर्ण और मृगी रोगों से वियुक्त होकर स्वस्थ एवं सबल बने हैं।

अपने अनुभव के आधार पर उन्होंने अन्य रोगियों से भी मांस छुड़वाकर उन्हें स्वस्थ व तन्दुरुस्त बनाया है। कई डाक्टरों ने तो अपने परिवार में भी मांसाहार का बहिष्कार कर दिया है।[30]

डा० सीयो राई विलियम्स का कथन है कि—'सुधरी हुई मांस खाने वाली प्रजा में ८८ प्रतिशत छोटे से बड़े तक गले की बीमारियों एवं आंतों की व्याधियों से दुःख पा रहे हैं। इस कष्ट का मूल कारण मांसाहार ही है। मांस का खाते वक्त उसके छोटे छोटे रेसे दांतों की सन्धियों में भर जाते हैं, जहां वे सड़ा करते हैं। चूंकि दांत साफ करने के चालू रिवाजों से वे बाहर निकलते ही नहीं। इसके साथ साथ दांत भी सड़ते हैं और पायरिया जैसे खतरनाक दन्त रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

मि० आर्थर एण्डरवुड का कहना है कि इंगलैंड और अमेरिका आदि में जहां पर मांसाहार का प्रचलन है—वहां उन देशों में १५०

---

२९ मांसाहार विचार।
३० ,, ,,

वष पहले की अपेक्षा दात के राग दशगुने बढ गये हैं। इस सम्बन्ध म मि० थॉमस ज० रागन निग्नते हैं कि—ब्रिटिश डेन्टल एसोसिएशन की योजनानुसार स्कूल के विद्यार्थियाँ के दाँता का परीक्षण करने पर नात हुआ कि १०५०० म म ८८२५ दाँत के रागी हैं। उसका कारण नीरागी भाजन का अभाव है।

डा० पोल काटन कहते हैं कि—डाक्टरी अनुभव से यह प्रमाण सिद्ध हो चुका है कि मास की खुराक डिस्पेसिया, एपेन्डीसाइटिस आदि दर्दों को उत्पन्न करने म अग्रतम स्थान रखती है। टाइफाइड सग्रहणी इत्यादि रोगो का बढाता है और क्षय एव नासूर सदश प्राण-घातक रोगो के जन्तुओं का शरीर म प्रविष्ट होने मे सहायक होता है।

डा० कोमन्स बेली ने जाहिर किया है कि—वनमान समय म एपेन्डीसाइटिस एक सामान्य दद हो रहा है, और उसका कारण हम लोगा की खाने पीने की कुप्रथा है।" व कहते हैं कि—पशु-पक्षिया के मास मे एपन्डीसाइटिस के जन्तु हान से शरीर मे रहे हुए मास को उसका चेप लगता है।

डा० शेम्पानीजर का यह ज्ञात हुआ था कि—'रुमानिया के २०,००० रोगी जो अन्न, फल, शाक पर निवाह करते हैं, उनम से सिफ एक व्यक्ति को ही इस दद ने सताया था। परन्तु मासभक्षी रागियों में से हर २२१ मनुष्य के पीछे एक मनुष्य को यह दद हुआ। फ्रेंच सेना के सजन जनरल की हैसियत से उन्हाने यह प्रकट किया था कि फ्रेंच सिपाही मास पर निवाह करते हैं, इस कारण उन्हें एपेन्डीसाइटिस का दद विशेष रूप स हाता है और अरब लाग अन्न फल, शाक पर रहते हैं अत वे इस रोग स मुक्त रहत है।

डा० एच० एस० ब्रुअर लिखते हैं कि—मास खाने वाला की नस एव छाटी नस भर जाती है एव पतली पड जाती हैं अतएव उनका बुखार कम ज्यादा रूप म निरन्तर सताता रहता है।

मि० जे० एच० ओलीवर लिखते हैं कि—मास खाने वाला का हृदय, *अन्न फल एव शाक खान वाला के हृदय से दशगुना अधिक* जोर म धडकता है।

डा० बो मुरडन लिखते हैं कि—मास सदृश नाइट्राजन वाल पदार्थों से लीवर किडनी और ऐसे ही दूसरे भागा पर अधिक जाक

पड़ता है और इससे सन्धिवात, लीवर तथा किडनी सम्बन्धी अन्याय दर्द उत्पन्न होते हैं।

डा० किंग्सफोर्ड और हैग ने मांस भोजन से शरीर पर होने वाले बुरे असर का बहुत ही स्पष्ट रूप में बतलाया है। इन दोनों ने यह साबित किया है कि दाल खाने से जो एसिड पैदा होता है, वही एसिड मांस खाने में पैदा होता है। मांस खाने से दांतों को हानि पहुँचती है, सन्धिवात हो जाता है, यही तक नहीं, बल्कि इसके खाने से मनुष्यों में क्रोध उत्पन्न होता है।' हमारी आरोग्यता की व्याख्या के अनुसार क्रोधी मनुष्य नीरोग नहीं गिना जा सकता। केवल मांस भोजी मनुष्यों के भोजन पर विचार करने की जरूरत नहीं बल्कि उनकी दशा भी ऐसी अधम हो जाती है कि उसका ख्याल करके हम मांस खाना कभी पसन्द नहीं कर सकते।[31]

संसार के सुप्रसिद्ध विचारक टालस्टाय ने मांस भक्षण के सम्बन्ध में एक जगह अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—"मांस खाने से पाशविक प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं। काम उत्तेजित होता है, व्यभिचार करने एवं मदिरा पीने की इच्छा होती है। इन सब बातों के प्रमाण सच्चे शुद्ध सदाचारी नवयुवक हैं। विशेषकर स्त्रियाँ और जवान लड़कियाँ जो इस बात को साफ साफ कहती हैं कि मांस खाने के बाद काम की उत्तेजना और पाशविक प्रवृत्तियाँ अपने आप ही प्रबल हो जाती हैं। मांस खाकर सदाचारी बनना असम्भव है।[32]

इस सन्दर्भ में उपाध्याय श्री अमर मुनि जी के विचार भी अत्यन्त मननीय हैं—यह वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि स्वास्थ्य के लिए मांस से अधिक शाकाहार ही उपयोगी और निर्दोष है। जिन पशुओं का मांस खाया जाता है, वे पशु भी लगभग शाकाहारी होते हैं। शाकाहारी पशु का मांस यदि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए शक्तिशाली एवं लाभप्रद हो तो मांसाहारी पशुओं का मांस तो और भी लाभदायक होना चाहिए। किन्तु यह पाया जाता है कि मांसाहारी पशुओं का मांस मनुष्य के लिए उपयोगी नहीं होता, उसमें एक प्रकार का जहर भरा होता है। फिर यह बात भी ध्यान देने लायक है कि फल, अन्न

---

३१ आरोग्य साधन—गांधीजी।
३२ आरोग्य साधन—गांधीजी।

और तरकारियाँ जरदी स खराब नही होती जब कि मास तुरन्त खराब हो जाता है। उस मे कीड पड जाते हैं और बासी मास बदबू देने लगता है।[33]

उपसहारात्मक दृष्टि

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों, शरीर-चिकित्सका एव विचारका ने एक स्वर से मासाहार को मानव शरीर के लिए अनुपयोगी ही नहीं अपितु भयकर हानिकारक सिद्ध किया है। इन सब उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मास भक्षण मानवीय प्रकृति के अनुकूल नही हैं। मनुष्य की प्रकृति मूलत शाकाहार के अनुकूल है और उसी ओर नियत क्रम से चलना चाहती है। शाकाहार की मूलप्रकृति मनुष्य की मूलत अहिंसा प्रिय और कारुणिक होने का स्पष्ट और सबसे प्रबल प्रमाण है।

भारत जसा अहिंसा प्रिय देश जिस ऋषि भूमि हाने का गौरव है और कृषि भूमि हाने का भी। उस देश मे आज मासाहार का प्रचलन बडी तीव्रता के साथ बढ रहा है। जनता और वतमानशासन भी अन्धाधुन्ध इस क्रूर एव खतरनाक माग पर बढते जा रह हैं। इसके परिणाम भारत की उच्च सस्कृति के लिए ही घातक नहीं होंगे, वल्कि मानसिक, शारीरिक एव आर्थिक स्थितिया को गडबडा देंगे। मासाहार के कारण ही उन्माद, पागलपन, निद्रा क्षय आदि बीमारियाँ तजी से बढ रही हैं। इसी के मानसिक दुष्परिणाम है—निमम हत्याएँ निरजन व्यभिचार एव लागा का चारित्रिक अध पतन। देश की आर्थिक स्थिति पर ता स्पष्टत ही इसक दुष्परिणाम नजर आ रह हैं। खाद्यन्न की कमी स दश का प्रतिवप अरबा रुपये का अन्न विदेशा से आयात करना क्या पड रहा है? इसीलिए कि यहाँ कृषि के विकास पर उतना ध्यान नही दिया जा रहा है, जितना कि मास के उत्पादन के लिए शूकर-पालन, मर्गी पालन एव मत्स्य-पालन पर दिया जाता है। दश में पशुधन की रक्षा के लिए कोई विशप याजना नही बन रही है, किन्तु मासोत्पादन के लिए बड-बडे वज्ञानिक

---

३३ अहिंसा तत्व दर्शन—पृ० १७४

कट्टीखाने खोलने के लिए सरकार तत्पर हो रही है। कृषि एव पशुओं की हानि से देश को कितना बडा आर्थिक नुकसान हो रहा है, यह इसी बात से स्पष्ट हो जाता है—"एक वैज्ञानिक का कथन है कि पशुधन की बरबादी से हम एक अरब रुपय मूल्य के प्रोटीन खाद्य पदार्थ हर साल खो देते हैं।"[३४]

इस प्रकार भारत की ऋषि प्रधान संस्कृति मे मांसाहार का प्रचलन, धार्मिक, सास्कृतिक, मानसिक शारीरिक एव आर्थिक सभी दृष्टियो से हानिप्रद सिद्ध हो रहा है। अपनी देश की संस्कृति एव धर्म से जिन्हें थोडा भी अनुराग है, उनका कर्त्तव्य है कि वे आज स्वय शाकाहारी बन रहे, एव विश्व मे शाकाहार का प्रचार करने के लिए कटिबद्ध हो जाएँ। संस्कृति के लिए वह दिन गौरव का दिन होगा जब भारत का प्रत्येक निवासी मांसाहार को घृणा की दृष्टि से देखने लगेगा। वही दिन अहिंसा और करुणा की महान विजय का दिन होगा।

३४ नवभारत टाइम्स—हरीश अग्रवाल का लेख १४ अक्तूबर १९६७

छह अहिंसा के अंचल में विज्ञान

* अहिंसा और विज्ञान

रेडियो सक्रियता तथा उसके प्रभाव

विज्ञान की सहचरी अहिंसा :

* विज्ञान और उसके कार्य
* आणविक शक्ति का उपयोग
* युद्ध और अहिंसा

समस्या का समाधान

* हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ और भारत सरकार

वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रयोग

* विज्ञान पर अहिंसा की स्वर्णिम विजय

भारत की अहिंसात्मक नीति

* अणु परीक्षण प्रतिबन्ध-सन्धि
* अहिंसा और विज्ञान का मिलन

और अव्यवस्था, विशृङ्खलता, उच्छृङ्खलता और लोलुपता फल रही है। विज्ञान के द्वारा व्यक्ति ज्यों ज्यों भौगोलिक दूरी को नापता गया है, त्यों त्यों उसकी अपनी दुनिया छोटी होती गई है। वह विश्व भर में फैल कर भी विश्वात्मा नहीं बन सका। अपितु अपने ही क्षुद्र स्वार्थ के कठघरे में बन्द होता जा रहा है। आज मानव के कान विज्ञान की सहायता से इतने लम्बे होगए हैं कि हजारों मील दूर की बात सुन लेते हैं, उसकी जबान इतनी लम्बी हो गई है कि हजारों मील दूर तक बेतार के तार, रेडियो, टेलीफोन या टेलिविजन द्वारा अपनी आवाज को पहुंचा देता है। उसका मस्तिष्क इतना विराट् बन गया है कि मशीनों की सहायता से हजारों पोथे अपने दिमाग में भर सकता है। हिसाब व गणित का कार्य कम्प्यूटर मशीनों द्वारा बहुत शीघ्र कर सकता है। उसके पैर इतने लम्बे हो गये हैं कि अब वह विज्ञान के सहारे चन्द्र व मंगल लोक तक की यात्रा करने और पाताल लोक तक को छान डालने के अभियान कर रहा है। देश और काल पर इतनी विजय पाने पर भी उसका हृदय अत्यधिक संकीर्ण तथा स्वार्थपरायण बनता जा रहा है। यह विज्ञान का सबसे बड़ा अभिशाप है। मानव वैज्ञानिक उपलब्धियों पर गर्व करता हुआ उनका उपयोग मानव संहार के लिए करता जा रहा है। इस दृष्टि से विज्ञान को मानव के लिए अभिशाप कहा जा सकता है। विमानों ने, पानी के जहाजों ने, बिजली के विभिन्न उपकरणों ने, जब मनुष्य के विकाश की ओर कदम बढ़ाया तो वह उसका समूल नाश करने के लिए समुद्यत हो गया। बमवर्षक विमानों ने यारोप, जापान, कोरिया आदि में लाखों निरपराध मनुष्यों को अकाल मृत्यु की गोद में सुला दिया। नागासाकी और हीरोशिमा उस भयानक मृत्यु ताण्डव की मुँह बोलती कहानी है।

इसके अतिरिक्त उसने मानव-संहारक मशीनगनों, विषैली गैसों, विस्फोटक द्रव्यों, बमों और अन्तर्द्वीपीय क्षेप्यास्त्रों तक को मानव के हाथ में देकर उसकी आसुरीशक्ति को खुली छुट देदी है, इसका परिणाम कितना भयंकर होगा यह अनुमान लगाना भी आज कठिन है। गत दो महायुद्धों में वैज्ञानिक साधनों द्वारा जो धन और जन की महान् बर्बादी हुई है, उसमें विज्ञान का ही तो हाथ था? यह जो युद्ध में अभूत पूर्व संहार हुआ है जान माल की तबाही

हुई है, उसके लिए वास्तव मे उत्तरदायी कौन है ? विज्ञान ही। अणुबम उदजन बम एव निरूप्यास्त्रो ने तो अब मानव की सुरक्षा रमक स्थिति को अत्यधिक गभीर बना दिया है। स्वार्थान्ध राष्ट्रो ने विज्ञान के सहारे मनुष्य जीवन से खिलवाड करना शुरू कर दिया है। मानव जाति आज विनाश के कगार पर खडी है। कौन जाने भविष्य म ये आणविक अस्त्र क्या रूप दिखायेंगे ?

एक विक्टोरियन कवि का विचार यथार्थ ही है कि विज्ञान से ज्ञान की वृद्धि तो होती है किन्तु भावुक स्फूर्ति नष्ट हो जाती है।' वास्तव मे इस वैज्ञानिक युग म भावनाओ का कोई मूल्याकन ही नही होता। विज्ञान की सहायता से मानव ज्ञान के विराट कोष को तो प्राप्त कर सकता है किन्तु उसने यह नही जाना सीखा कि इसका सदुपयोग कैसे किया जाय ? विज्ञान के कारण बौद्धिक-दृष्टि से मानव भले ही उन्नत बन गया हो पर नैतिक दृष्टि म अभी वह बहुत कुछ निम्नस्तर पर खडा है। विज्ञान द्वारा मानव प्राकृतिक शक्तियो पर विजय प्राप्त कर सका है, किन्तु आत्मिक शक्तियो पर विजय नही पा सका। यह सबसे बडी दुर्बलता है मानव की और यह एक चुनौती है आज के भौतिक विज्ञान को।

यह ठीक है कि विज्ञान ने अनेक चमत्कारी कार्य कर दिखाये है, उसकी कुछ उपलब्धिया बहुत महत्वपूर्ण है। किन्तु विज्ञान की शक्तियो का आज अणु अस्त्रो के निर्माण म जो योगदान है, वह निर्माता के अहकार और गौरव की तृप्ति भले ही कर दे, किन्तु विश्व-मानव के लिए वह अनत महान सताप और विनाश का ही निमित्त बन रहा है। इन दुष्परिणामो की कल्पना से आधुनिक विज्ञान के पिता प्रो० आइनस्टाइन की आत्मा सदा सतप्त रही है।

बताया जाता है कि जब अमेरिका के तात्कालिक प्रेजिडेंट रूजवेल्ट को आणविक बम बनाने की सिफारिश करने के लिए पत्र लिखा गया था, उस पर आइस्टाइन ने भी अपने हस्ताक्षर किए थे। परन्तु जब उन बमो की विनाश लीला उनके सम्मुख आई, तब उनकी आत्मा तडफ उठी और मृत्यु के पूर्व आइस्टाइन ने उन हस्ताक्षरो को अपने जीवन की 'सबसे बडी भूल" कहा। वस्तुत अणुयुग की अणुशक्ति ने मानव को एक भयकर स्थिति मे डाल दिया है।

रेडियो-सक्रियता तथा उसके प्रभाव

आज आणविक अस्त्रजनित विकीरण रेडियो सक्रिय धूल से विश्व का वातावरण अत्यधिक दूषित बनता जा रहा है। रेडियो सक्रियता का एक चित्र देखिए।

"प्रत्येक अणु में एक छोटा-सा (न्यूक्लियस) न्यष्टि होता है। इसके चारों ओर 'एलेक्ट्रान' ऋण्य भाजाणु होते हैं। हाइड्रोजन सबसे हलका अणु होता है। इस अणु में एक ही एलेक्ट्रॉन होता है। अणु जितना ही भारी होता है, उसमें उतने ही अधिक एलेक्ट्रॉन होते हैं। रेडियो सक्रियता इन्हीं अणुओं के भीतर के न्यूक्लियस टूटने की वजह से प्रारम्भ होती है।'

दूसरी ध्यान देने की बात यह है कि अणुबमों में ही विस्फोटक शक्ति होती है। यही कारण है कि हाइड्रोजन बमों के भीतर विस्फोट के लिए एक छोटा-सा अणुबम रखा होता है। इस विस्फोट के तत्काल पश्चात ही किरण सक्रियता प्रारम्भ हो जाती है।

इन विस्फोटों से उत्पन्न किरण-सक्रियता बड़ी ही खतरनाक है, क्योंकि इस किरण सक्रिय धूल की जिन्दगी बड़ी लम्बी है। दूसरी ओर हर जीवित पदार्थ में कार्बन की मात्रा अधिक होती है, जिससे किरण-सक्रिय धूल बड़ी आसानी से प्रवेश कर अपना प्रभाव प्रारम्भ कर देती है, विशेषकर इन पारमाणविक विस्फोटों के बाद जो कार्बन १४ नामक पदार्थ उत्पन्न होता है, वह तो और भी आसानी से जीवित पदार्थों में प्रविष्ट हो जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार हर एक मेगाटन वाले पारमाणविक शस्त्र से २० पौण्ड कार्बन १४ की उपलब्धि होती है। सन् १९६१ तक के विस्फोटों से उत्पन्न कार्बन १४ का हिसाब जोड़कर ही महान् वैज्ञानिक लाइनस पालिंग ने अन्दाजा लगाया था कि भविष्य में ४००,००० विकलांग या मृत बच्चों का जन्म होगा। कार्बन १४ के अतिरिक्त स्ट्रांटियम ६०, आयोडिन १३१, और कसियम १३७ जैसे रासायनिक पदार्थ भी वातावरण में फैलते हैं। इनसे तरह-तरह की बीमारियाँ पैदा होती

हैं। —जैसे कैंसर, लूकेमियाँ, रक्त की कमी और पचिश आदि।"[1]

उपरोक्त बतलाई गई रेडियो-सक्रिय धूल वास्तव में विश्व के लिए महान घातक है। इसका प्रभाव—जल, मिट्टी, हवा, वनस्पति, ऋतु, समुद्र आदि सभी पर गिरता ही है किन्तु साथ ही मानव की शारीरिक प्रक्रिया पर भी गिरता है। मानवीय शरीर में कुछ ऐसे तन्तु हैं, जिनका होना आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य भी है। वे तन्तु जीवन की सही गति विधि को संभाल होते हैं। उनमें समय-समय पर परिवर्तन होता ही रहता है किन्तु रेडियो सक्रिय धूल का प्रभाव जरा शरीर पर गिरता है तो, उन तन्तुओं का निर्माण कार्य एक प्रकार से बन्द-सा हो जाता है। फिर तो जीवनयात्रा भी अधिक समय तक चल नहीं पाती।

रेडियो-सक्रिय धूल का प्रभाव मानव की प्रजनन शक्ति पर भी गहरा पड़ता है। इससे मानव की भावी पीढ़ी का भविष्य अन्धकारमय है। काश, इतना सब कुछ होने पर भी बड़े बड़े राष्ट्रों का ध्यान इस संभाव्य क्षति की तरफ नहीं जा रहा है, उल्टे दिनानुदिन नवीनतम परीक्षणों की घुड़दौड़ में आगे से आगे दौड़े जा रहे हैं। 'यह सच है कि रेडियोधर्मिता का प्रमाण अधिक बढ़ जाए तो सारी मानव जाति का खतरा है और इसी कारण विस्फोटों के विरुद्ध विश्व में प्रबल जनमत जाग्रत हो रहा है। अमेरिका की कमेटी फॅारनॅानवाइलेण्टऐक्शन तथा इंगलण्ड की कमेटी ऑफ हण्ड्रेड—जिसके कर्णधार लार्ड रसेल हैं—इन दो संस्थाओं ने तथा वाररेजिस्टर्स इण्टरनेशनल ने अणु विस्फोटों का बहुत विरोध किया और कर रहे हैं। शान्ति-कूच तथा अणु विस्फोट से प्रभावित व वर्जित क्षेत्रों में नौकाओं द्वारा वालण्टियरों को भेजकर विरोध करने और विस्फोटों के विरुद्ध जनमत जाग्रत करने में इन संस्थाओं ने प्रशंसनीय प्रयास किये हैं। भारत में गांधीपीसफाउण्डेशन द्वारा आयोजित एन्टी-न्यूक्लियर आर्म्स कन्वेन्शन इसी दिशा में एक कदम है। अगर रूस अमेरिका व फान्स विस्फोटों की पारस्परिक होड़ में पीछे हटने को तैयार न हुए तो कुछ समय में ही ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है जब मनुष्य जाति के लिए रेडियो धर्मिता के

---

१ पारमाणविक विभीषिका, में उद्धृत। —विक्रमादित्यसिंह

परिणाम खतरनाक सिद्ध हो जाएँगे। उस परिस्थिति में न तो रूस या अमेरिका उसके दुष्परिणामों से बच सकेंगे और न अन्य देशों की प्रजा। यह बात नहीं कि इस वस्तुस्थिति से अणु वैज्ञानिक या शासक वर्ग परिचित नहीं है। वे इन खतरों से भली-भांति परिचित हैं। पर उन्हें विश्वास है कि उस स्थिति तक पहुंचने में अभी बहुत समय लग सकता है। तब तक विस्फोटों का कार्य क्रम जारी रखकर उसकी शक्ति के विषय में अधिकतम जानकारी क्यों न प्राप्त करली जाए।"[२]

अभिप्राय यह है कि आज जिस तेजी से बड़े बड़े राष्ट्रों में परमाणु अस्त्रों की होड़ लग रही है, यदि इस पर नियंत्रण नहीं किया गया, और यों के यों ही वे जारी रहे तो वास्तविक युद्ध से होने वाला विश्व विनाश का खतरा भले ही प्रत्यक्षीभूत न भी हो, किन्तु प्रतिस्पर्धा के इन परीक्षणों के मन्थन से निकलने वाली रेडियो-मिश्रित धूल के कालकूट से मानव जाति के महानाश की सम्भावना तो है ही।

विज्ञान की सहचरी अहिंसा

विनाश के कगार पर खड़ी मानवता को बचाना एक बड़ी समस्या है। इसके लिए हम एक ऐसी नियंत्रित शक्ति की खोज करनी है जिसके द्वारा मानवता का बचाव किया जा सके। इसके लिए अनन्त ज्ञान शक्ति संपन्न महापुरुषों ने एक दिशा सुझाई है और वह है अध्यात्म की दिशा, जिसके सहारे राम, बुद्ध, महावीर तथा ईसा जैसे प्रबुद्ध आत्माओं ने विश्व पर विजय प्राप्त की थी। वे जीवन की आखिरी घड़ियों तक विश्व को अहिंसा, दया, प्रेम, क्षमा आदि का सन्देश देते रहे हैं। आज उन्हीं सन्देशों को उनके अनुयायियों को पुन जीवन में जागृत करने की आवश्यकता है, तथा विश्व के लिए एक शान्ति का अजस्र-स्रोत खोज निकालना है।

वर्तमान में मानव को जितनी भौतिक ताकतें व शक्तियां उपलब्ध हुई हैं, उनसे कई गुनी अध्यात्मशक्ति की आवश्यकता है। इसके अभाव में निरी भौतिक शक्ति जीवन नाशक ही सिद्ध होगी।

२ अणुयुग और हम पृ० २१। —दिलीप

हवाई जहाज के अन्दर दो यन्त्र होते हैं। एक यन्त्र हवाई जहाज की रफ्तार को घटाता-बढाता है और दूसरा यन्त्र दिशा का बोधक होता है। जिससे चालक हवाई जहाज की गति विधि को ठीक से सभाले रहता है। इसी प्रकार विश्व म दो शक्ति रूप यन्त्र अविराम गति से काम कर रहे हैं। एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। भौतिकयन्त्र विविध सुख-सुविधा व कार्यों की रफ्तार बढाता है, और उसके वेग को कम ज्यादा करता है तो अध्यात्मयन्त्र दिशा दर्शन देता है हानि-लाभ का परिज्ञान करवाता है और मजिले मक्सूद तक पहुँचाने का प्रयास करता है। इसी अध्यात्मशक्ति (अहिंसा) के द्वारा हम विश्व विनाशक-तत्व के निर्माताओं का मन मस्तिक बदल सकते हैं और उनके प्रयासो की अनुपयुक्तता को समझा सकते हैं। इस सम्बन्ध मे एक बार विनोबाजी ने अपने सामयिक प्रवचन म कहा था—

'विज्ञान अहिंसा की शक्ति है। अहिंसा को हक है कि शक्ति का उपयोग करे, चाहे आज वह दूसरो के पास क्यो न पडी हो। अहिंसा के साथ यदि विज्ञान की शक्ति जुड जाएगी तो दुनिया मे स्वर्ग लाने की जो बात ईसामसीह ने कही है, उस स्वर्ग को हम साकार कर सकते हैं। अगर वह शक्ति विरोधियो के हाथ मे रही तो, भले ही उसका यहीं जन्म हुआ हो, वह कुल दुनिया को खत्म कर देगी।"

आज अणु अस्त्रो की सहारकशक्ति का प्रतीकार तभी किया जा सकेगा जब विज्ञान को अहिंसा के साथ सलग्न कर दिया जाए। वरना विज्ञान ने आज इतनी प्रबल शक्ति का सचय कर लिया है कि वह अन्तर्द्वीपीय क्षेप्यास्त्र से एक स्थान पर बैठे रहकर दुनिया के किसी भी भाग को एक बटन दबाकर खत्म कर सकता है। मेगाटन बम से कई गुना अधिक भयकर बम तयार हो चुके हैं। उनके सम्मुख हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये गये बम तो नगण्य हैं।

डूम्सडे मशीन तो विश्व म कयामत की रात ही बुलाने की क्षमता रखती है।

यदि आज के युग मे मानवजाति के वास्तविक त्राण-बीज ढूढ़ जाए तो वह अहिंसा म ही उपलब्ध हो सकते है।

साराश यह है कि विज्ञान जहाँ नवीनतम आविष्कारो के द्वारा प्रकृति के रहस्यो का समुद्घाटन करता है, तथा प्राणविघ शक्ति के

परीक्षणों से अपना अनुभव बढाता है, वहाँ अहिंसा उनके द्वारा होने वाले विनाशों को रोकने का सुप्रयास करती है। अत उक्त दृष्टि से अहिंसा को विज्ञान की सहचरी बनाया जाए। विज्ञान की शक्ति को अहिंसा के निर्देश पर ही प्रयोग किया जाए। विज्ञान और अहिंसा का साहचय ही मनुष्यजाति के त्राण का एक मात्र मार्ग है।[1]

१ विशेष विवेचन के लिए देखें, लेखक की 'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा'।

२ | विज्ञान और उसके कार्य

दिन और रात की तरह विज्ञान के दो पक्ष हैं—एक कृष्ण पक्ष, दूसरा शुक्ल पक्ष। कृष्ण पक्ष—विध्वस का प्रतीक है और शुक्ल पक्ष—सृजन का। सृजन पक्ष मे विज्ञान ने सपूर्ण विश्व को बदल दिया है। विज्ञान ने जनसमाज के लिए भोगोपभोग की वस्तुओ का निर्माण किया, जीवन के स्तर को ऊपर उठाया, सभ्यता और सस्कृति मे परिवर्तन किया। इतना ही नही, विज्ञान द्वारा आज मानव समुद्र के वक्षस्थल पर मछलियो की भाति विचरण कर रहा है। आकाश मे पक्षियो की तरह अबाध गति से उडानें भर रहा है, और भूतों की तरह पृथ्वी पर सरपट चाल से चल रहा है। रेडियो, टेलीफोन, टेली विजन, मोटरकार रेल हवाई जहाज आदि विज्ञान की मौलिक देन हैं।

विध्वसपक्ष मे युद्ध के लिए विज्ञान ने बन्दूक से लेकर अणु और उद्जन बम तक साधन प्रदान किये हैं।

आज प्रत्येक देश की सभ्यता के समस्त उपकरण विज्ञान की छाया मे पनप रहे हैं। आज प्रत्येक राष्ट्र के बीच निकटता स्थापित करने का सम्पूर्ण श्रेय विज्ञान का है। द्रुतगामी साधनो ने विभिन्न देशो मे सामीप्य स्थापित कर यह सिद्ध कर दिया है कि कोई भी राष्ट्र या उसका प्रमुख व्यक्ति शक्ति सम्पन्न क्यो न हों, पर वह दूसरो की उपेक्षा करके अपना राष्ट्रीयकार्य सम्पन्न नही कर सकता। इसी का वह उज्ज्वल निष्कर्ष है कि प्रत्येक क्षेत्र मे दिनानुदिन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित होते जा रहे हैं। इस प्रकार विज्ञान के सर्वांगीण व सर्वदेशीय विकास ने मनुष्य के श्रम की बचत और समय की उपयोगिता बढाई है यह विज्ञान का प्रथम शुक्लपक्ष

हुआ। इस शुक्लपक्ष की चकाचौंध मे विज्ञान के द्वितीय कृष्ण पक्ष को भुलाया नही जा सकता।

आणविक शक्ति विज्ञान की अभूतपूर्व देन है इसमे कोई शक नही। किन्तु जब इसका उपयोग महाविनाश के लिए होता है, तो दिल दहल उठता है। अणुबम व उदजन बम की महाविनाशकारी लीला मानव के समक्ष आने पर भी वज्ञानिको व राजनेताओ की दृष्टि मे बहुत कम परिवर्तन देखा गया है। आज उदजन बम से भी अधिक शक्तिशाली नाईट्रोजन बम के निर्माण मे वैज्ञानिको के उवर मस्तिष्क लगे हुए हैं।

प्राचीनकाल की तरह आज तोप, तलवार, बन्दूक आदि से लडने की आवश्यकता नही, और न एक-एक व्यक्ति पर भिन्न भिन्न रूप से प्रहार करने की ही आवश्यकता है। विज्ञान ने लाखो मनुष्यो को एक साथ खतम करने की शक्ति सपादित कर ली है। वज्ञानिको के अभिमत से प्रथम विश्वयुद्ध म एक सनिक को खत्म करने के लिए औसतन बन्दूक की दस हजार गोलियाँ या तोप के दस गोले छोडने पडत थे। परन्तु आज तो विश्व के बडे से बडे नगर या ग्राम को कुछ ही क्षणो म भूमिसात् किया जा सकता है, और सिर्फ एक ही बम स। हिरोशिमा और नागासाकी को विध्वस करने वाले अणुबमो से भी सहस्रगुण अधिक शक्ति-सम्पन्न बम तथा दूरमारक राकेट अस्त्र तैयार हो चुके है। इतने पर भी वज्ञानिक सतुष्ट प्रतीत नही होते। वे इस समय भी विश्व मे एक भयकर प्रलयरूप 'कोबाल्ट' बम तयार करने की चिन्ता मे है। जिसके सम्बन्ध मे यह अनुमान लगाया जाता है कि यह आणविक तथा उदजन बमो से भी कही ज्यादा भयकर व खतरनाक सिद्ध होगा।

अभी इन्ही दिनो म पश्चिमी इण्डियाना की एक पहाडी पर एक विशाल कारखाने म अमेरिका ससार का सबसे भयानक सहारक अस्त्र तैयार कर रहा है। यह अस्त्र एक स्नायु-गैस है। जिसमे न कोई गन्ध है और न कोई स्वाद और वह एक प्रकार से दिखलाई भी नही पडता। लेकिन उस की एक बूद भी सास के द्वारा चमडी के भीतर चली जाए तो चार मिनट मे मनुष्य के लिए काल बन सकती

है। बतलाया जाता है कि कारखाने में यह गैस राकेटों जमीन पर बिछाई जाने वाली सुरंगो और तारपीडो के गोलों में भरी जा रही है। आज मानव के पास इतनी शक्ति एकत्रित हो गई है कि वह कुछ बूंदों में शत्रु शक्ति का स्वाहा कर सकता है।

'बर्नाल ब्रिटन का एक वैज्ञानिक है, उसका कहना है कि युद्ध में काम आने वाले एक राकेट पर आज जितना खर्च होता है उतने खर्च से ५०० परिवारों के लिए ऐसे सुन्दर घर बनाये जा सकते हैं, जिनमें वे सब तरह की सुख-सुविधाओं के साथ आराम से रह सकते हैं। और, अणुअस्त्रों वाले देशों में से हर एक देश ने ऐसे तो न जाने कितने राकेटों के अम्बार खड़े कर रखे हैं। उनके फौजी गोदामों में इन अस्त्रों के लिए अब जगह नहीं बची है।

पारस्परिक शत्रुता और अविश्वास की दीवारों के अन्दर बन्द करके रखी गयी इस शक्ति को नहरों के जरिये प्यासे खेतों की ओर बहाया जा सके, तो एक-दो पीढ़ी के अन्दर ही मनुष्य पृथ्वी पर स्वर्ग खड़ा कर सकता है? लेकिन आज की महानशक्तियाँ तो किसी दूसरे ही फेर में पड़ी हैं और देश की रक्षा के नाम पर उसके सर्वनाश की ही योजनाएँ बनाती जा रही हैं।'*

इस प्रकार अणुशक्ति ने विश्व के सामने विशाल पैमाने पर विकास के द्वार खोल दिये हैं। पर इतना मैं अवश्य कहूँगा कि इनके द्वारा होने वाले हानि और लाभ का उत्तरदायित्व आणविक शक्ति के निर्माता मूर्धन्य वैज्ञानिकों पर ही रहेगा।

XX

---

* हमारे युग का भस्मासुर अणुबम। —सुमन्त गाँधी

३ | आणविक-शक्ति का उपयोग

•

'जब कभी विज्ञान किसी नई चीज का आविष्कार करता है असुर उस पर झपट पड़ते हैं, जब कि बेचारे देव इस चर्चा में फँसे रहते हैं कि उसका अच्छे-से अच्छा उपयोग क्या हो।"

—एलबर्ट आइंस्टाइन

विज्ञान का उपयोग मानव की सद् असद् बुद्धि पर निर्भर है। यदि अब व्यक्ति अपने और संसार के जीवन को शान्तिमय देखना चाहता है तो वह उस का उपयोग उच्चादर्शों में, सेवा या जनता जनार्दन के हित-कार्यों में करेगा। यदि मानव स्वार्थाभिभूत होकर अपनी ही सुखैषणा के लिए विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों में, जनसंहार के कामों में उसका उपयोग करेगा, तो विश्व में अशान्ति की भयंकर आग फैल जाएगी, और एक दिन उस आग की लपटें नागिन की तरह लपलपाती उसके द्वार तक भी आ पहुँचेंगी। ऐसी स्थिति में मानव को अपनी विवेक ज्ञानमयी बुद्धि से काम लेना होगा।

उदाहरणार्थ रेडियम संसार की सबसे मूल्यवान् धातु है। वर्तमान में रेडियम की किरणों द्वारा कई असाध्य रोग, और गंभीर घाव ठीक किये जाते हैं। कहते हैं इसमें बहुत गर्मी होती है। यदि इसका दुरुपयोग किया जाता तो आज विश्व तबाह भी हो सकता था, पर वैज्ञानिकों ने इसकी शोध करके इसका सदुपयोग करना सीख लिया यह कितना सद्भाग्य है मानव जाति का। वैज्ञानिकों का अभिमत है—एक परमाणु का विस्फोट किया जाए तो उससे इतनी अधिक तापीय शक्ति का सृजन होता है जिसे हम बड़े से बड़े रचनात्मक या विध्वंसात्मक कामों में लगा सकते हैं। वाष्प या बिजली की शक्ति

की भाँति अणुशक्ति स्वत हानिकारक नही होती। मनुष्य चाहे इसे रचनात्मक काय मे लगाए, चाहे विध्वसात्मक काय म। रचनात्मक कार्यों म इससे अद्भुत काय परिणाम निकाले जा चुके हैं। वज्ञानिको का कथन है कि आत्यंतिक साधारण परमाणुशक्ति से हम बडे-बडे नगरो के बिजली घर महीनो तक चला सकते हैं। आणविक-शक्ति की सहायता से गाडिया तथा विमान अकथनीय तीव्र गति से चल सकेंगे। आज भी ससार अत्यन्त निकट आ चुका है और आणविक शक्ति के इन उपयोगो से तो और भी निकट आ जाएगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि आणविक युग मे कुछ ही घटो मे ससार के चारो ओर घूमा जा सकेगा। निकट भविष्य मे अणुशक्ति चालित विमानो से चन्द्र लोक की यात्रा भी बहुत आसानी से की जा सकेगी। स्पुतनिक इसके साक्षी है। स्वल्प आणविकशक्ति से भी बडे-बडे कल-कारखानो का चलाया जा सकेगा, जिन्हे आजकल चलाने मे पर्याप्त बिजली व्यय होती है। वज्ञानिक तो यहा तक स्वप्न देख रहे हैं कि *एक दिन वह भी आएगा, जब परमाणु शक्ति द्वारा रोग,* बुढापा और मृत्यु पर भी विजय प्राप्त की जा सकेगी। अणु म इतनी शक्ति है कि एक पौंड यूरेनियम का ईधन १५०० टन कोयलो के बराबर शक्ति रखता है। अणु म इतनी शक्ति है कि अगर इसका सद्भावना से ठीक रूप म प्रयोग किया जाय तो धरती स्वग बन सकती है। वज्ञानिक प्रगति से मानव का यह तो पता लग चुका है कि अणु म रचनात्मक शक्ति भी विद्यमान है और उसका सवजनोपकारी कार्यों मे प्रयोग किया जा सकता है।

विज्ञान का अन्य श्रेष्ठतम देनो का चित्रण 'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' नामक लेखक की पुस्तक म सविस्तार किया जा चुका है। यहा तो सिफ यही देखना है कि विज्ञान की भिन्न भिन्न देनो का स्वाथ-जन्य, लोभ-जन्य, अथवा मानव सहार के रूप मे प्रयोग न हो, मानव हित और स्वहित सोचकर मानव कल्याण और स्वकल्याण का सामञ्जस्य करते हुए विज्ञान का प्रयोग हो तो अहिंसा की शक्ति निखर सकती है। अहिंसा विज्ञान के साथ ओत प्रोत होकर मानव जीवन को चमका सकती है।

आज के युग मे विज्ञान को जो देश सृजनात्मक कार्यों म लगायेगा, उसके साथ अहिंसा और मानवता का गठबन्धन करके चलेगा, वही

देश उन्नत और और सभ्य कहलायेगा। भारत सदा से ही अहिंसा का हामी रहा है और इसके सामने भी अणुशक्ति का शान्तिपूर्ण कार्य म प्रयोग करने की समस्या थी। पर भारत ने गत दशक मे अणु विज्ञान के क्षेत्र मे ठोस अनुसधान काय किया है, सावधानी से, किन्तु द्रुत गति से। भारत सरकार ने यहा के वैज्ञानिको को प्रोत्साहन देना शुरू कर दिया है, ताकि वे भी शीघ्रातिशीघ्र इसे अहिंसक बुद्धि से रचनात्मक कार्यों मे प्रयुक्त कर सकें। अगर वज्ञानिको का वतमान ध्वसोन्मुखी दृष्टि-कोण बदल जाए तो शीघ्र ही समस्त राष्ट्रो मे शान्ति की सुरसरी प्रवाहित हो सकती है।

४ | युद्ध और अहिंसा

●

यह तो सुविदित है कि संसार दो विश्वयुद्धों की विभीषिका तो अपनी आंखों से देख चुका है। अब तीसरे विश्वयुद्ध के नगाड़े बजने प्रारम्भ हो रहे हैं। जनता युद्ध से भयाक्रान्त है। आज राष्ट्रों का सामान्य तनाव भी विश्वयुद्ध की आशंका को जन्म देने वाला है। न जानें मानव का बौद्धिक सन्तुलन कब गड़बड़ा जाए और कब संसार प्रलय के मुख में चला जाए? विगत दो महायुद्धों का परिणाम हमारे सामने हैं। यदि तृतीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया तो, इससे सम्पूर्ण विश्व प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। इसलिए संसार के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने मिलकर विश्व को साफ शब्दों में चेतावनी दी है—"या तो मानवजाति को मिटाना पड़ेगा या युद्धों को तिलाञ्जलि देनी होगी।" सचमुच आणविकशक्ति व अणु आयुधों से सुसज्जित राष्ट्रों के लिए यह एक चुनौती है। आज उन्हें गहराई से इस पर मनन करना है। यदि मानव जाति को बनाये रखना है, तो युद्धों से उपरत होना ही पड़ेगा। अन्यथा युद्ध का जो भयंकर परिणाम है वह उनके सामने है ही।

प्रो० आईनस्टाइन से किसी ने पूछा था कि—आपके विचार से तृतीय विश्वयुद्ध कौन से शस्त्रों से लड़ा जाएगा?' तब उन्होंने उत्तर देते हुए कहा—"मैं तृतीय विश्वयुद्ध के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता, हां इतना अवश्य कहूंगा कि उसके बाद भी कोई युद्ध हुआ तो वह अवश्य ही लाठियों से लड़ा जाएगा।" उक्त कथन से यही प्रतिभासित होता है कि यदि तृतीय विश्व युद्ध हुआ तो वर्तमान सभ्यता और अब तक की हुई प्रगति का विनाश अवश्यभावी है।

आज के वैज्ञानिकों के उर्वर-मस्तिष्क अधिक से अधिक विनाशक तत्वों के निर्माण में संलग्न है। मार्शल बुल्गानिन तथा ख्रुश्चेव ने तो यहाँ तक घोषणा कर दी थी कि 'अब हवाई जहाज व जेट विमान केवल अजायबघर की सामग्री रह गई है। आनेवाली पीढ़ियाँ अजायबघर में जाकर कौतूहल वश देखेंगी कि किसी जमाने में हवाई जहाजों से लड़ाई होती थी।" तात्पर्य यही है कि राकेट जैसे विनाशक तत्वों से आज विश्व को बचाना एक समस्या बन गई है। यदि विश्व को निर्भय बनाना है तो वह अणुबम व राकेट से नहीं, किन्तु अहिंसा के द्वारा ही बनाया जा सकता है।

वर्तमान में भारत और पाकिस्तान का तनाव भी विश्व के लिए खतरे से खाली नहीं है। इसमें दोनों विकासोन्मुख देशों की क्षति की सम्भावना है। विगत युद्ध के परिणामों से दोनों को सावधान होना है और सोचना है। यदि इस तनाव को समाप्त करने में अहिंसाशक्ति का यथोचित उपयोग किया गया तो दोनों राष्ट्र भयंकर सभाव्य क्षति से बच सकते हैं। यह सुविदित है कि युद्ध में अब तक किसी को शान्ति नहीं मिली। जिसने बड़े शौर्य के साथ लड़ाईयाँ लड़ी, कीट-पतंगों की भाँति जन संहार किया, अन्त में उनका हिंसा-पीडित हृदय यही कहता रहा— 'युद्ध बहुत बुरा है—तन, धन और जन आदि सभी दृष्टियों से युद्ध बुरा है।' प्रियदर्शी अशोक ने कलिंग की लड़ाई लड़ी। उसमें लाखों व्यक्ति मारे गये। सहस्रों माताओं की गोद सूनी होगई। सहस्रों रमणियों का सुहाग लुट गया। किन्तु क्या अशोक की आत्मा को वास्तविक शांति प्राप्त हुई? नहीं! कलिंग विजय के बावजूद भी अशोक की आत्मा में एक तड़फ थी, एक टीस थी। वह टीस और तड़फ अशोक को उद्वेलित बना रही थी। हतप्रभ-सा होकर अशोक चिंतन के अनन्त सागर में डुबकियाँ लगाता हुआ सोचता रहा—युद्ध लड़कर मैंने क्या पाया है? इस विजय की उपलब्धि क्या है? जो व्यक्ति युद्ध में मारे गये उनके भी कई प्रिय जन स्वजन होंगे? उन पर क्या बीती होगी? उनकी वियोगाग्नि में वे सब किस प्रकार तड़फ रहे होंगे? उनके हृदय से मेरे प्रति कितने अभिशाप के शोले उठते होंगे? इन्हीं विचार-तरंगों से तरंगित बने अशोक का हृदय भर गया, और हृदय की वह अनन्त वेदना चक्षुओं की खिड़की में अश्रु बनकर बाहर निकल पड़ी।

अन्ततोगत्वा अशोक युद्ध से सदा के लिए विरत हो गया और अहिंसा भगवती की प्रशात गोद की शरण ग्रहण कर ली। अशोक का युद्ध जनित अन्तर परिताप आखिर अहिंसा की शीतल छाया म आने से ही शान्त हुआ।

समस्या का समाधान

●

बहुत से व्यक्तियो का यह दृष्टिकोण है कि राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय समस्या पर हिंसा के द्वारा ही काबू पाया जा सकता है। किन्तु वस्तु स्थिति इससे सवथा विपरीत है। हिंसा से समस्या सुलझती नही, बल्कि अधिक उलझती है। राख के नीचे दबी हुई आग किसी भी समय प्रकट हो सकती है, और जान माल की तबाही का कारण बन सकती है। बस हिंसा से एक बार समस्या सुलझी-सी प्रतीत होती है, किन्तु वास्तव म वह पुन दुगुने वेग से उभर कर सामने आती है, जो अत्यन्त भयकर साबित होती है। हिंसात्मक युद्ध से किसी प्रबल शक्ति को एकबार परास्त किया जा सकता है, पर दूसरे ही क्षण परास्त हृदय मे खून की पिपासा जागृत हो उठती है। और वह तीव्र वेग के साथ अपने शत्रु को पराजित करने के लिए मचल पडती है 'इस प्रकार हिंसा-प्रतिहिंसा की एक लम्बी शृंखला-सी चल पडती है। वस्तुत हिंसा प्रतिहिंसा की शृंखला ही शस्त्रो के विकास का इतिहास है। पत्थर से गदा, गदा से तीर, और तीर म आग्नेय अस्त्रो की उत्पत्ति हुई। समय आने पर इन्हीने और भयकर रूप म ताप और मशीनगन का ज म दिया, और उनका प्रतीकार हुआ अणुबम से। प्रतिक्रिया यही न रुकी, एक पग आगे बढकर हाइड्रोजन का आविष्कार भी सामने आगया। यद्यपि मानव वश के विनाश के लिए तो जो कुछ मौजूद है वही काफी है, किन्तु कौन कह सकता है कि यह हिंसात्मक प्रतिक्रिया यही समाप्त हो जायेगी ? जब एक ड्राम 'बाटूलीनस' जहर की एक शुद्ध मात्रा दो करोड आदमियो को एक साथ नष्ट कर सकती है जैसा कि सन् १६४७ मे जनरल एसेम्बली के सामने पेश किये गये मेमोरेण्डम मे कहा गया है तो अब मानव-वश के सुरक्षित भविष्य की

आशा करना भी व्यर्थ है। जब तक कि युगधारा नही बदलती ।"[५] नये से नये और तीव्र से तीव्रतर शस्त्रो का आविष्कार होने पर भी मानव के समक्ष युद्ध की समस्या ज्यो की त्यो खडी है। यह समस्या यदि कभी सुलझगी तो अहिंसात्मक शक्ति से ही सुलझ सकेगी। अतएव अब अहिंसा की दिशा मे कदम बढाने होगे। भले ही प्रारम्भ म उसमे विजय-चिन्ह परिलक्षित न हो, पर अन्त मे अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। बशर्ते कि दृढ आत्म विश्वास व धैर्य के साथ आगे बढा जाए।

एक बार गांधी जी से किसी ने कहा—"हिटलर दया नही जानता। आपकी आध्यात्मिक-पद्धति उसके सामने कामयाब नही होगी।' इस पर गांधी जी ने अत्यन्त गभीरता से उत्तर देते हुए कहा—"आप सही हो सकते है, आज तक के इतिहास मे कोई ऐसा प्रमाण नही जब कि किसी देश ने अहिंसात्मक प्रतीकार किया हो। यदि हिटलर पर मेरे कष्ट सहन करने का कोई प्रभाव नही पडता तो कोई बात नही। इसके लिए मुझे कोई मूल्यवान चीज नही खोनी पडेगी, क्योकि आत्म सम्मान ही सबसे अधिक रक्षणीय वस्तु है, और वह हिटलर की दया के अधीन नही। लेकिन अहिंसा पर विश्वास करने वाला होने के नाते मै इसकी शक्तियो को सीमित नहीं मानता। आज तक हिटलर और उसके समान अन्य विजेताओ का अनुभव इसी पर आधत है कि लोग शक्ति के सामने झुक जाते हैं। शस्त्रहीन स्त्री, पुरुष और बच्चो के द्वारा किया गया द्वेष रहित अहिंसात्मक प्रतिरोध उन के लिए एक नया अनुभव होगा। कौन कह सकता है कि उनका स्वभाव उच्च एव मानवीय शक्तियो से परिचित नहीं, या उनका उन पर कोई असर नही पड सकता ? उनमे भी तो वही आत्मा है जो मुझ मे है।"[६]

साहसी व आत्म निष्ठ व्यक्ति के लिए कोई भी कार्य दुर्लभ नहीं है। अहिंसा विश्व शांति का अमोघ अस्त्र है। यदि शांति की पुकार करने वाले राष्ट्र वास्तविक शांति चाहते हैं और युद्धो से उपरत होना

५ गांधी और विश्वशांति, पृ० १५। —देवीदत्त शर्मा

६ देवीदत्त शर्मा द्वारा गांधी और विश्व शांति, में उद्धृत पृ० ४०

चाहते हैं तो उन्हें अहिंसा को अपनाना ही होगा। एक विचारक के शब्दों में—"यदि मनुष्य जीवन चाहता है, मृत्यु नहीं, वह विकास चाहता है, अवरोध नहीं, वह संगठन चाहता है विघटन नहीं, तो अहिंसा आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।" समस्त राष्ट्रों की आधारशिला अहिंसा है। इसी के आधार पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विकास एवं उत्कर्ष संभव है।

५

हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ और भारत सरकार

भारत कितना महान दश है ! ह्यू एन-साग, फाहियान, मेगस्थनीज आदि विदशी विद्वानो ने अत्यन्त गौरव के साथ इसका गुणगान किया है। इस धरती पर बडे-बडे तीर्थंकर, सत और पैगम्बर हुए हैं, जिन्होने अहिंसा और अनेकान्त जसे महान् सिद्धान्त प्रदान किये, पर खेद है कि आज इस देश मे भी अहिंसा की छीछालेदर हो रही है। देश के बडे बडे राष्ट्र नेताओ व अधिकारी पुरुषो के लेखो और भाषण मे अहिंसा है, पर जीवन का मन्दिर उससे सूना-सूना है। अहिंसा के नाम पर हिंसा का नग्न-ताण्डव हो रहा है। एक ओर भारत जहाँ भाखरा नागल प्रोजेक्ट, दामोदर घाटी बाध, हीरा कुण्ड आदि बाध बाध कर तथा विविध कल कारखाने खोलकर विकास की ओर अग्रसर हो रहा, वहाँ दूसरी ओर विशाल वध शालाएँ, (कट्टी खाने) मुर्गी-उद्योग, मत्स्य-उद्योग आदि हिंसात्मक प्रवृत्तिया बढाकर अपनी पावन आर्यसस्कृति का नाश भी कर रहा है। इसमे सन्देह नही, महात्मा गाधी की अहिंसा नीति म पनपने वाला भारत पूर्वापेक्षा आज अधिक मासाहार की ओर झुका जा रहा है। अहिंसा आर्यसस्कृति का प्राण है। इस विषय पर लच्छेदार भाषण देने वाले भी मासाहार की उत्तेजक प्रवृत्तिया मे सहयोगी बन रहे हैं। अतीत के पृष्ठो से ज्ञात होता है कि विदेशी यात्रियो ने भारत की यात्रा करने के पश्चात जो अपने मौलिक सस्मरण व अनुभव लिखें हैं, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान फाहियान जिसने

स० ३६६ से ४१४ तक भारत की डायरी मे लिखता है—"चाण्डालो के सिवाय कोई भी व्यक्ति किसी भी जीव का वध नहीं करता है। न कोई मद्यपान ही करता है और न कोई जीवित पशुओ का व्यापार ही करता है।"* इसी प्रकार सुप्रसिद्ध घुमक्कड़ रोम निवासी मार्को पोलो ने भारत वर्ष की यात्रा की थी। वह अपनी डायरी मे अपने यात्रा-संस्मरण इस प्रकार उट्टकित करता है— चाण्डालो के सिवाय कोई भी व्यक्ति मास आदि नही खाता है। कोई भी व्यक्ति जीवो को हत्या नही करता। यदि किसी को पशुमास की जरूरत हो, तो उसे दूसरे देशो मे विदेशियो को बुलवाकर पशुवध के लिए नौकर रखना पड़ता है।" यह है हमारी आर्य-संस्कृति की उच्चता ? आज कहा है यह उच्चता और पवित्रता ? वह तो बेचारी नर पिशाचो की डाढ के नीचे आकर पिस गई है। आज उसका अवशेष भी दिखलाई नहीं पड़ता है।

वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रयोग

●

भारतीय चिन्तन का मूलभूत तथ्य यह रहा है कि जन-जीवन में अहिंसा अधिक से अधिक बढती रहे पनपती रहे। किन्तु खेद है कि आज के मानव ने अहिंसा के उच्चादर्श को भुला दिया है। अपनी स्वार्थ लिप्सा के झुरमुट मे पड़कर वह दानवीय-लीला का खुला प्रदर्शन कर रहा है। आश्चर्य तो इस बात का है कि आज भारत सरकार स्वय मासाहार पर बल देकर हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ बढा रही है। पशुओ को कत्ल करने के लिए वैज्ञानिक यन्त्रो का प्रयोग करने का सोचा जा रहा है, देवनार का कत्लखाना प्रभृति जिसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इसके लिए भारतीय जनता का प्रबल विरोधात्मक स्वर उठ रहा है, किंतु सरकार का उसकी कोई परवाह नही है। एक दिन वह था जब भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध तथा प्रेम के पुजारी ईसा के धर्म सन्देशो का समस्त एशिया मे प्रचार किया जाता था, किन्तु आज भारतीय लोग बन्दरो, कुत्तो और चूहो को मारने मे वीरता दिखा रहे हैं। हजारो लाखो बन्दर प्रतिवर्ष

७ भारत वर्ष का इतिहास —जी० टी० व्हीलर

विदेशों में निर्यात किये जाते हैं। बतलाया जाता है कि इन मन्दरों का रक्त मशीनों द्वारा खींच लिया जाता है। कई व्यक्तियों ने इनकी इस निर्मम हत्या का अपनी नेत्रों से देखा है। फिर भी निर्यात करने वाले मानवों का रागी हृदय परिवर्तित नहीं हुआ। हमारे परिताप की सीमा नहीं रहती जब हम देखते हैं कि भारत सरकार गाय जैसे उपयोगी पशु के वध को भी विदेशी मुद्रा उपार्जित करने के प्रलोभन में फँस कर प्रोत्साहन दे रही है। प्राचीन काल से ही भारत वर्ष में गाय का विशेष महत्त्व रहा है। कृषि प्रधान इस देश के जन जीवन का यह गाय मुख्य आधार रही है। देश की अधिकांश जनता गौ को माता तथा देवता मानकर उसकी पूजा करती है। उसके प्रति एक विशेष आदर भावना रखती है। इसका वास्तविक कारण उसकी अत्यधिक उपयोगिता ही है। वह दूध, दही, घृत जैसे जीवन के लिये अनिवार्य पदार्थों की देन वाली है। कृषि की रीढ़ है। श्री कृष्ण ने गौओं को बराबर 'गोपाल' पद प्राप्त किया। जैन शास्त्रों में उल्लेख है कि भगवान् महावीर के श्रावकों के गोकुल में हजारों गायें पाली थीं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में गौ का विशिष्ट स्थान निर्विवाद है और वर्तमान काल में भी उसकी उपयोगिता से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

एक समय इस देश में दूध दही की नदियाँ बहती थी, गोधन विनाश के कारण आज वह अमृत दुर्लभ हो गया है। मध्यम श्रेणी के गृहस्थ अपने बाल बच्चों को भी पर्याप्त दूध घी नहीं दे पाते। गौ को माता मानकर पूजने वाले देश में आज बच्चे दूध के लिए तरसते हैं, मक्खन के तो दर्शन ही कहाँ? जहाँ गौ-मांसभक्षी कहे जाने वाले देशों में दूध की नदियाँ बह रही हैं। क्या यह भारत के निवासियों के लिए शर्म की बात नहीं है? पिछले दिनों में जो संसार के बाजारों के भाव प्रकाशित हुए उसमें बताया गया है कि देहली की अपेक्षा लन्दन में दूध और मक्खन अधिक शुद्ध और अधिक सस्ता मिलता है। भला जिस देश में प्रतिदिन तीस हजार गायों के गले पर छुरी चलाई जाती हो, वहाँ इस प्रकार की दीन-दशा पैदा न होगी? आश्चर्य तो यह है कि भारत की प्रजातांत्रिक सरकार इस जघन्यतम व्यवसाय को बढ़ावा देने की योजना में संलग्न है। पिछले कुछ समय से भारतीय सन्त-महात्माओं का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। उन्होंने गौ-वध निरोध के लिये प्रबल आन्दोलन

आरम्भ किया है। पुरी के जगदगुरु शंकराचार्य ने सत्तर दिन तक तथा अन्य सन्तों ने भी लम्बे-लम्बे अनशन किये हैं। किन्तु अब तक सरकार सही विचार पर नहीं आई है। विश्वास है कि यह आन्दोलन गोवध पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगवाने में अन्तत सफल होगा और भारत के भाल से यह कलंक का टीका मिटकर ही रहेगा।

इस सम्बन्ध में भारतीय सरकार को दीर्घ दृष्टि से काम लेना चाहिए। क्योंकि सरकार को यदि सचमुच लोकतन्त्र को जीवित रखना है देश की गति विधि को ठीक तरह से संचालित किए रखना है तो जनता के समवेत स्वर की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित करना ही होगा।

आज हिंसात्मक प्रवृत्तियों की रोक-थाम के लिए उसे अहिंसा का अभियान अधिक से अधिक तेज करने की आवश्यकता है। यदि अहिंसा की उपेक्षा कर दी और हिंसा का प्रवाह प्रवाहित होता चला गया तो निश्चय ही यह स्वर्गीय भूमि नरकागार के रूप में परिणत हो जाएगी। इस दिशा में डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के विचार दर्शनीय हैं—"जब मानव जाति हिंसा की चरम सीमा पर पहुँच चुकी है तब ऐसे समय में अहिंसा ही एक मात्र अवलम्बन है। यदि मानव का महाविनाश में विलीन नहीं हो जाना है तो अहिंसा की चिरन्तन वाणी का उसे पुनः आविष्कार करना होगा। जिस बुद्धि ने अणु की सूक्ष्म शक्ति का विघटन किया है वही बुद्धि अहिंसा की जीवनी शक्ति का मार्ग समझने की शक्ति रखती है।'

यहाँ डा० अग्रवाल के कथन में हम इतना और जोड देना चाहते हैं कि जिस देश को सहस्राब्दियों से अहिंसा की विरासत मिली, वह देश भारत अब अहिंसा की जीवनीशक्ति विश्व को समझाए, वह समय आ गया है। किन्तु यह होगा तभी जब भारतीय नेता, जो राजनीति और शासन में भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं स्वयं अहिंसा के भारतीय दृष्टिकोण का हृदयगम करें और अहिंसा को ही आदर्श-मान कर उसके पथ का अनुसरण करें। यह ठीक है कि आज बौद्धिक-जगत में अहिंसा मान्य हुई है पर दुर्भाग्य से जीवन के क्षेत्र में वह प्रवेश नहीं कर पाई है। आज अहिंसा को जीवन में अधिक से अधिक स्थान देकर हिंसात्मक प्रवृत्तियों का दमन किया जाए तभी वह लाभप्रद हो सकती है।

९

विज्ञान पर अहिंसा की स्वर्णिम विजय

विज्ञान का जिस ढङ्ग से विकास हुआ और हो रहा है उसे देखते हुए वह मानव को तात्कालिक भौतिक लाभ पहुँचा सकता है, पर, उसमें विध्वस की सभावनाएँ ही अधिक हैं। आज पश्चिमी ससार भौतिक समृद्धि के शिखर पर पहुच चुका है, पर उससे उसे क्या मिला ? विध्वस व अस्त्र ! हाईड्रोजन बम ! अणु बम और दूरमारक राकेट !! जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व आतंकित है। यह सत्य-तथ्य है कि आणविक-युद्धो से विश्व को कभी शान्ति नही मिल सकती। अणु अस्त्रों के प्रयोगो के समय आइस्टाइन ने उचित ही कहा था—"अब हमारे सामने दो ही विकल्प है, या तो हम एक साथ जीएगे या एक साथ मरेंगे।" वस्तुत आधुनिक युग म विज्ञान मस्तिष्क ने जो भयङ्कर हिंसा के साधन प्रस्तुत किये हैं, उन सबका प्रतीकार अहिंसा द्वारा ही किया जा सकता है। यदि कोई यह सोचे कि हिंसा के द्वारा हिंसा का उन्मूलन कर अहिंसा की प्रतिष्ठा की जाए तो यह उसकी अज्ञता ही है। क्योकि शस्त्रो से शस्त्र कभी काटे नही जा सकते। तलवार से तलवार नही जीती जा सकती। भगवान् महावीर ने सुस्पष्ट शब्दो मे कहा है—ससार मे एक से बढ़कर दूसरा शस्त्र है, किन्तु अशस्त्र अर्थात अहिंसा से बढकर और कुछ नहीं है। जगत का अन्त भले ही हो जाए, पर शस्त्रो की प्रतिस्पर्द्धा का अन्त शस्त्रो से नही हो सकता। भयानक से भयानक शस्त्रों को शस्त्रो से नही, अशस्त्र से अर्थात अहिंसा से ही जीता जा सकता है।[८]

---

८ अत्थि सत्थं परेण परं नत्थि असत्थं परेण परं। —आचारांग २।३ ४।

इसी प्रकार युद्ध व द्वारा युद्ध भी बन्द नहीं किये जा सकते। अतीत का इतिहास हमारी आँखों के सामने है। हिंसा ने कभी किसी ने विजय प्राप्त नहीं की और यदि प्राप्त की भी तो उसमें स्थायित्व नहीं रहा। अहिंसा द्वारा सम्पादित विजय स्थायी एवं शाश्वत होती है। इसी शाश्वत—सत्य को दिनकर जी ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

> ऐसी शान्ति राज करती है तन पर नहीं, हृदय पर।
> नर के ऊँचे विश्वासों पर श्रद्धा भक्ति प्रणय पर॥

चण्डकौशिक की हिंसा पर महावीर की अहिंसा ने, अर्जुनमाली की हिंसा पर सुदर्शन की अहिंसा ने, सम्राट् प्रदेशी की हिंसा पर श्रमण केशी की अहिंसा ने[9], दुष्यन्त की हिंसा पर आश्रम के सात्विक ऋषियों की अहिंसा ने[10] विजय प्राप्त की। वस्तुतः वही इनकी विजय चिर स्थायी एवं सच्ची विजय थी। उक्त घटनाएँ हिंसा पर अहिंसा की विजय का चिरन्तन सत्य स्पष्ट कर रही है।

भारतीय संस्कृति के तत्वचिन्तक मनीषियों ने विश्वशान्ति का वास्तविक आधार अहिंसा को ही माना है। अहिंसा ने विश्व के रंगमंच पर वे अद्भुत कार्य करके दिखाये हैं, कि जिनकी कल्पना मानवमस्तिष्क में नहीं थी। भारत की स्वतन्त्रता, कोरिया का गृह-युद्ध, कांगो और मिश्र के उदाहरण इतने ताजे हैं कि शान्ति स्थापना के कार्यों में इस पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं।

भारत की अहिंसात्मक नीति

●

भारत सदा से शान्तिप्रिय देश रहा है। इस भूमि पर राम कृष्ण, बुद्ध व तीर्थंकर महावीर आदि महापुरुष हिंसा व युद्ध से

---

९ राजप्रश्नीय सूत्र।

१० न खलु न खलु बाण: सन्निपात्योऽयमस्मिन्।
मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्नि:॥
—भारतीय संस्कृति साने गुरु जी में उद्धृत

पीडित विश्व का समय समय पर शान्ति का सन्देश देते रहे हैं। उसी का यह सुफल है कि भारत का विश्वशान्ति के क्षेत्र में सुदीपकाल से बहुत बडा योग रहा है। भारतीय जनता का यह सुदृढ़ विश्वास है कि राष्ट्रों की सीमाएँ युद्ध के द्वारा परिवर्तित नहीं की जा सकती, और न द्वेष घृणा के द्वारा ही किसी का प्रेम प्राप्त किया जा सकता है। भारत का चिन्तन तो सदा यह रहा है कि न तो किसी पर आक्रमण करना और न किसी का प्रदेश ही हथियाना। वह सभी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध सस्थापित करना चाहता है। वह अपनी सुरक्षा की गारण्टी अणुआयुधो मे नही, किन्तु पारस्परिक मैत्री से प्राप्त करना चाहता है। वह विश्व के प्रति सदा यही मगल कामना करता रहा है—"सब सुखी हो, सब नीरोग हो, सब एक दूसरे का भला करें, और कोई दुखी न हो।" यह पावन भावाभिव्यञ्जना विश्व के सभी राष्ट्रो एव मानव मात्र के लिए अपनाणीय है।

युद्ध एक समस्या है। आज का ससार युद्ध की विभीषिका का विशेष सत्रस्त दृष्टि से देख रहा है। अत यदि किसी भी राष्ट्र ने हिंसात्मक निरोध के सम्बन्ध को लेकर अहिंसा की दिशा मे अपने सक्रिय चरण बढ़ाए तो निश्चय ही अहिंसा के इतिहास मे वह एक नूतन अध्याय जोडने वाला सिद्ध होगा।

इस विषय मे विश्व को अन्य राष्ट्रो की अपेक्षा भारतवर्ष मे अधिक आशा है, यह कोई न कोई शान्ति का मार्ग ढूँढ निकालेगा। क्योकि भारत ही एक ऐसा देश है, जो वस्तुत अहिंसात्मक नीति से युद्ध की समस्या को हल करना चाहता है। किसी न किसी वार्तालाप से ही सुलह हो जाए यही उसका अन्तर्भाव है।

यद्यपि युद्ध भारत की मूल प्रेरणा नही है, तथापि कुछ समय पूर्व चीन ने सीमा विवाद के नाम पर सहसा छद्म युक्त हिंसात्मक आक्रमण किया, और जिसके लिए शान्तिप्रेमी भारत को आत्म रक्षण के लिए प्रतीकार करना पडा। पर इसमे उसे कतई प्रसन्नता न थी। भारत ने इसे एक प्रकार से आपद्धर्म माना है।

अभी अभी गत वर्ष ही पाक, हिन्दुस्थान का अपनी युद्ध लिप्सु वृत्ति का पूर्ण परिचय दे चुका है, और उसे ईट का उत्तर पत्थर से मिल जाने के बावजूद भी वह अपनी इस दुष्टवृत्ति को कम नही कर पा रहा है। पुन युद्ध के मोर्चे पर आने के लिए बन्दर की तरह

उछल-कूद मचा रहा है। पर यह निश्चित है कि भारत अब किसी भी दृष्टि से न पीछे हैं और न पीछे ही रहेगा। भारत इसके लिए अत्यन्त सचेष्ट है कि जहा तक अहिंसात्मक नीति से समझौता हो जाए, अति श्रेयस्कर है, भारत की इस पवित्र नीति का सर्वत्र प्रभाव है। अणुअस्त्रो से सुसज्जित धनी राष्ट्र अमेरिका, रूस व ब्रिटन आदि ने भारत की इस रीति-नीति की मुक्त-कण्ठ से सराहना की है और इसे समन्वयवादी राष्ट्र कहा है। इतना ही नही, अमरिका व रूस ने तो अहिंसा की दिशा मे अपने चरण कुछ बढ़ाने प्रारम्भ भी कर दिये हैं।

७ | अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध-सन्धि

•

आधुनिक विज्ञान की बदौलत किस प्रकार के भीषणतम संहारक अस्त्र शस्त्रों का निर्माण हो चुका है, यह हम देख चुके हैं। पर, यह तो निर्विवाद है कि यदि इन अस्त्रों के द्वारा युद्ध लड़ा गया तो न युद्ध करने वाले ही बच सकेंगे और न ही वे जिन पर अस्त्रों का प्रयोग किया जाएगा। अतः आज विश्व के मूर्धन्य राष्ट्रों को इस समय इस बात पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना है कि निःशस्त्रीकरण व अणुपरीक्षण पर प्रतिबन्ध लगाकर विश्व को धन-जन की महान हानि से बचाया जाए। यदि शस्त्रीकरण तथा अणु-परीक्षणों की बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा की परिसमाप्ति नहीं हुई तो एक दिन अखिल मानवता के नाश होने की सम्भावना है। आज विश्व के बड़े राष्ट्र रूस, अमेरिका तथा ब्रिटेन आदि शस्त्रीकरण और अणु परीक्षण की घृणास्पद प्रतिस्पर्धा का परित्याग कर शांतिपूर्ण सहयोग के पथ पर अग्रसर हो जाएँ तो निश्चय ही संसार सुख की ओर बढ़ सकता है। यद्यपि इसके लिए कुछ शान्तिप्रिय राष्ट्रों ने पहल की है, और वे कृतसंकल्प भी हुए हैं। यूरोप जैसे कुछ देशों में अणु परीक्षणों के विरोध में आन्दोलन, संगठन तथा सत्याग्रह आदि किये जाने लगे हैं। तथा फौज का विघटन करके हथियारों को समुद्र में फेंक देने के विचार आज के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क में लहराने लग गये हैं। पर, यह स्मरण रहे कि हमें इतने पर से ही संतोष की सांस नहीं लेना है। इसके लिए आवश्यक तो यह है कि सभी बड़े राष्ट्रों के प्रधान मिलकर एक स्थान पर बैठें और पुनः इस प्रश्न पर ठण्डे मस्तिष्क से विचार करें। तथा पारस्परिक सहयोग का स्वर्णिम सूत्र तैयार करके विश्व को निर्भय बनाएँ।

सन् १९६१ के लगभग बेलग्रेड मे तटस्थ राष्ट्रो का एक सम्मेलन हुआ था जिसमे नि शस्त्रीकरण व पारमाणविक विभीषिका पर विचार किया गया। उसमे श्री लका की प्रधानमत्रिणी श्रीमती भण्डार नायके अपने हृदय के उद्गार अभिव्यक्त करती हुई बोली -

"मै इस सम्मेलन मे भाग लेन के लिए सिफ अपने राष्ट्र का प्रधानमत्रिणी की हैसियत स ही नहीं आयी हू, बल्कि एक स्त्री और मा की हैसियत से भी ।

" मै एक क्षण के लिए भी एसा विश्वास नहीं कर सकती कि दुनिया म कोई ऐसी भी माँ है, जो अपने बच्चो के पारमाणविक सक्रिय धूल से शिकार होने और घुल घुलकर मरने की सम्भावना पर विचार कर सके ।"

'महान शक्तियो के नेतागण, जिनक हाथो मे युद्ध न चाहने वाली लाखो जनता ने सत्ता सौंप दी है, उन्हे कभी भी यह अधिकार नही है कि व किसी भी विशेष सिद्धान्त या आदश के लिए भयानक विध्वसक शक्ति वाले पारमाणविक युद्ध छेडें ।"

× × ×

भारत के प्रधानमत्री स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नहरू ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—

"मानवता खतरे म है। हम इसी पहलू से सोचना है, यानी जो जरूरी सवाल है उस पर हम पहले सोचें और यह जरूरी सवाल है युद्ध और शान्ति का। जब विश्व विनाश की ओर बढ रहा है, तो दूसरे सवाल गौण हैं ।

मुझे बडा ही ताज्जुब होता है कि महान् शक्तियाँ इस इज्जत का प्रश्न बनाकर अपनी अपनी बात पर दृढ है और यह इतनी महान् और शक्तिशाली हैं कि शान्तिवार्ता के लिए तैयार नहीं। मेरा विश्वास है कि यह एक गलत रुख है। इसमे उनकी इज्जत का ही प्रश्न नही, बल्कि मानवजाति के भविष्य का भी प्रश्न है।"

× × ×

यूगोस्लाविया के राष्टपति मार्शल टीटो कहते हैं—

"बेलग्रेड-सम्मेलन का उद्देश्य महान्शक्तियो को यह बतला

ा है कि विश्व का भाग्य सिर्फ उन्हीं के हाथों में नहीं रह
ता।"[1]

प्रस्तुत सम्मेलन में निःशस्त्रीकरण व अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध के
बन्ध को लेकर पारस्परिक गम्भीर विचार-विमर्श हुआ। यह
मेलन कितने अंश में कामयाब हुआ यह बतलाना तो इस समय
र नहीं है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसके
चात् भी शान्तिप्रिय राष्ट्र इस सम्बन्ध में सतत प्रयत्नशील रहे
। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ५ अगस्त १९६३ को मास्को में होने वाला
म्मेलन है। मास्को में कई राष्ट्रों ने मिलकर अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध
न्धि पर शान्ति और मैत्री की कामना करते हुए अपने हस्ताक्षर
ये हैं।

प्रस्तुत सन्धि पर कुछ प्रमुख राष्ट्रों ने हस्ताक्षर नहीं किये।
नका प्रधान कारण यह है कि रूस और अमरिका अपने अणु
थियारों के भण्डार को नष्ट करने के लिए तैयार नहीं हैं। इस प्रश्न
ा उचित समाधान हो गया तो वे भी प्रस्तुत सन्धि पर हस्ताक्षर
रने को प्रस्तुत हो जाएँगे, ऐसी आशा की जाती है।

भारत के प्रधानमन्त्री स्व० नेहरू ने अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध
न्धि पर हस्ताक्षर को शीतयुद्ध की बर्फ पर पहली चोट बताते
ए विश्व के लिए प्रसन्नता अभिव्यक्त की। श्री नेहरू ने कहा—
मास्को में आज (५ अगस्त को) इस सन्धि पर हस्ताक्षर हो रहे हैं
ौर प्रत्येक शान्तिप्रेमी को इसका स्वागत करना चाहिए। यद्यपि
रीक्षण पर यह आंशिक प्रतिबन्ध सन्धि ही है और निःशस्त्री
रण की दिशा में बहुत बड़ी प्रगति नहीं है, फिर भी यह बहुत ही
हत्वपूर्ण है। क्योंकि यह उस मंजिल की ओर ले जाने वाला
थम सोपान है।" उन्होंने कहा—"भारत ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर
रना स्वीकार कर लिया है। हम यह मानते हैं कि युद्ध वर्जक
न्धि जहाँ भी हो, उसका स्वागत किया जाएगा क्योंकि उससे
ुद्ध का खतरा कम होता है।"

क्रेमलिन में रूस की तरफ से आयोजित भव्य स्वागत समारोह
 भाषण करते हुए तत्कालीन प्रधानमन्त्री ख्रुश्चेव ने कहा—

---

१ पारमाणविक विभीषिका —विक्रमादित्यसिंह की पुस्तक में उद्धृत।

'आंशिक अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध-संधि अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का आलेख है। मगर इस संधि से अणुयुद्ध का खतरा खत्म नहीं हुआ है, जब तक हथियारों के लिए दौड़ जारी रहेगी तब तक यह खतरा बना रहेगा।" अमरीकी विदेशमंत्री श्री डीन रस्क ने अणुपरीक्षण प्रतिबन्ध संधि पर कहा— यह एक अच्छा पहला कदम है, और यदि इसके अनुगमन में और कदम बढ़े तो मानव का शान्ति के लिए स्वप्न यथार्थ रूप पा सकेगा।' ब्रिटेन के विदेशी मंत्री ह्यूम ने प्रस्तुत संधि के सम्बन्ध में बतलाया—"आज के सुअवसर पर हम सबको जो आशावाद दिखाई दे रहा है, वह इस बात का प्रतिफल है कि रूस और पश्चिम के नेता इस परिणाम पर पहुँच गए हैं कि आणविक युद्ध की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रत्येक मानव परिवार अब इस भय से मुक्त हो सकता है कि उसकी भावी सन्तान हवा में मानव निर्मित कारागार से मुक्त रहेगी।' [12]

उपर्युक्त राष्ट्रीयनताओं के हृदय की यह भावाभिव्यञ्जना विश्वशांति की एक सुनहरी किरण है, जो हिंसा से अहिंसा की ओर एवं विध्वंस से सृजन की ओर बढ़ने के लिए प्रबल प्रेरणा दे रही है। इसमें तनिक मात्र भी शंका को अवकाश नहीं कि यह प्रेम-स्नेह की पताका है, जो विश्व के प्रांगण में लहराती रहेगी युग युग तक।

---

१२ दैनिक हिन्दुस्तान नई दिल्ली ७ अगस्त १९६३ ई०।

८ | अहिंसा और विज्ञान का मिलन

•

मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य शाश्वत सुख शान्ति प्राप्त करना है। सूक्ष्म-दृष्टि से चिन्तन मनन करने पर यह ज्ञात होगा कि मनुष्य मात्र की ही नहीं, पशुओं और पक्षियों तक की प्रत्येक प्रवृत्ति में सुख शान्ति का ही ध्येय निहित है। ज्ञान विज्ञान का लाभ यद्यपि महत्वपूर्ण है, तथापि वह भी साध्य नहीं, साधन ही है और उसका साध्य सुख प्राप्ति ही है। अतएव यह स्पष्ट है कि जो ज्ञान विज्ञान जीवन में सुख शांति की सृष्टि कर सकता है, वही हमारे लिए उपादेय और श्रेयस्कर हो सकता है।

पिछले पृष्ठों में विज्ञान के सम्बन्ध में जो आलोचनात्मक दृष्टि प्रस्तुत की गई है, उससे स्पष्ट तया विदित होगा कि आधुनिक विज्ञान जहां हमारे लिए कुछ सुख-सुविधाएँ प्रस्तुत करता है, वहाँ बहुत-से दुःख एवं दुविधाएँ भी उत्पन्न कर रहा है। परिताप की बात तो यह है कि विज्ञान ने सुख की अपेक्षा दुःख एवं विनाश की ही अधिक सृष्टि की है। विज्ञान के प्रभाव से आज हमारा जीवन अतिशय अशांत, असन्तुष्ट, व्याकुल और विनाशोन्मुख बन गया है।

यद्यपि विज्ञान इस युग का कोई अभूतपूर्व आविष्कार नहीं है, वह सनातन है। किन्तु प्राचीनकाल के वैज्ञानिकों की जीवन नीति एवं दृष्टि भिन्न प्रकार की थी। उस समय विज्ञान और राजनीति का क्षेत्र भिन्न भिन्न था। विज्ञान राजनीति के प्रभाव से सर्वथा मुक्त था। विज्ञानवेत्ता राजनीति को प्रभावित कर सकते थे, मगर राजनीति विज्ञानवेत्ताओं को प्रभावित नहीं कर सकती थी। इसी कारण तत्कालीन विज्ञान में अध्यात्मोन्मुखता थी, कोरी भौतिकता अर्थात्

सहायकता नहीं थी। मगर आज वह बात नहीं है। आज का वैज्ञानिक राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना है। राजनीतिज्ञों के संकेत पर ही आज वैज्ञानिकों के प्रयास चल रहे हैं।

कितने दुःख का विषय है कि सृष्टि का सर्वाधिक प्रतिभाशाली वैज्ञानिक-वर्ग चांदी-सोने के टुकड़ों के बदले अपने मस्तिष्क और कर्तृत्व को बेच डालता है। वह राजनीतिज्ञों की उच्छृंखल महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का औजार मात्र बना हुआ है।

जिस दिन संसार के वैज्ञानिकों की आत्मा जागृत होगी और वे राजनीतिज्ञों की गुलामी करने से इन्कार कर देंगे, उसी दिन से विज्ञान विनाश के बदले विकास का सर्जक बन जाएगा। अमंगल से मंगल की ओर चल पड़ेगा। उसकी दिशा बदल जाएगी। वह मानवजाति की सुख शान्ति के लिए प्रयत्नशील होगा। उन्हीं घड़ियों में अहिंसा के साथ विज्ञान का मंगलमय समन्वय हो सकेगा और जब विज्ञान का अहिंसा के साथ समन्वय होगा तभी वह विश्व के लिए वरदान बन सकेगा तभी मानव जाति दिव्यत्व की ओर बढ़ सकेगी। यह एक शुभ लक्षण है कि आज राजनीतिज्ञ, राष्ट्रनेता, समाजनेता और वैज्ञानिक भी अहिंसा के साथ विज्ञान के समन्वय की आवश्यकता स्वीकार करने लगे हैं। संसार के विराटशक्तिशाली राष्ट्र इस दिशा में सोचने लगे हैं। अमरीका और रूस के नेताओं की सद्भावना यात्राएँ अगर कूटनीतिक यात्रा न हों, तो इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। यदि विचारों की इस दिशा में प्रगति होती रही तो उस दिन की सम्भावना की जा सकती है, जब सारा संसार सुख की नींद सो सकेगा, किसी को किसी से भय न होगा, अविश्वास और आशंका न होगी। कोई किसी के अधिकार का अपहरण नहीं करेगा। युद्ध कलह या संघर्ष के लिए कोई कारण पैदा नहीं होंगे। सोने-से दिन और चांदी-सी रात कटेंगी। मगर इस परिस्थिति के लिए अनिवार्य शर्त है—अहिंसा के अंचल में विज्ञान शिशु का पोषण हो। विज्ञान को अहिंसा के हाथों में सौंप दिया जाए, और अहिंसा माता विज्ञान को विश्वमंगल के लिए प्रस्तुत करती रहे।

ात : अहिंसा बनाम विश्वशान्ति

* प्रगति के पंख
* आज का विश्व
* विश्व शान्ति का सुनहरा-स्वप्न
* नैतिकता का सूर्योदय
* दृष्टि का मोड़
* आन्तरिक तनाव और युद्ध
* अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता
* युद्ध और अहिंसक का कर्तव्य
* अध्यात्मवाद का निर्झर
* विश्व शान्ति में भारत का योगदान
* अहिंसा बनाम विश्वशान्ति

१ | प्रगति के पंख

मानव विश्व का सवश्रेष्ठ प्राणी है। इस शस्य श्यामला धरती पर अनादिकाल से उसका अस्तित्व है, और तभी से उसके सम्मुख विविध समस्याएँ उपस्थित होती रही हैं। पर समस्याओं मे वह कभी निराश नही हुआ। अपने अदम्य उत्साह, शौय और बुद्धि-बल के साथ उनका प्रतीकार करता रहा, तथा प्रगति की दिशा म अपने मुस्तद कदम बढाता रहा है। बौद्धिक बल के सहारे उसने अपने भविष्य का निर्माण किया। सीमा और मर्यादाओ की रेखा खीच कर जीवन को सुसंस्कारित बनाया। सामाजिक, व्यावहारिक नियम उपनियम के स्तभ स्थिर किये। जीवन की अनेक विकट समस्याओ के सही समाधान ढूँढ निकाले। इतना ही नही, किन्तु प्रगतिशील मानव ने प्रकृति के गूढरहस्यो का भी पता लगाया, और एक दिन प्रकृति की उन अनन्त शक्तियो का वह शास्ता बन बठा। उन्नीसवी शताब्दी के समाप्त होते-होते मानव द्वारा आविष्कृत विज्ञान एव यत्रो की सहायता से सृष्टि के सौन्दय मे आमूलचूल परिवतन होने लगा। जीवन का मूल्याकन भी नये मानदण्डो से किया जाने लगा। सामाजिक एव आर्थिक-स्वतत्रता की भावना जागृत होने लगी। अधविश्वास और प्राचीन रूढियो की लोह शृँखलाएँ खन-खन करती हुई टूटने लगी। सामन्तशाही के रगीन हवाई महल ढहने लग और लोकतत्र की भावना अन्तर मे अँगडाई लेने लगी। जागरण की शहनाई बज उठी। मानव नया बल नया सम्बल, नई स्फूर्ति और नई चेतना लेकर आगे बढा। शोषण दलन व स्वाथ के क्षुद्र आवत से निकलकर विश्वबन्धुत्व, शान्ति तथा सतोष के खुले प्रागण मे जीवन का वास्तविक मूल्याकन

लगा। वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से पिछड़े हुए देश उन्नत होने लगे प्रगति के पथ पर बढ़ने लगे। नये-नये ग्रामों व नगरों की नये ढंग से रचना होने लगी। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक समस्याएँ एक एक करके सुलझने-सी लगी और ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि इस धरती पर से सभी बुराइयाँ व दुर्बलताएँ समाप्त प्रायः हो जाएगी। अब मानवता उछल कूद के साथ सचरण विचरण करती रहेगी। इस प्रकार मानव प्रगति के पंख लगाकर आनन्द के उस अनन्त गगन में उड़ाने भरने के लिए समुद्यत हो गया।

पर,-उसे क्या पता था कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही अभानिकयन्त्र, जिन पर भविष्य के सुनहरे स्वप्न महल खड़े किये गये थे, मानव के लिए दारुण शोषण और उत्पीड़न के कारण भूत बन जायेंगे। लाभ की प्रबल भावना के आँधी तूफान से उद्योगपतियों व पूँजीपतियों के मस्तिष्क विकृत होने लगे। अमीरी और गरीबी के बीच की दरार चौड़ी होने लगी। देश की सम्पत्ति कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के हाथों में एकत्रित होने लगी। आर्थिक विषमता और वर्गभेद का दायरा विस्तृत होने लगा। औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन के तीव्र अनुपात ने प्रतिद्वन्द्विता उत्पन्न कर दी। एक दूसरे के स्वार्थ टकराने लगे। छीना झपटी होने लगी। एक दूसरों के अधिकार व सत्ता हथियाने का विचार जन्म लेने लगे। बस इसी विषम वातावरण के गह्वर में महायुद्ध की ज्वालाएँ फूट पड़ी।

२ | आज का विश्व

•

आज विश्व का प्रत्येक राष्ट्र भयभीत है, आतंकित है। वह न अपनी आन्तरिक स्थितियों से संतुष्ट है और न अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण से ही। सभी एक दूसरे से सशंकित हैं। तनाव की खाई गहरी बनती जा रही है। मानवसमाज आपाद मस्तक कांप कांप रहा है। जितनी विकट-सकट की स्थितियाँ वर्तमान में उपस्थित हैं, उतनी अतीत में जन समाज को सम्भवत देखने को भी न मिली होंगी।

आज प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक राष्ट्र अपनी अपनी प्रवृत्ति में संलग्न है, और वह यही सोच रहा है कि हम जो कुछ कर रहे हैं, वह सब मानवजाति के उत्कर्ष के लिए ही कर रहे हैं। किन्तु उसकी इन प्रवृत्तियों पर किसको संतोष होगा? न जाने कब किसकी मानसिक ज्वाला भडक उठे और कब मानव समाज उसमें पतंगे की तरह भस्म हो जाएगा। विश्व को एकबार नहीं, किन्तु दो-दो बार महायुद्ध के ऐसे भयंकर आघात लगे हैं जिनसे वह कराह उठा। अब तक भी वह पूर्णतया सम्भल नहीं सका है और तीसरे महायुद्ध की संहारक चर्चाएँ चल रही हैं। यदि तीसरा युद्ध प्रारम्भ हो गया तो मानव समाज का अस्तित्व अक्षुण्ण रहेगा या नहीं, यह आशंका प्रत्येक व्यक्ति के दिल व दिमाग को अशांत व उद्विग्न बनाये हुए हैं। इसी आशंका से पीडित होकर विश्वव्यापी शान्ति की पुकार चारों ओर से सुनाई पडने लगी है। कोई भी राष्ट्र ऐसा न होगा जो शान्ति न चाहता हो। शान्ति मानव के मन की उत्कट अभिलाषा है और वह प्रत्येक युग की एक विशिष्ट

कामना रही है, तथा उसके लिए कुछ न कुछ प्रयत्न भी जारी रहे है। किन्तु मानव का इस प्रयत्न में कितनी सफलता प्राप्त हुई यह तो इतिहास के पृष्ठों से ही जाना जा सकता है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात विश्व शान्ति की स्थापना के लिए लम्बे चौडे आयोजन किए गए पर उसका परिणाम द्वितीय महायुद्ध के रूप में सामने आया जो पूर्व की अपेक्षा अधिक ही भयकर था। अत आज शांति स्थापित करने के प्रयत्न करने से पहले इस बात का अनुसंधान अपेक्षित है कि किन कारणो से अशान्ति का प्रादुर्भाव होता है? उसके मूल म कौन-से ऐसे विषैले तत्वों की प्रधानता है जिससे बार बार मानवसमाज को ये दुर्दिन देखने पडते है? जब तक अशान्ति के बीजो का अन्वेषण और मूलोच्छेदन नही किया जाएगा तब तक शान्ति के लिए किए जाने वाले तमाम बाह्य प्रयत्न निष्फल होंगे।

एक युग था, जब मानवभौतिक शक्तियो से इतना अधिक परिचित न था और आवश्यक वस्तु के अभाव म इधर-उधर भटकता था। एक दूसरे पर आक्रमण करता और आवश्यक अन्न धन के परिपूर्त्यर्थ सघर्ष करता था। किन्तु इस विज्ञान के युग म संघर्ष का उक्त कारण मानव समाज के लिए लागू नही होता। क्योकि विज्ञान ने प्राकृतिक शक्तियो के असीम भण्डार खोल दिए है। आज मानव इतनी साधन-सामग्रियो का उत्पादन कर सकता है, कि वह अपनी पूर्ति के अतिरिक्त अन्य कइयो की आवश्यकताएँ पूर्ण कर सकता है। उसे भेडिये की तरह दूसरे पर गुर्राने की आवश्यकता नही, और न किसी का खून बहाने की ही आवश्यकता है।

किन्तु यह एक दुख का विषय है कि मानव प्राकृतिक शक्तियो का, जो जीवन मे सहायक है, उपयोग समाज निर्माण मे नही, किंतु विनाश मे कर रहा है। जो पारमाणविक-शक्ति धरती को स्वर्ग बनाने का वरदान लेकर समुपस्थित हुई आज उसका उपयोग जन सहार म करके उसे अभिशाप के रूप मे परिवर्तित किया जा रहा है। आज अधिकाश शक्तियो का उपयोग मानव-कल्याण के स्थान पर मानव विनाश के लिए हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को अधिकाधिक निर्मल एव मैत्रीपूर्ण बनाने के लिए जो सूचना प्रसारण के वैज्ञानिक साधन है—यन्त्र हैं, उनका उपयोग द्वेष, घृणा अवि-

श्वास एव अनतिकता के प्रचार-प्रसार मे अधिकाधिक किया जा रहा है। यह मानव-मस्तिष्क की दुबलता व भटकन नही है तो क्या है ! आज विज्ञान ने अपने अभूतपूव आविष्कारो द्वारा विश्व का बहुत छोटा बना दिया है। कोई भी क्रिया प्रतिक्रिया किसी भी भौगोलिक सीमा म क्यो न हो, वह क्षणभर म विश्वव्यापी रूप ग्रहण कर लेगी क्योकि सारा विश्व ही एकमेक बन चुका है। यदि दो छोटे राष्ट्र परस्पर युद्ध करते हैं, तो उसका प्रभाव उन्ही तक सीमित नही रहता। बडे-बडे शक्तिशाली व छोटे राष्ट्र भी उसमे प्रभावित हो जाते हैं और जब ये राष्ट्र उसमे भाग लेने के लिए मदान म कूद पडते हैं तो सपूण मानवजाति को युद्धाग्नि म झुलसना पडता है।

ॐ

३ | विश्वशान्ति का सुनहरा स्वप्न

•

आज विश्वशान्ति के सुनहरे स्वप्न को साकार करने के लिए प्रत्येक विचारशील मनुष्य उत्सुक है। किन्तु भौतिकविज्ञान की अपरिमित शक्तियों का दुरुपयोग होते देखकर क्या यह आशा बँधती है कि मानव समाज का यह सुनहरा स्वप्न कभी पूर्ण होगा? एक दिन विश्व के वरिष्ठ राजनीतिज्ञों व नेताओं ने बड़े गौरव के साथ कहा था कि — प्रथम महायुद्ध इसलिए लड़ा गया कि उसके द्वारा विश्व में लोकतन्त्रात्मक पद्धति सुरक्षित हो सके और विश्वव्यापी स्थायी शान्ति स्थापित हो सके। इसी लक्ष्यबिन्दु को लेकर प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अमेरिका के प्रधान डा० वुड्रो विल्सन के संकेत पर 'लीग आफ नेशन्स' की स्थापना की गई। संसार की विभिन्न जातियों में शान्ति स्थापित करना, युद्ध को रोकना और मानवजाति के कल्याण के लिए सतत प्रयत्न करना उसका उद्देश्य था। किन्तु संसार के भाग्य की यह विचित्र विडम्बना ही थी कि 'लीग ऑफ नेशन्स' अपने क्षेत्र में अधिक सफलता सम्पादन न कर सकी। उसे द्वितीय महायुद्ध अपनी आँखों से निहारना पड़ा। इस द्वितीय महायुद्ध के करुणाजनक जनसंहार ने एक बार पुनः विश्व के राजनयिकों व शान्तिप्रेमियों का ध्यान अपनी ओर केन्द्रित किया। युद्ध द्वारा विश्वशान्ति सम्भव नहीं, अतः युद्धों की सदा के लिए परिसमाप्ति होजाए, इसके लिए विश्व के बड़े बड़े राष्ट्रों को एक राष्ट्रसंघ के संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई। परिणामतः २४ अक्टूबर १९४५ को इसकी नींव डाली गई। संयुक्त राष्ट्रसंघ का मूल उद्देश्य विश्वशान्ति और विश्वसुरक्षा है। उसके समस्त

प्रयत्न इसी की पूर्ति के लिए हैं। सघ चाहता है कि समस्त राष्ट्रों में मैत्री रहे और कोई भी राष्ट्र अपने बल का दुरुपयोग कर निर्बल राष्ट्रों की स्वाधीनता में बाधक न बनें। परिस्थितिवश यदि मतभेद भी पैदा हो जाए तो उसे युद्ध द्वारा न निपटाकर आपसी वार्तालाप या पचायती समाधान द्वारा उसका हल किया जाए। इसका दूसरा उद्देश्य यह भी है कि विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक सामाजिक या सास्कृतिक समस्याएँ अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा हल हो। उन राष्ट्रों में सुखशान्ति स्थापित करने के लिए वहाँ की सामाजिक एव आर्थिक प्रगति में योग देना पिछड़े हुए देशों की विश्वसघ द्वारा क्रियान्वित कल्याणकारी योजनाओं की पूर्ति में सहयोग करना भी सघ ने अपने मन्तव्यों में सम्मिलित किया है। एशिया के नवोदित राष्ट्रों को इस सस्था से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है। यूनिसेफ सेंटर खोले गए हैं, जहाँ चिकित्सा के अतिरिक्त औषधि खाद्य और दूध वितरण किया जाता है। नवीन औद्योगिक एव व्यावहारिक विज्ञान के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था है। शैक्षणिक व सास्कृतिक उत्थान विषयक कार्यों में भी इसका योग रहा है। इसका एक उद्देश्य यह भी है कि जाति धर्म भाषा एव लिंग के आधार पर किसी भी जाति के प्रति भेद भाव न रखा जाए। विश्व के समस्त मनुष्य मानव के मूलभूत अधिकारों का उपभोग करें। विचार स्वातन्त्र्य, वाणी-स्वातन्त्र्य यथेच्छ धर्म परिपालन एव लेखन, स्वातन्त्र्य पर सबको समान अधिकार हो।

इसमें कोई शक नहीं 'लीग ऑफ नेशन्स' की अपेक्षा सयुक्त राष्ट्र सघ अधिक तत्परता व सफलता के साथ काय कर रहा है। किन्तु जिस प्रधान उद्देश्य को लेकर इसकी स्थापना की गई थी, उसकी पूर्ति यह सघ अब तक नहीं कर सका है। यह ठीक है कि सयुक्तराष्ट्रसघ ने कोरिया, इण्डोनेशिया, इण्डोचीन, काश्मीर, स्वेजसमस्या और कांगो आदि की समस्याओं को सुलझाने में पर्याप्त प्रयत्न किया है और उसमें थोड़ी-बहुत सफलता भी सम्पादित हुई, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को मिटाने में यह सफल न हो सका। इस दृष्टि से विश्व को अब तक निराशा ही पल्ले पड़ी है। सयुक्तराष्ट्रसघ की असफलता का मूल कारण ढूँढा जाए तो स्पष्ट ज्ञात होगा कि स्वय सयुक्तराष्ट्रसघ के सघटन में भी तनाव की

स्थिति चल रही है, और जब तक इसका यह तनाव दूर नही होगा तब तक यह राष्ट्रो का पारस्परिक तनाव दूर करने मे पूर्ण समर्थ नही हो सकेगा।

'संयुक्त राष्ट्र संघ' की स्थापना का लगभग इक्कीस वर्ष का समय व्यतीत हो चुका है। फिर भी संसार की स्थिति मे कोई विशेष परिवर्तन परिलक्षित नही हो रहा है। बल्कि यो कहना चाहिए कि पूर्व की अपेक्षा विश्व की स्थिति अधिक विषम बनी है और बनती ही जा रही है। विश्व के रङ्गमञ्च पर रङ्गभेद, शोषण, उत्पीडन का कुचक्र अब भी चल रहा है। सर्वत्र अशान्ति की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो रही है। उसमे सामान्य राष्ट्रो से लेकर बडे-बडे राष्ट्र तक धाय धाय करके जल रहे हैं। शान्ति की कोई भी दिशा नही सूझ रही है।

आज विश्व मे एक ओर शान्ति के लिए नये-नये संगठन बनाये जा रहे हैं, तो दूसरी ओर अनेक व्यक्ति व राष्ट्र शोषणनीति को सुदृढ बनाने के उपायो की अन्वेषणा भी किए जा रहे हैं। आखिर यह स्थिति कब तक बनी रहेगी? ये परस्पर दो विरोधी प्रयास कब तक चालू रहेंगे? क्या इस संभावना को नजर से ओझल किया जा सकता है कि किसी दिन किसी बडे राष्ट्र का उन्माद बे-काबू होकर संयुक्त राष्ट्रसंघ को एक ही प्रहार मे धराशायी नही कर देगा? अत विश्व को विनाश के गर्भ मे विलीन होने से बचाना है और विश्वशान्ति के स्वप्न को साकार करना है तो शान्ति संगठन अथवा शान्ति सम्मेलनो के आयोजन मात्र से काम नहीं चलेगा, बल्कि संयुक्तराष्ट्रसंघ को सर्वोपरि सत्तासम्पन्न संगठन बनाना होगा। आज उस पर कतिपय बडे राष्ट्रो का जो आधिपत्य है, उसे दूर करना होगा—उनके 'वीटो' के अधिकार को सीमित करना होगा और संसार के समस्त राष्ट्रो को उसकी छत्रछाया मे आने को बाधित करना होगा। आज स्थिति यह है कि उक्त संघ बडे राष्ट्रो के हाथो का खिलौनामात्र है। संघ के निर्णय को वे प्रभावित करते है। जब तक जिसने चाहा उसका सदस्य रहा और जब प्रतीत हुआ कि संघ हमारी मनमानी करने मे बाधक बन रहा है तो उससे पृथक् होगया। दक्षिण अफ्रीका ने संयुक्तराष्ट्रसंघ की अवहेलना की। संघ उसका क्या बिगाड सका? सुकर्ण की अध्यक्षता मे चीन से प्रभावित

होकर इण्डोनशिया ने सयुक्तराष्ट्रसघ की सदस्यता त्याग दी। चीन उसका सदस्य ही नही है। यह सब सघ की निबलता का ही द्योतक है। इस परिस्थिति को दूर कर सघ को अखिल विश्व का सशक्त सगठन बनाने का प्रयत्न करना होगा। साथ ही मानवता के मूल सिद्धातो को जीवन मे व्यावहारिक रूप देना होगा और शान्ति के राज पथ पर विघ्न की चट्टानें बनकर खडे रहनेवाले विरोधी तत्त्वो को पृथक् करना होगा।

४ | नैतिकता का सूर्योदय

नतिक्ता मानवीय जीवन का शृगार है। शाति के सुराज म विहरए करने के लिए प्रत्यक राष्ट्र का ग्रनतिकता के गह्वर से ऊपर उठकर नैतिक्ता का दिव्यप्रकाश प्राप्त करना हागा। इसके ग्रभाव मे काई भी ग्रादश पनप नही मकता। यदि नतिक्ता क विना किमी ग्रादश की परिस्थापना कर दी गई तो वह एक दिन उसी प्रकार घराशायी हा जाएगा जस वारिश मे बालू की दीवार। वह ग्रधिक समय तक स्थिर नही रह सकेगा। नतिक्ता के स्तभ पर मानवीयजीवन के उच्चादर्शों की छत टिकी हुई है, ग्रत नतिकता के उत्कर्ष मे ही विश्वशाति या विश्व कल्याए समवित है। ग्राज नतिक्ता का कोप खाली होता जारहा है। उसे समृद्ध बनाना है। प्रा० तची ने एक बार कहा था—"ग्राज का सकट वास्तव म नैतिक सकट है। लोग कहत कुछ ह ग्रौर करत कुछ। यह व्यक्तिगत ग्रौर मामाजिक दाना प्रकार के जीवन म समान रूप मे सत्य है। व्यक्तिगत एव मामाजिक नतिक्ता मे भेद करने की प्रवृत्ति ही इस बात का प्रमाण है कि जरूर हमारी नतिकता मे कोई न कोई दोप है। सही मान मे बात यह है कि नैतिक्ता एक ही हो, वह चाहे व्यक्तिगत क्षेत्र मे हो, या सामाजिक क्षेत्र मे। उसका रूप दोनो जगह समान ही होना चाहिये।" प्रो० तची का कथन वास्तविकता से परे नही है। ग्राज ग्रनतिक्ता का बाजार काफी गरम है। सामान्य जनसमाज के जीवन मे तो इसका ग्रखण्ड राज्य है ही, किन्तु राजनैतिक क्षत्र म भी इसके चरए ग्रगद के चरणो की तरह जम चुके हैं। इसी ग्रनतिकता के फलस्वरूप

दिनानुदिन अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण विषाक्त बनता जा रहा है। आज एक ओर संयुक्तराष्ट्रसंघ और सुरक्षा परिषदा की सदस्यता स्वीकार की जाती है, दूसरी तरफ उनकी धारा के खिलाफ षड्यन्त्र रचे जाते हैं। एक ओर शान्ति सम्मेलनों की धूम मचाई जाती है, दूसरी तरफ अणु आयुधों के अम्बार खड़े कर छिप छिप युद्ध की तैयारियाँ की जाती हैं। एक ओर अणुपरीक्षण की संधि पर हस्ताक्षर किये जाते हैं, दूसरी तरफ अभ्यास के बहाने अणुपरीक्षण की घुड़दौड़ चालू है। यह सब क्या नाटक है? यदि गंभीरता से चिन्तन करेंगे तो यह अनैतिकता का ही पाप है। देश, समाज व राष्ट्र को डुबाने का एक तरीका है। इस द्विविध प्रवृत्ति के कारण ही आज मानव समाज के प्राण प्रतिपल युद्ध की आशंका से काँप रहे हैं।

आज नैतिकता के अभाव से ही अहिंसा को व्यावहारिक रूप देने में मानव सफल नहीं हो पा रहा है। उसमें साहस नहीं होता। वह इस आशंका से आशंकित रहता है कि न जाने अहिंसा के प्रयोग से हम कामयाब हो सकेंगे या नहीं? यदि नैतिकता का सम्बल उसके पास पर्याप्त परिमाण में विद्यमान है तो उसे कहीं भी, किसी भी स्थिति में परास्त होने की आवश्यकता नहीं। कुछ विचारकों का ऐसा भी मन्तव्य है कि "अहिंसा से सब कुछ हो सकता है, पर अहिंसा का ऐसा विकास मानव समाज में हो सके तब न?" इसके उत्तर में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि आज हिंसा के विकास के लिए सभी देश जितना श्रम, धन व्यय और दौड़ धूप कर रहे हैं उसका एक तिहाई भाग भी यदि अहिंसा के विकास लिए किया जाए तो अवश्य ही अहिंसा इच्छित वरदान प्रदान कर सकती है। पर इसके लिए भी नैतिकबल अपेक्षित होगा।

नैतिकता के अभाव में मानव पशु की भांति आचरण कर रहा है। आज हमारे देश में अनैतिकता का साम्राज्य है, स्वतन्त्र भारत में भौतिक दृष्टि से चाहे कितनी उन्नति ही हो रही हो, नित्य नवीन कारखाना, उद्योगों, बाँधों का निर्माण हो रहा हो, पर नैतिकता के बिना ये सारी प्रगतियाँ एक प्रकार सी व्यर्थ सिद्ध होने जा रही हैं। जीवन में नैतिकता का भी कोई मूल्य है जब तक इसे नहीं परखेंगे, और उसे नहीं अपनाएँगे—तब तक ये बाहर की टीमटाम जीवन के

विकास का बदले ह्रास करने वाली ही सिद्ध होगी। अत आवश्यकता है जीवन मे नैतिकबल का विकास करन की।

गांधी जी नैतिकता को बहुत बडी शक्ति मानत थे। तभी ता उन्होंने हिंसा रूप अनैतिकता का परित्याग कर अहिंसा रूप नैतिकता का प्रश्रय ग्रहण किया था और उसी के जरिये सत्ता परिवर्तन जसे असभव प्रतीत होने वाले काय का भी सभव कर दिखाया था। यदि आज विश्व को स्थायी शांति प्रदान करनी है ता सर्वप्रथम विश्व की जनता म नैतिक भावना जाग्रत करनी होगी और प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनतिक जीवन म एकरूपता लानी हागी। सामाजिक और वयक्तिकजीवन के जा अलग अलग मुखोट ह, उन्हे उतार फकना हागा। कथनी और करणी मे मेल करना होगा। आज हम ससार मे विभिन्न प्रकार की विषम समस्याएँ देख रह ह। य सब अनैतिकता की ही लाडली पुत्रियाँ ह। य तभी दूर हो सकेगी जब हम अनतिकतारूप जननी का सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र से दूर भगा दग। अगर ये अपना पर पसारा करके जमी रही तो एक दिन एक साथ कई राष्ट्र तबाह हो जायगे। इसी नतिकता पर बल देते हुए श्री किशोरलाल मशरूवाला ने, जो गाधीवाद के प्रौढ विचारक थे कहा—'आर्थिक और राजनीतिक ध्येय की तरह ही नतिकध्येय भी बहुत बडा महत्व रखता है। इसके विपरीत यदि दाना म स किसी एक को ही पसन्द करना हो, तो नतिकध्येय का विशेष महत्त्व का मानना चाहिए। यदि इसकी अवगणना करन का जरा भी प्रयत्न किया गया तो उससे भौतिक ध्येय भी सिद्ध न हा सकेगा और यदि हुआ मालूम भी पडेगा, तो जिन लोगा के लिए वह प्रयत्न किया गया है, उन्हें वह शान्ति और समृद्धि नही दे सकेगा। हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि गाधी जी नीति का आग्रह रखत थे, लेकिन हमने उस आग्रह की अवगणना की, इसलिए स्वतन्त्रता मिल जाने पर भी उससे जो शान्ति और समृद्धि मिलनी चाहिए थी वह नही मिल पायी। साम्यवाद की स्थापना हो जाने के बाद भी यही स्थिति होगी।[1]"

---

१ गांधी और विश्व शांति, पृ० २८ में उद्धृत।

तात्पर्य यह है कि आज अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को शुद्ध बनाने के लिए अनैतिकता का निराकरण आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। क्योंकि इसके द्वारा विश्व में भय, अधिकार लिप्सा स्वार्थ, घृणा, तनाव आदि अनेक बुराइयों का जो प्रसार हो रहा है वह नैतिकता के द्वारा ही बन्द किया जा सकता है। अत विश्व कल्याण के लिए यह अपेक्षित है कि जन-जन के अन्तर्मानस में नैतिकता का नव-सूर्योदय हो।

※※

५ |

दृष्टि का मोड

•

किसी नीतिकार की यह उक्ति यथार्थ है—"यादृशीदृष्टिस्तादृशी सृष्टि" अर्थात व्यक्ति की जसी दृष्टि होती है वसी ही सारी सृष्टि उसे नजर आती है। जब तक दृष्टि नही बदलती तब तक *उसकी सृष्टि नहीं बदल सकती। अत आवश्यकता है दृष्टि बदलने* की। आज विज्ञान ने ससार को विराट शक्तिया प्रदान की है, जिन से महाविनाशकारी अस्त्र शस्त्रो का निर्माण हो रहा है। अणु और उद्जनबम जसे प्रलयकारी अस्त्रो का निर्माण हो चुका है। और कुछ बडे शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र अत्यन्त तीव्रगति से अपने शस्त्रास्त्रो म वृद्धि कर रहे है। अमेरिका और रूस ने तो अपने यहाँ अस्त्रो के अम्बार ही लगा रखे हैं, क्योकि दोनो के पास पर्याप्त साधन है और दोनो म स्पर्धा चल रही है कि कौन अपने देशवासियो को अधिकतम सुख-सुविधाएँ उपलब्ध करा सकता है, कौन उन्हे समृद्ध बना सकता है। इतना ही नही, आर्थिक व औद्योगिक दृष्टि से अन्य देशो को कौन अधिक सहायता सहयोग देकर उन्हे अपने पक्ष म मिला सकता है? इस दिशा मे इनका चिन्तन अविरल गति से चल रहा है कि हम विज्ञान में नित नवीन खोज करें और उस विज्ञान से अपने शत्रु राष्ट्रो को विशेष भयभीत बनाए रखें। परिणामत आज विविध दिशाओ म, प्रयोगो तथा अन्वेषणाओं की घोर प्रतिस्पर्धा चल रही है। इन राष्ट्रो के पास आज इतनी शक्ति सग्रह हो चुकी है कि ये एक ही दिन मे विश्व का नक्शा बदल सकते हैं।

किन्तु अब हमे इसके विपरीत सोचना है। इसकी विपरीतता म ही विश्व का उज्ज्वल भविष्य निहित है। जिन महान शक्तियो का प्रयोग जन-सहारक युद्धादि मे किया जाता है, उनका उपयोग जन

कल्याण के कार्यों म किया जाए तो निश्चय ही कुछ वर्षों म पृथ्वी के सभी मानवो को अनन, वसन व भवन आदि प्रचुर मात्रा म उपलब्ध हो सकते हैं और एक दिन यह धरती स्वर्गीय सुखो से तुलना करने लग जाएगी। परन्तु म समझता हू यह तब तक सभव नहो है, जब तक कि शक्तिशाली राष्ट्र तथा व्यक्ति अपनी दृष्टि को न बदल डालें। यदि आज शक्ति के उन निमाता कर्णाधारों के मस्तिष्क म नतिकता की जागृति हो जाए और वे ईमानदारी व सचाई से वतन लग जाएँ तो अन्तराष्ट्रीय वातावरण म जो तनाव की स्थिति चल रही है उसम बहुत शीघ्र ही परिवतन आ सकता है।

☙

६ | आन्तरिक तनाव और युद्ध

•

आज के युग की जटिलतम समस्या यह है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी सुरक्षा, अपने हित अपनी संस्कृति आदि के संरक्षण के लिए अत्यन्त चिंतित है। और इसके लिए हर राष्ट्र तीव्रगति से युद्ध की तैयारी कर रहा है। न जाने किस समय आत्मरक्षा के लिए शत्रु से लड़ना पड़े ? किन्तु विश्व को यह तो विदित हो ही चुका है कि युद्ध अथवा हिंसा के रास्ते से कभी शान्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। विगत दो महायुद्धों के नजारे मानव देख ही चुका है। यद्यपि इसमें मानव की यह कल्पना थी कि युद्धविराम के पश्चात् विश्व में शीघ्र ही शान्ति का साम्राज्य कायम हो जाएगा, किन्तु उस की यह चिरन्तन कल्पना, कल्पना बन कर ही रह गई। युद्ध के बाद भी मानव चारों तरफ अशान्ति, असंतोष, निराशा, कुण्ठा और अभावों का जहर लिए भटकता रहा। गांधी जी एक स्थान पर लिखते हैं—"गत तीस वर्षों के मेरे जीवन का अनुभव मुझे यह महती आशा प्रदान करता है कि न केवल भारत, किन्तु सारे जगत् का कल्याण और भविष्य अहिंसा के अवलम्बन में ही सुरक्षित है। अहिंसात्मक पद्धति जिस प्रकार निर्दोष है, उसी प्रकार संसार के शोषित और दलित समाज की समस्त राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए अति प्रभावकारी अमोघास्त्र है। मैंने अपने जीवन के अति प्रारम्भिक काल से ही यह समझ लिया है कि अहिंसा केवल संत का ही गुण नहीं है, जिसका अभ्यास करके व्यक्ति गत आध्यात्मिक शान्ति तथा मोक्ष का सम्पादन व्यक्ति विशेष कर सकता है। मैंने तो यह समझा है कि अहिंसा व्यापक जनसमाज में जीवन-यापन के

लिए निश्चित विधान है। यदि मानवसमाज मानवता के गौरव के अनुकूल जिन्दगी बसर करना चाहता है और यदि वह उस शान्ति का इच्छुक है, जिसकी ओर मनुष्य युग-युग से दौड़ रहा है, तो उसे जीवन में अहिंसा का ग्रहण करना ही पड़ेगा।'[२]

साराश यह है कि हिंसा व युद्ध में शान्ति कभी सभव नहीं। हमारे यहाँ शान्ति जब भी आई तो वह हिंसा के द्वारा नहीं अहिंसा के द्वारा ही आई है। आज भी हिंसा और युद्धों का अन्त हो सकता है और स्थायी शान्ति का निर्माण हो सकता है, किन्तु इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय तनाव आदि बाधक तत्त्वों को समाप्त करने की आवश्यकता है। जब तक इनका अन्त नहीं होगा तब तक शान्ति सम्भव नहीं लगती। अतः प्रत्येक शान्तिप्रिय राष्ट्र का यह कर्तव्य है कि वह आन्तरिक तनाव के कारणों की अन्वेषणा करें और उसे मिटाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे।

आज विश्व रंगमच पर राजनीतिक तनाव इतना गहरा हो गया है कि जिसके कारण विश्वशान्ति खतरे में पड़ गई है। इस तनाव का मुख्य कारण है—पूँजीवादी और साम्यवादी खेमों का पारस्परिक मनमुटाव, आशंका एवं प्रतिस्पर्धा। पूँजीवाद तथा साम्यवाद दोनों अपने अपने स्थानों पर सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक ढाँचे के अनुसार विभिन्न तौर-तरीकों से अपना विकास करने में मलग्न है। यहाँ तक तो बात ठीक ही है, इसमें कोई भी विचारशील व्यक्ति असहमत नहीं हो सकता। किन्तु जब व्यक्ति में अहंकार की भावना विशेष रूप से जाग्रत हो जाती है, अपनी मुख्यता व स्वार्थवृत्ति से आविर्भूत विचार दूसरे व्यक्ति के मानस में ठूँसने का आग्रह किया जाता है, अथवा जब कोई अपनी व्यवस्था एवं अपनी कार्यपद्धति को ही श्रेष्ठ मानता है और दूसरों की पद्धति को गलत, अवैज्ञानिक समझने लगता है तब दूसरे के विचारों में एक भयंकर प्रतिक्रिया होती है और वह प्रतिक्रिया ही आन्तरिक तनाव का मूल कारण है। भविष्य में जाकर इसी प्रतिक्रिया से अंतर्राष्ट्रीय तनावों का उद्भव होता है।

---

२ गांधी और विश्व शान्ति पृ ६ में उद्धृत।
—देवीदत्त शर्मा

आज रूस तथा अमेरिका के बीच शस्त्रीकरण व अणुपरीक्षणों के सम्बन्ध म जो प्रतिस्पर्धा चल रही है, वह इसी बात का प्रतीक है। दोनों गुट गहरे अविश्वास एव भयकर प्रतिस्पर्धा से प्रताडित ह। दोनों की विचारधारा व नीतियों म भी पूर्ण विरोध है। दोनों अपनी अपनी विचारधारा को एक दूसरे पर लादना चाहते है। इसी प्रकार ताकतवर देश भी अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रखने के लिए सजग प्रहरी की तरह तन हुए है। जब तक यह विचार भेद की स्थिति चलती रहगी, तब तक युद्ध की सम्भावनाएँ कम होने वाली नही ह।

एक दिन अमेरिका की प्रजातन्त्रीय और रूस की समाजवादी पद्धतियो के विषय मे यह अनुमान था कि वे अपनी पद्धतियो द्वारा विश्व म सुख शान्ति के साम्राज्य की स्थापना कर सकेंगे। किन्तु आज हम देखते है कि इन्ही दोनो गुटो म सबसे अधिक युद्ध की तैयारी चल रही है। एक तरफ जहा ये उत्तरोत्तर युद्ध के तीव्र शक्ति शाली आयुधो का निर्माण कर रह हैं वहाँ दूसरी तरफ वे राष्ट्रसघ, सयुक्तराष्ट्र सघ तथा शान्तिपरिषदो से भाग लेकर शान्ति-सह-अस्तित्व एव मैत्रीभाव की चर्चाएँ करते हुए भी दृष्टिगोचर होते है। इनकी इस दोहरी नीति का पता नहीं लगता। इसी दोहरी नीति के कारण निष्पक्ष और शान्ति के इच्छुक राष्ट्र आतकित है। जब तक इनका आपसी समझौता और भाईचारे का नाता विश्वरगमच पर वास्तविक रूप म उभर कर नही आयेगा। तब तक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति मे किसी भी प्रकार का परिवतन नही आ सकता।

आज ससार की अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की स्थिति को दूर करने के उपायो पर गहराई स विचार करने के बावजूद भी निराशा ही प्रतीत हो रही है। किन्तु श्रमण भगवान् महावीर ने विश्वहित के लिए जो तीन महान सिद्धान्त अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्तवाद के रूप म दिये हैं यदि इनका सभी राष्ट्र अपने जीवन मे प्रामाणिकता के साथ प्रयोग कर तो नि सकोच कहा जा सकता है कि ये तनाव प्रबल वेगवती वायु के सम्मुख बादलो की तरह तितर-बितर हो जायेंगे।

अहिंसा—सहयोग सहअस्तित्व की भावना तथा सब को समान रूप में जीने का अधिकार प्रदान करेगी।

अपरिग्रह—आवश्यकता से अधिक सग्रह न करने तथा अधूरे सुख सुविधा प्राप्त व्यक्तियो एव राष्ट्रो की सहायता और उन्नति के लिए प्रवहमान स्रोत बनेगा।

अनेकान्त—समन्वय की दृष्टि के साथ एक दूसरे के विचार दर्शन को जाचने-परखने का अवकाश देगा। इससे विभिन्न शासनपद्धतियो के कारण होने वाला सघर्ष दूर होगा।

उक्त तीन सिद्धात एक ऐसी पावन त्रिवेणी हैं जिसमे अवगाहन करने से युग युगातर से अतर मे उठने वाले आक्षेप, स्पर्धा, ईर्ष्या द्वेष के शोले बुझ जायेंगे और सभी राष्ट्र परस्पर भ्रातृभाव का अनुभव करते हुए सुखद जीवन यापन करने लगेंगे। राष्ट्र पिता गाधी जी ने भी विश्व के तनाव को दूर करने के लिए कुछ प्रयोग बताए हैं जो मानवता के सिद्धान्त पर आधृत है। वे ये हैं[3]—

*उत्पादन का विकेन्द्रीकरण और क्षेत्रीय आत्म निर्भरता।

*सम्पत्ति और निर्धनता की पराकाष्ठाओ का निराकरण।

*सर्वधर्मों के प्रति समान आदर भाव।

*समाज मे ऊँच और नीच के भेद का अन्त।

*मानवता की भलाई के लिए सम्पत्ति का सरक्षण।

*जीवन के नैतिक-स्तर का विकास।

*भौतिक-जीवन की विलासिता के स्तर का गिराना।

*शान्ति और सुरक्षा के लिए कम से कम पशुबल का प्रयोग।

*प्रतीकार और आक्रमण की भावना का सर्वथा अन्त।

उक्त सूत्र अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने मे पूर्ण कामयाब हो सकते हैं। कोई भी समाज या देश बिना कठिनाई का अनुभव किये ही इनका पालन कर सकता है। मेरे विचार से भारत को ही इस विषय मे अगवानी करनी होगी। उसके पश्चात उनके मित्र राष्ट्र रूस आदि को।

यह तो प्रसन्नता की बात है कि हाल ही मे भारत तथा अन्य राष्ट्रो के शातिपूर्ण सह अस्तित्व की वार्ता के सत्प्रयत्न से

३ गांधी और विश्वशांति पृ० ५६ —देवीदत्त शर्मा

रूस तथा अमेरिका की कठोर नीति में कुछ नरमी आई है। शीत युद्ध में भी कमी हुई है और अब यह आशा व्यक्त की जाती है कि दोनों राष्ट्र निकट भविष्य में एक दूसरे के बहुत समीप आजायेंगे। यदि प्रत्येक राष्ट्र के नेतागण कुछ वर्षों तक अपना सतप्रयत्न इसी प्रकार जारी रखेंगे तो निश्चय ही अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ सुलझ जाएँगी। युद्ध के गडगडाते बादल छिन्न भिन्न होकर बिखर जायेंगे और मानव पूर्ण शान्ति की सांस ले सकेंगे।

७ | अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता

•

आज अंतराष्ट्रीय भावना को विकसित करने के लिए किसी क अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था पद्धति को कायम करना अनिवार्य है, तससे राष्ट्रों का पारस्परिक सम्बन्ध सद्भाव एवं मैत्री से सयोजित ना रह सके। इसके लिए बहुत से चिंतकों का यह चिन्तन चल हा है कि विचारों के आदान प्रदान के लिए यदि किसी अन्तर्रा तीय भाषा का निर्माण हो जाए तो अत्युत्तम होगा। इसमे विचारो आदान प्रदान मे सुविधा तो होगी ही साथ ही विश्व मे मत्री- ाव और शान्ति की प्रतिष्ठा भी हो सकेगी। एक बार गाल्सवर्दी अपने विचार व्यक्त करते हुए बहुत सुन्दर बात कही थी कि— राष्ट्रों मे परस्पर विचार विनिमयार्थ सभी देशों के शिक्षित लोगों के ए एक सामान्य भाषा की आवश्यकता है, इसीसे ही विश्व शान्ति स्थापना होगी और सच्ची सभ्यता का आविर्भाव होगा। आज युग में, जबकि कोई भी वक्ता विश्वशान्ति का उल्लेख किय ना अपना स्थान नहीं बना सकता, म इसी प्रतीक्षा में हू कि यह श्व शान्ति सस्थापना की भावना के अनुकूल हो और अन्तर्राष्ट्रीय ापा का निर्माण हो। जब सभी देशों के शिक्षित लोग सामान्य ापा द्वारा परस्पर विचार विनिमय कर सकेंगे तभी शान्तिदेवी श्व के रगमच पर पदार्पण करेगी।" उक्त विचार के प्रकाश मे न्तन करते है तो सबसे पहले हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित ता है कि हम किस भाषा को अंतर्राष्ट्रीय भाषा बना सकते हैं र कौन सी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने की योग्यता रखती ? आज अंतर्राष्टीय भाषा की आवश्यकता सभी महसूस करते

हैं। किन्तु उसके निर्माण के लिए कितना वे कदम आगे बढ़ सकेंगे, यह चिन्तनीय है। इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ विद्वानों ने कुछ स्वतन्त्र भाषाओं का निर्माण भी किया है, साथ ही उनका प्रचार प्रसार भी। किन्तु वे भाषाएँ किसी सीमा विशेष में ही आकर अवरुद्ध हो गई, आगे न बढ़ सकीं। फिर भी उनके सतप्रयत्न इस क्षेत्र में जारी हैं। आशा है वे भविष्य में सफल हो सकेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने का गौरव वही भाषा प्राप्त कर सकती है जो अधिक से अधिक समृद्ध विकसित और मानवीय विचारों को प्रकट करने में समर्थ हो। जो भाषा देश या प्रान्त के घेरे में आबद्ध है, वह अधिक समय तक जीवित भी नहीं रह सकती, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने की तो बात ही दूर। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा वही हो सकती है, जिसे अधिक से अधिक राष्ट्रों के निवासी जानते और बोल सकते हों और जिसके माध्यम से सरलता से विचारों का आदान प्रदान किया जा सके। विज्ञान, कला, व्यापार आदि के क्षेत्र में भी जिसका पूर्ण उपयोग हो सके।

दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि सभी देशों के मान्य विद्वान एक स्थान पर एकत्रित हों और विविध भाषाओं से तत्व निकाल कर एक मिलीजुली विशिष्ट भाषा का निर्माण करें। उसका व्याकरण सरल एवं सुबोध हो। सभी जन सरलता से उसका अध्ययन कर सकें। ऐसी भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में सर्वानुमति से निर्धारित किया जाए। इससे विश्व की समस्या के समाधान में पर्याप्त योग मिलेगा, और शान्ति का प्रचार प्रसार भी होगा।

८ | युद्ध और अहिंसक का कर्त्तव्य

•

कुछ समय पूर्व एकबार मार्शल टीटो ने कहा था—'आखिर आज के जमाने में राष्ट्र युद्ध में क्या उतरेंगे? किन प्रश्नों को लेकर? किस हेतु को लेकर लोगों का संहार हो? हिटलर का तो अपने जमाने में सारे विश्व पर विजय प्राप्त करने का भूत सवार था। पर आज तो कोई समझदार आदमी ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकता। वह जमाना गया, जब आर्थिक हेतु को लेकर लड़ाईयां लड़ी जाती थीं। अब तो उपनिवेशवाद के दिन भी लद गये। बस, क्या रह गया? समाज व्यवस्था में भेद? पर क्या लड़कर जबर्दस्ती से हम किसी को अपनी पसन्दगी की समाजव्यवस्था लाने से रोक सकते हैं? इसके लिए लड़ाई लड़ना बहुत मँहगा पड़ जाएगा।" उक्त कथन उन राष्ट्रों के लिए एक महान् सन्देश है जो आणविक अस्त्रों के अम्बार लगाकर युद्ध के मैदान में कूदना चाहते हैं।

वस्तुतः युद्ध मानव की जघन्यतमवृत्ति का एक रूप है। इस पशाचिक-लीला में अब तक किसी को भी शान्ति नसीब न हो सकी। हिरोशिमा और नागासाकी के बीभत्स व दर्दनाक विनाश की कहानियाँ किसने नहीं सुनीं, और सुनकर किसका दिल नहीं पसीजा? हाईड्रोजनबम के विष से प्रभावित तईस मछुओं के घुट-घुटकर प्राण देने की दर्दनाक कहानी से किस मानव का अन्तस्तल नहीं डोल उठा? पर यह सब कुछ होने और देखने के बावजूद शक्ति-लोलुप राष्ट्रों की आँखें नहीं खुलीं और अब भी उनकी आस्था हिंसा और युद्ध पर ही केन्द्रित है। यदि समय रहते युद्ध की वृत्ति पर कड़ा नियन्त्रण न किया गया तथा उसमें दीर्घ-दृष्टि का उपयोग

न किया गया तो, 'जिस बीसवीं शताब्दी ने भौतिकविज्ञान की चमत्कारी शक्तियों को देखा, वही मानवता की चिता धधकती देखेगी और इस पृथ्वी को अपने सामने महाश्मशान के रूप में परिणत होती देखेगी।" यह उन लोगों के अन्तर हृदय का स्वर है, जिन्होंने युद्ध की कटुता प्रत्यक्ष अपनी आंखों से निहार ली है। आज भी हम हिरोशिमा और नागासाकी के ध्वंस का स्मरण करते हैं तो हृदय में कंपकंपी पैदा हो जाती है। सन् १९४५ में ६ अगस्त के दिन जापान के प्रसिद्ध नगर हिरोशिमा पर अणुबम गिराया गया। उस समय नगर और वहां की जनता की क्या दशा हुई? उस नगर में घायल, पर मौत के मुख से बचे हुए एक डाक्टर का आंखों देखा वर्णन पढ़िए—

" बम गिरने के बाद हमारे दुःखों की कथा पूछिये ही नहीं। जिन्हें मौत चाट गई वे सब तो भाग्यशाली सिद्ध हुए किन्तु जो बच गये उनकी दशा बहुत ही बुरी थी।

अस्पताल के सामने घायलों, जले हुओं, अधमरों और मरे हुओं की कतारें लगी थीं। अपने सगे-सम्बन्धियों को खोजने निकले लोग इन कतारों को टटोलते, इधर से उधर ठोकरें खाते, पागलों की-सी हालत में घूम रहे थे और कुछ ऐसे थे कि जिनके दिमाग ठिकाने ही नहीं रहे थे।

दिल दहलाने वाले और छाती फाड़ डालने वाले हाहाकार से हिरोशिमा का आकाश भर गया था।"

× × ×

'उस दिन जो बच्चे घर से पाठशाला जाने निकले थे, वे रास्ते में ही खतम हो गये। पाठशाला का आंगन घायल और मृत बालकों से इस कदर छाया पड़ा था, मानो मसलकर फेंके हुए फूलों की पंखुड़ियाँ हों।"

'कुछ तुरन्त मर गये, कुछ भुनकर और बेहोश होकर पड़े रह गए। कुछ जिनका सारा शरीर झुलस चुका था, होश में थे, पर मौत ने उन्हें अपङ्ग बना दिया था। ये सब वहीं ढेर होकर पड़े रहे। जाते कहाँ? दो दिन बाद जब मौत आकर उन्हें ले गई तभी वे छूटे। मां बाप जिन्दा होते, तभी न वे उनकी खोज करते?

× × ×

"जिनके हाथ-पैर दुरुस्त थे, वे एक-दूसरे की मदद करने में लगे थे। लेकिन मदद करें किस तरह ? दवा-दारू और मरहम-पट्टी करने वाले डाक्टर और नर्स थे ही कहाँ ? दवाएँ या कहाँ से लाएँ ? दवाखाने और उनका सारा साज-सामान तो बीमारों के साथ ही धू धू करके जल रहा था। घर-द्वार, हाट-बाजार सभी साफ हो चुके थे। नगर श्मशान बन गया था। खाने-पान की चीजों और बरतन भाँडों को जुटाने का सवाल मामूली नहीं था।'

"कुछ-कुछ निशानों के सहारे लोगों ने अपने अपने घरों की, जगह का पता लगाया और राख के ढेर में से जिनकी हड्डियाँ मिली, उन्हें इकट्ठा करके और उन्हीं को अपना सगा-सम्बन्धी मानकर उनका अन्तिम संस्कार किया।

"आप उनसे निशानी चाहते, तो वे कहते—'उसके हाथ में अँगूठी थी। देखिए, यह रही पीली धातु की डली।' कौन मेरा, कौन तेरा ? किसने किसका अपना मानकर उसका अन्तिम संस्कार किया ? यमराज ने मेरे-तेरे के सारे भेद भुला देने के लिए ही मानो यह ताण्डव रचा हो, इस प्रकार सब एकाकार हो चुका था।"[४]

द्वितीय युद्ध से व्यथित व्यक्तियों के दिलों में उठने हुए दुःखों के छाले अभी बुझने भी नहीं पाए कि—अमेरिका रूस तथा ब्रिटेन जैसे महाशक्तिशाली राष्ट्र तीसरी लड़ाई के लिए समुद्यत हो उठे हैं। उन्होंने लड़ाई में प्रयुक्त होने वाले बमों का निर्माण कार्य भी बड़ी तेजी से प्रारम्भ कर दिया है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि द्वितीय लड़ाई के दिनों में दोनों पक्षों ने मिलकर जो शक्ति लगाई और उसमें जो जान माल की बर्बादी हुई उसमें कुल पचास लाख टन गोला-बारूद खर्च हुआ, किन्तु इस समय जो अमरिका व रूस ने बम बनाने शुरू किए हैं वे तो ऐसी पैशाचिक शक्ति हैं कि—पचास लाख टन गोला बारूद तो केवल एक दो बमों में ही भरी जा सकती है। इस प्रकार की भयङ्कर शक्ति का अपार संचय उक्त राष्ट्रों ने कर रखा है। आज वे अपने मन में भले ही इतराते हों और यह अनुभव करते हों कि—विश्व शांति का वरदान हमारे हाथ में है। किन्तु युद्ध के अन्तराल में एक ऐसी विभीषिका पनप रही है जो

---

४ हमारे युग का भस्मासुर अणुबम। —सुमद्रा गांधी

रात दिन उन्हें बेचैन कर रही है। इन राकेटों और बमों के रचे गये पहाड़ों पर चिन्तन करने से मानवता सिहर उठती है। न जाने कब, किस व्यक्ति या यंत्र की भूल से, असावधानी से ज्वाला फूट पड़े और भयानक नर-संहार का बीभत्स दृश्य देखना पड़े।

विगत प्रथम महायुद्ध के हानि लाभ के आँकड़े हमारे सामने हैं। 'दोनों पक्षों ने मिलकर ८८ लाख ६७ हजार ५ सौ ७३ लोगों को मौत के घाट उतारा था। २ करोड़ ६ लाख २८ हजार ४५ लोग घायल हुए और अपङ्ग बने थे।" व्यय का अनुमान भी देखिए—"कहा जाता है कि पहली लड़ाई में मनुष्य ने ३५ अरब ४४ करोड़ ४८ लाख पौण्ड यानी करीब ४६ अरब रुपया फूँक दिया।" और लड़ाई का यह पागलपन भी कैसा अजीब है? दसियों सालों की मेहनत से मनुष्य ने अलकापुरी जैसे नगर खड़े किए थे। इन नगरों में बड़े-बड़े महल थे, घर, कारखाने, दवाखाने, विद्यालय, महाविद्यालय, गोदाम अलग अलग विभागों के लिए बड़े-बड़े दफ्तर आदि बनाए गए थे। मनुष्य ने यह मानकर कि ये सब 'दुश्मन' के हैं, उन्हें चकनाचूर कर डाला। समुद्र की छाती पर तैरनेवाले आलीशान जहाजों को 'तैरता हुआ नगर' 'जलपरी' कहकर मनुष्य जिनपर अभिमान करता था, 'दुश्मन' का बताकर उनमें अपने हाथों सुरंग लगाने और उस वैभव को जल-समाधि दिलाने वाले भी मनुष्य ही थे। जिन जहाजों को डुबाया गया, उनमें घायल, बीमार और अपङ्ग सैनिक भी थे और बिना माँ बाप के अनाथ बालक तथा घर-बार खोकर दर दर के भिखारी बने निराधार परिवार भी थे। कैसी यह भयङ्कर बर्बादी! और मनुष्य का यह कैसा पागलपन!"

लड़ाई खतम हुई, दोनों पक्षों ने हार-जीत का लेखा जोखा लगाना शुरू किया। महाभारत के विषाद योग की तरह दुःख, शोक और आँसुओं का घटाटोप विजयी और पराजितों को समान रूप से प्रभावित किए हुए था। विजय का वरण किए हुए लोगों के लिए भी विजय को पहचानना कठिन हो गया था! सबकी आंखों में आँसू और दिलों में खून से रिसने वाले गहरे घाव थे। संसार का साधारण आदमी पुकार उठा, 'नहीं अब नहीं! आगे कभी लड़ाई का नाम नहीं लूँगा।'*

---

१ हमारे युग का भस्मासुर अणुबम। —सुमन गांधी

आज के युद्धप्रिय कुटिल राजनीतिज्ञों को जरा गहराई से विचार-मन्थन करना होगा। वरना विश्व विनाश के अभिशाप से बच नहीं सकेगा। एक अमेरिकी पत्र ने तो यहां तक भविष्यवाणी की है कि "यदि पारमाणविक युद्ध प्रारंभ हुआ, तो ४ से ५ करोड तक अमरिकन घायल होंगे ८० अमरिकी नगर ध्वस्त होंगे और प्रेप्यास्त्र अड्डे, मुख्य हवाईअड्डे और सैनिक महत्त्व के स्थलों का ६० प्रतिशत भाग बर्बाद हो जाएगा और ४० प्रतिशत अमेरिकी उद्योग मटियामेट हो जाएगा।"

दूसरी ओर रूस में—८ से १० करोड रूसी लोग मारे जायेंगे, ३ करोड लोग घायल होंगे। १३० नगर ध्वस्त होंगे और ७० प्रतिशत उद्योग मटियामेट हो जाएगा।'

आगे इस पत्र ने यह भी उल्लेख किया है कि इस बर्बादी के बाद अमरिका १० वर्षों में और रूस २५ वर्षों में पुनः आज की स्थिति में बडी कठिनाई से पहुंच सकेगा।"[६]

उक्त रोमांचक चित्रण से किसके हृदय में विषाद की रेखा न खिंच जाएगी? युद्ध की विभीषिका सर्वत्र फैल चुकी है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक राष्ट्र के सभ्य नागरिकों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे पारमाणविक अस्त्रों की भयंकरता का परिज्ञान करके सामान्य जनता को भी उससे परिचित करें। पर, इस बात का ध्यान अवश्य रहे कि उससे जनता में अधिक भय और उद्विग्नता की स्थिति पैदा न हो। अन्यथा जनता अपनी मन स्थिति का संतुलन नहीं रख सकेगी और वर्तमान की शान्ति को भी खो बैठेगी। अतः विश्व नागरिक की हैसियत से जनता को पारमाणविक विभीषिका से बिल्कुल अनभिज्ञ न रख कर सामान्य तौर से परिचय कराया जाए और अपने अधिकार प्रयोग के कर्तव्य भी समझाये जाएं। साथ ही युद्ध के विरुद्ध वातावरण पैदा करना चाहिए। जब जनता युद्ध के खिलाफ बगावत करेगी तो वहां के शासन-सूत्रधारों का भी जनता का ध्यान रहेगा और वे यह अनुभव करने लगेंगे कि अब तक हमने जनता को 'शान्ति खतरे में' कह कर मिथ्या भुलावे में डाल रखा था, आज उसका पर्दाफाश हो चुका है।

---

६ पारमाणविक विभीषिका पृ० २६-३० —विक्रमादित्य सिंह

रात दिन उन्हें बेचैन कर रही है। इन राकेटों और बमों के रचे गये पहाड़ों पर चिन्तन करने से मानवता सिहर उठती है। न जाने कब, किस व्यक्ति या यंत्र की भूल से, असावधानी से ज्वाला फूट पड़े और भयानक नर-संहार का बीभत्स दृश्य देखना पड़े।

विगत प्रथम महायुद्ध के हानि लाभ के आँकड़े हमारे सामने हैं। दोनों पक्षों ने मिलकर ८८ लाख ६७ हजार ५ सौ ७३ लोगों को मौत के घाट उतारा था। २ करोड़ ६ लाख २८ हजार ८५ लोग घायल हुए और अपङ्ग बने थे।" व्यय का अनुमान भी देखिए—"कहा जाता है कि पहली लड़ाई में मनुष्य ने ३५ अरब ४४ करोड़ ४८ लाख पौण्ड यानी करीब ४६ अरब रुपया फूँक दिया।" और लड़ाई का यह पागलपन भी कैसा अजीब है? दसियों सालों की मेहनत से मनुष्य ने अलकापुरी जैसे नगर खड़े किए थे। इन नगरों में बड़े-बड़े महल थे, घर, कारखाने, दवाखाने, विद्यालय, महाविद्यालय, गोदाम अलग अलग विभागों के लिए बड़े बड़े दफ्तर आदि बनाए गए थे। मनुष्य ने यह मानकर कि ये सब 'दुश्मन' के हैं, उन्हें चकनाचूर कर डाला। समुद्र की छाती पर तैरनेवाले आलीशान जहाजों को 'तैरता हुआ नगर' 'जलपरी' कहकर मनुष्य जिनपर अभिमान करता था, 'दुश्मन' का बनाकर उनमें अपने हाथों सुरंग लगाने और उस वैभव को जल-समाधि दिलाने वाले भी मनुष्य ही थे। जिन जहाजों को डुबाया गया, उनमें घायल, बीमार और अपङ्ग सैनिक भी थे और बिना माँ बाप के अनाथ बालक तथा घर-बार खोकर दर दर के भिखारी बने निराधार परिवार भी थे। कैसी यह भयङ्कर बर्बादी! और मनुष्य का यह कैसा पागलपन!"

लड़ाई खतम हुई, दोनों पक्षों ने हार-जीत का लेखा जोखा लगाना शुरू किया। महाभारत के विषाद योग की तरह दुःख, शोक और आँसुओं का घटाटोप विजयी और पराजितों को समान रूप से प्रभावित किए हुए था। विजय का वरण किए हुए लोगों के लिए भी विजय को पहचानना कठिन हो गया था। सबकी आँखों में आँसू और दिलों में खून से रिसने वाले गहरे घाव थे। संसार का साधारण आदमी पुकार उठा, 'नहीं, अब नहीं। आगे कभी लड़ाई का नाम नहीं लूँगा।'"[४]

---

४ हमारे युग का भस्मासुर अणुबम। —सुभद्रा गांधी

आज के युद्धप्रिय कुटिल राजनीतिज्ञों को जरा गहराई मे विचार मन्थन करना होगा। वरना विश्व विनाश के अभिशाप से बच नही सकेगा। एक अमरिकी पत्र ने तो यहाँ तक भविष्यवाणी की है कि "यदि पारमाणविक युद्ध प्रारंभ हुआ तो ४ से ५ करोड तक अमरिकन घायल होंगे, ६० अमरिकी नगर ध्वस्त होंगे और मिसाइल्स अड्डे, मुख्य हवाईअड्डे और सैनिक महत्त्व के स्थलों का ६० प्रतिशत भाग बर्बाद हो जाएगा और ४० प्रतिशत अमरिकी उद्योग मटियामेट हो जाएगा।'

दूसरी ओर रूस मे—८ से १० करोड रूसी लोग मारे जायेंगे, २ करोड लोग घायल होंगे। १३० नगर ध्वस्त होंगे और ७० प्रतिशत उद्योग मटियामेट हो जाएगा।'

आगे इस पत्र ने यह भी उल्लेख किया है कि इस बर्बादी के बाद अमरिका १० वर्षों मे और रूस २५ वर्षों मे पुन आज की स्थिति मे बडी कठिनाई से पहुंच सकेगा।"[६]

उक्त रोमांचक चित्रण से किसके हृदय मे विषाद की रेखा न खिंच जाएगी? युद्ध की विभीषिका सर्वत्र फैल चुकी है। ऐसी स्थिति मे प्रत्येक राष्ट्र के सभ्य नागरिकों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे पारमाणविक अस्त्रों की भयंकरता का परिज्ञान करके सामान्य जनता को भी उससे परिचित करें। पर, इस बात का ध्यान अवश्य रहे कि उससे जनता मे अधिक भय और उद्विग्नता की स्थिति पैदा न हो। अन्यथा जनता अपनी मन स्थिति का संतुलन नही रख सकेगी और वर्तमान की शान्ति को भी खो बैठेगी। अत विश्व नागरिक की हैसियत से जनता को पारमाणविक विभीषिका से बिल्कुल अनभिज्ञ न रख कर सामान्य तौर से परिचय कराया जाए और अपने अधिकार प्रयोग के कर्तव्य भी समझाये जाएँ। साथ ही युद्ध के विरुद्ध वातावरण पैदा करना चाहिये। जब जनता युद्ध के खिलाफ बगावत करेगी तो वहा के शासन सूत्रधारों को भी जनता का ध्यान रहेगा और वे यह अनुभव करने लगेंगे कि अब तक हमने जनता को 'शान्ति खतरे में' कह कर मिथ्या भुलावे मे डाल रखा था, आज उसका पर्दाफाश हो चुका है।'

६ पारमाणविक विभीषिका पृ० २६ ३० —विक्रमादित्य सिंह

इससे उन्हे अधिक शस्त्रास्त्र के निर्माण मे बल नही मिलेगा ।

इसके लिए यह आवश्यक है कि देश के प्रत्येक स्त्री और पुरुष युद्ध व युद्ध की तैयारी को घृणा की दृष्टि से देखे और सुसगठित होकर युद्ध को निर्मूल बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे । जैसा कि विश्वशाति सेना के एशियाक्षेत्र के मत्री श्री सिद्धराज ढड्ढा ने कहा है—"सभावित सर्वनाश से अगर दुनिया को बचाना हो तो सिवा इसके कोई चारा नही कि हर देश मे जगह जगह जन साधारण मानवजाति के प्रति इस घोर अपराध के खिलाफ बगावत करने के लिए उठ खडे हो।" युद्ध के विरुद्ध वातावरण तैयार करने लिए हमारे यहाँ शान्तिआन्दोलन' के जैसी एक सक्रिय सस्था हो, जो अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण का ज्ञान स्वय प्राप्त करे, और जनता को भी समय समय पर उसकी यथोचित जानकारी देती रहे, जिस से जनता सतर्क बनी रहे ।

उक्त सस्था दूसरा कार्य यह करे कि जिन देशो के बीच आये दिन जो गलत फहमिया फैलती है या फैलायी जाने का उपक्रम किया जाता है और जिनसे भविष्य मे बहुत हानि की सम्भावना रहती है, उन्हे निर्मूल करे ।

तीसरी बात—विश्व के प्राय सभी देशो मे आजकल जो शिक्षा का पाठ्यक्रम प्रचलित है, वह अधिकतर भौतिकवाद पर ही आधारित है, आध्यात्मिक तथा नैतिकमूल्यो पर बहुत कम । ऐसी स्थिति मे विद्यार्थियो के मानस मे भौतिकलिप्सा का उद्भव होना स्वभाविक है, और वह भौतिकलिप्सा ही उन्हे बरबस युद्ध जैसे अनैतिक कार्यों की तरफ खीचती है । अत जीवन मे नैतिक मूल्यो के प्रति आकर्षण पैदा करने के लिए विद्याकेन्द्रो मे आध्यात्मिक एव नैतिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाए ।

भूदान आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य विनोबा की भाषा मे—"हम अणुअस्त्रो की सहारक शक्ति का मुकाबला तभी कर सकते हैं, जब अध्यात्म और विज्ञान का एक साथ जोड दिया जाए । जैसा कि आज यह सिद्ध हो चुका है कि गरीबी और अज्ञान को विज्ञान और तकनीकी ज्ञान से दूर कर सकते हैं, वैसे ही विश्व के सहार का डर आध्यात्म की राह पर चल कर मिटा सकते है ।"

०

६ | अध्यात्मवाद का निर्झर

विश्वशान्ति की स्थापना मे अध्यात्मवाद अपना एक विशिष्ट एव सक्रिय-योग प्रदान कर सकता है। किन्तु आज के इस रगीले भौतिकवादी युग के मानव ने अध्यात्मवाद की सर्वथा उपेक्षा कर रखी है। वह त्याग से भोग की तरफ, अहिंसा से हिंसा की तरफ, अपरिग्रह से परिग्रह की तरफ खिंचता जा रहा है। विज्ञान की प्रचुर चमत्कार पूर्ण कृतियो से पूर्ण रूप से आकृष्ट है। परिणाम स्वरूप आज भारतीय दर्शन के उस आध्यात्मिक जागरण के उज्ज्वल पथ को उसने विस्मृत कर दिया है।

एक युग था जब भारत का चिन्तन अध्यात्मवाद से अनुप्राणित था, और उसके प्रकाश मे आत्मदर्शन की मीमासा होती थी। 'जे एग जाणइ से सव्व जाणइ' अर्थात् एक आत्मा को जानने वाला सबको जान लेता है, भगवान महावीर के इस चिरन्तन अध्यात्मवाद के चिन्तन से भारतीय दर्शन का समस्त चिन्तन परिस्पदित हो रहा था।

वर्तमान मे हमे यत्र-तत्र अध्यात्मवाद के जो प्रमत-कण देखने को मिल रहे हैं, वे सब भगवान महावीर तथागतबुद्ध आदि की विशिष्ट साधना आराधना का सुफल है। क्योकि हमारे यहा अध्यात्मवादी चिन्तक समय-समय पर प्राय युगानुसारिणी भाषा मे अपने करुणारस स्नात अन्त करण से स्फूर्ति नूतन चितन का उपहार प्रस्तुत करते रहे हैं, और जन-मानस की आध्यात्मिक पिपासा की तृप्ति करते रहे हैं।

अध्यात्मवाद जीवन का सही दिशा-दर्शन देता है। इतना ही नहीं, जड क्या है? चेतन क्या है? बधन क्या है? मुक्ति क्या

है ? तथा इनका पारस्परिक क्या सम्बन्ध है ? आदि आदि का भी परिज्ञान कर पाता है। अध्यात्मवाद का सम्बन्ध आत्मा से है वह विभिन्न रूप, रंग, लिंग आदि के भौतिक परिवेश में छिपे चैतन्य का शुद्ध दर्शन कराता है, और उसमें आत्म तुल्य अनुभूति जगाता है। वस्तुतः आत्मा के निज गुण, निज धर्म, का दर्शन ही अध्यात्मवाद है। जीवन की पवित्रता, जीवन की सरलता ही अध्यात्मवाद की मूल चेतना है, प्राणभूत तत्व है। दूसरी भाषा में आत्मस्वभाव में रमण की जो दशा है चैतन्य दर्शन की जो भावना है वही आध्यात्मिकता है।

इस अध्यात्मवाद से व्यक्ति विशेष ही नहीं, देश, समाज राष्ट्र तथा समूची मानवजाति अपना विकास कर सकती है, क्योंकि व्यक्तियों का समूह ही समाज है। अतः अपने संरक्षण, संवर्द्धन व सुखों की पराकोटि तक पहुँचने के लिए अध्यात्मवाद की नितान्त अपेक्षा है।

आज का नव मानस, जो भौतिकवाद में विशेष आस्थावान् है, वह सोचता है कि आज का युग विज्ञान का युग है। इस वैज्ञानिक युग में जहाँ नानाविध प्रयोगों, अन्वेषणों और आविष्कारों द्वारा भौतिक सुख समृद्धि का विकास हो रहा है, वहाँ अध्यात्मवाद जैसी शुष्क व त्यागप्रधान प्रवृत्ति कैसे विकास पा सकती है ? किस प्रकार मानवीय भावनाओं के साथ अपना मेल मिलाप बिठा सकती है ? और आज के युग में उसकी आवश्यकता भी तो क्या है ? यह तो केवल ऋषि महात्मा लोगों की सुखात्मक कल्पना मात्र है ?"

किन्तु हम यह विस्मृत नहीं कर देना है कि आज जिस द्रुतगति से विज्ञान फरिश्ते की भांति पंख लगाकर विश्व गगन में उड़ानें भर रहा है यदि वह गलत दिशा की तरफ चला गया तो विश्व की क्या दशा होगी ? अतः विज्ञान के साथ दिशादर्शकयंत्र रूप अध्यात्मवाद को सतत साथ रखना ही होगा। आचार्य विनोबाभावे के शब्दों में— 'रफ्तार की यह शक्ति जितने जोर से बढ़ेगी, उतना ही जोरदार दिशा दिखाने वाला यंत्र होना चाहिए, वह उतना ही सक्षम होना चाहिए। बैलगाड़ी धीरे धीरे जायेगी, लेकिन मोटर को, २०० मील प्रतिघंटा रफ्तार की मोटर को, फौरन मोड़ने के लिए यंत्र नहीं रहेगा तो मोटर टकरायेगी और चकनाचूर हो

जाएगी। रेल का इंजन तेजी से दौड रहा है उसे रोकना है, मोड़ना है, वहां यत्र नहीं होगा, तो इंजन गिर जाएगा। बग शक्ति जितनी जोरदार उतनी ही जोरदार दिशा-दर्शक शक्ति होना चाहिए। जितना जोरदार साइन्स होगा, उतना ही जोरदार आध्यात्मिक विचार होना चाहिए। अध्यात्म दिशा दिखायेगा साइन्स रफ्तार बढ़ाएगा, वेग बढ़ाएगा।

अब दिन व दिन साइन्स बढ़ता ही रहेगा। विज्ञानशक्ति इस जमाने में उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जहाँ तक मैं समझता हू, साइन्स ने इन ९ सालों में इतनी प्रगति की है कि पहले के १००० सालों में नहीं की। जहाँ साइन्स इतना जोरदार बढ़ा है, वहाँ दिशा दिखाने वाले यन्त्र की अत्यन्त आवश्यकता है। अध्यात्म की आवश्यकता जितनी आज है उतनी पहले कभी नहीं थी।' *

अध्यात्मवाद आज के युग का वास्तविक द्रष्टा है। शान्ति का सर्जक है और है शान्ति का जनक। यह उन ऋषियों की जीवन साधना का अर्क है, मधु है नवनीत है जिन्होंने अपने जीवन को सयम के कटकाकीर्ण पथ में तप ध्यान व निदिध्यासन की कठोर साधना में गाला था, उसका परिमार्जन किया था। उसे सजाया-सजोया था व अपने जीवन की वास्तविक मंजिल प्राप्त की थी। आज इस अध्यात्मवाद को जीवन की धरती पर उतारना है। देश देश के और राष्ट्र राष्ट्र के प्राङ्गण में इसे अभिगुञ्जित करना है। तथा आनेवाले भावी कष्टों व अभावों से विश्व को बचाना है।

अध्यात्मवाद से सम्पूर्ण विश्व लाभान्वित हो सकता है। तभी तो आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि विश्व की निगाह शान्ति की टोह में भारत की ओर विशेष रूप से लगी हुई है। राम, कृष्ण बुद्ध तथा महावीर के प्रेम भरे सन्देशों में न जाने क्या जादू भरा हुआ है जिन्हें पाने के लिए पश्चिमी देश बड़े उत्सुक नजर आते हैं। आज जिस प्रकार विज्ञान (साइन्स) से प्रभावित होकर भारतीय पश्चिम को साश्चर्य दृष्टि से अवलोकन करते हैं, वैसे ही पश्चिम अध्यात्मवादी भारत को शान्ति का अमिट-स्रोत समझकर उसकी ओर लालायित है।

अध्यात्मवाद भारत की बहुत बडी विरासत है। आज विश्व के रगमच पर राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक जो मसले दिखलाई पड रहे हैं और ससार को परेशान कर रहे हैं, यदि इसका कोई हल निकल सकता है तो वह एकमात्र अध्यात्मवाद ही है। इसके द्वारा ही राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क बदल सकते हैं और विश्व मे सुख-शान्ति का सचार हो सकता है बशर्ते कि वे अध्यात्मवाद की ओर मुडें। सच तो यह है कि आज विश्व को अध्यात्मवाद की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि शान्ति के प्रसार मे राष्ट्रों के पारस्परिक सौहार्दपूर्ण मैत्रीमय सम्बन्ध की। पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि—अध्यात्मवाद के इस निर्झर मे अवगाहन करने से विश्व को शान्ति मिलेगी और अवश्य मिलेगी।

१० | विश्वशान्ति में भारत का योगदान

आज स्वतंत्र भारत के समक्ष विविध समस्याएं उलझी पड़ी हैं। उन्हें सुलझाने के लिए अनेकों प्रयत्न किये गये और किये जा रहे हैं। किन्तु आज भारत के भाग्य की यह विचित्र विडम्बना ही है जो अब तक उसे जिस रूप में सफलता प्राप्त होनी चाहिये थी नहीं हो सकी। सच तो यह है कि भारत का स्वतंत्रता की प्राप्ति हो जाने के बाद भी उस स्वतंत्रता के आनंद की अनुभूति नहीं हुई। उसके समक्ष एक-पर एक नयी नयी समस्याएँ आती रहीं और वह अपना विशिष्ट रूप धारण करती गई। भारतीय सरकार स्वयं इस बात का अनुभव करती है, जानती है, और उन्हें सुलझाने का अथक प्रयत्न भी करती है। किन्तु अबतक संतोषजनक स्थिति दृष्टिगत नहीं होरही है। कतिपय समस्याएँ तो ऐसी हैं जो आये दिन परेशान किया ही करती हैं। गोआ पुर्तगाल की समस्या, दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के साथ अभद्र व्यवहार तथा वर्ग भेद नीति की समस्या, श्रीलंका में प्रवासी भारतीयों की समस्या तथा काश्मीर की समस्या, चीन और भारत का सीमाविवाद, पाक और भारत का कटुतापूर्ण सम्बन्ध। कुछ ऐसे मसले भी हैं जो अन्तर्राष्ट्रीयता की कड़ियों से बँधे हैं, व कुछ मसले राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों पर टिके हैं। उक्त समस्याएँ देश को निरन्तर परेशान कर रही हैं। संयुक्तराष्ट्रसंघ भी अभी तक इसका कोई व्यवहार्य हल नहीं निकाल सका, आशा है भविष्य में कोई मार्ग निकल आएगा।

भारत की अपनी आन्तरिक समस्याएँ तो अनेकों हैं, आर्थिक भी, सामाजिक भी। पिछड़ापन, गरीबी, निरक्षरता, खाद्याभाव, भाषा-विवाद और प्रान्तीय झगड़े आदि कई समस्याएँ हैं जिनको हल करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

जो हो, पर भारत ने इन विगत कुछ वर्षों मे औद्योगिक क्षेत्र मे पर्याप्त विकास किया है। अब भारत को हर समय विदेशों पर निर्भर रहने की विशेष आवश्यकता नहीं है। आज भारत मे बहुत से कल-कारखाने खुल गये हैं जिन मे कच्चा पक्का सभी प्रकार का माल निर्मित होता है। मोटर और विमान आदि के पुर्जे यहीं बनने लग गये है। जेट विमान जस लडाकू यान भी यहा तैयार होने लगे है। चितरंजन का कारखाना तो प्रतिदिन एक रेल्वे इंजन तयार कर क द देना है। फिर भी अभी बहुत-सी कमियां हैं। फिलहाल भारी मशीनो के लिए तो भारत को विदेशो का मुंह ताकना ही पडता है। इसी प्रकार इजीनियरिंग व चिकित्सा आदि क्षेत्रो मे भारत अब भी बहुत पीछे है। तभी तो आज भारतीय सरकार पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक विकास पर बल प्रदान कर भारी मशीनों के निर्माण मे अधिक सलग्न परिलक्षित हो रही है।

इस औद्योगिक उन्नति की तुलना म भारत ने शान्ति प्रियता के रूप मे जो उन्नति की है वह इससे हजारगुनी महत्वकी है। आज विश्व के सभी राष्ट्रो मे भारत एक तटस्थ शान्तिप्रेमी राष्ट्र गिना गया है। यह प्रत्येक समस्या का हल शान्ति व अहिंसात्मक नीति से चाहता है। इसी का यह सुफल है कि भारत ने पचशील जसे महान् सिद्धान्त प्रदान करके विश्व पर बहुत बडा उपकार किया है। यह राष्ट्रो की परस्पर विरोधी भावनाओ मे भी सामजस्य तथा समन्वय करने वाले सिद्धान्त के रूप म प्रमाणित हुआ है। इसी कारण आज यह जन-जन के नैतिक आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। इसके प्रति विदेशी राष्ट्रो ने अपार आस्था प्रकट की है। आइजनहॉवर को तो कहना पडा—"पचशील नीति से पूव विश्व म इतनी सदभावना नही फली थी जितनी आज फैली है।"

तटस्थ वदेशिक नीति के कारण चिरकाल तक भारत को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रो म सदेहात्मकदृष्टि से देखा जाता रहा, किन्तु अब भारत को अधिक निकटता से देखा जा रहा है शान्ति का प्रहरी समझा जा रहा है। वास्तव मे भारत न कई प्रसगो पर शान्ति के लिए उल्लेखनीय काय किये हैं। कोरिया और इण्डोचाईना के युद्ध को रोकने वाला भारत ही था। भारत के प्रयत्नो से वह महाविनाश लीला रुकी थी। वियतनाम-समस्या पर भारत प्रारम्भ से ही शांति

और न्याय के पक्ष पर चल रहा है यद्यपि इस कारण उसे अमेरिका जैसे सहयोगी देश का रोष भी सहना पड रहा है। पाकिस्तान युद्ध में विजयी होने पर भी उसने शान्ति के लिए अपनी ओर से पहल की और ताशकन्द की शान्ति वार्ता मे वह हर मूल्य पर शांति स्थापना के लिए प्रस्तुत हो गया। वर्तमान के अरब इजरायल संघर्ष म भी उसने शांति और न्याय के लिए यह नही देखा कि इसने कुछ मित्र व सहयोगी राष्ट्र कितने नाराज होंगे ?

विश्व की घटनाएँ साक्षी है कि भारत प्रारम्भ म ही इस नीति पर चलता रहा है, जहा भारत ने कहीं विश्व के किसी भूभाग पर आग सुलगती देखी, वहीं पहुच कर यथाशक्ति बुझाने का प्रयत्न किया। भारत के प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री नेहरू की विदेश यात्राएँ व शान्ति वार्ताएँ भी विश्व के राष्ट्रो म शांति पूर्ण सह अस्तित्व की भावना को विकसित करने वाली सिद्ध हुई हैं। आज उनकी उत्तराधिकारी प्रधानमन्त्रिणी इन्दिरा गांधी म भी यही आशा की जाती है कि वह शान्ति क क्षेत्र म भगवान महावीर और महात्मा गांधी के आदर्शों को लेकर शान्ति की एक अभिनव ज्योति प्रज्ज्वलित करेगी।

११ | अहिंसा बनाम विश्वशान्ति

•

आज विध्वस और प्रलय के कगार पर खडे विश्व को हिंसात्मक शक्तियो के आक्रमण से बचाना बहुत जरूरी है। पर किस प्रकार बचाना, यह एक समस्या है, जिस पर गंभीर-चिन्तन करना अपेक्षित है। व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण, राष्ट्र द्वारा राष्ट्र के उत्पीडन तथा आर्थिक एव सामाजिक वषम्य के कारण सभी उद्विग्न बने हुए हैं। दु ख, शोक व सताप मे सतप्त हैं। कहीं भी शान्ति दृष्टिगत नही हो रही है। इस विषम अवस्था मे आर्यावर्त के महामानव भगवान् महावीर द्वारा प्रदत्त अहिंसा का दिव्यसन्देश ही हमारे लिए पथ प्रदर्शक बन सकता है। यही एक मात्र ज्योति है, जिसका समुज्ज्वल और शात प्रकाश युद्ध की तिमिराच्छन्न निशा के अधकार को दूर कर विश्व मे शाति का महाप्रकाश जगमगा सकता है।

अहिंसा चिरन्तन काल से मानवता का सरक्षण करती रही है। जब कभी ससार म विपत्ति के बादल उमड-घुमडकर आए, शोक की बिजलिया चमकी और अन्तर मे शोक-सन्ताप की विभीषिका दहकने लगी, तभी अहिंसा शाति का पगाम बनकर सम्मुख आकर खडी हो गई। उसने प्रलय के मुख मे जाते हुए विश्व को बचा लिया। यह है अहिंसादेवी की प्राणवानशक्ति। इसी शक्ति का आज का युग उदबुद्ध करने की आवश्यकता अनुभव कर रहा है, क्योकि अहिंसा मे ही विश्व सुरक्षित रह सकता है। यह समस्त प्राणियो का विश्राम स्थल है, क्रीडा भूमि है और मानवता का शृङ्गार। जैसे पृथ्वी जीवा

का आधार आश्रय है, वैसे ही प्राणिमात्र का आधारस्थल शांति अर्थात अहिंसा है। अहिंसा का सिद्धांत ध्रुव शाश्वत एवं वैज्ञानिक है। यह सिद्धान्त जीवन के सभी पहलुओं का स्पर्श करता है। सभी क्षेत्रों में इसका वे रोकटोक प्रवेश है। वह कभी कहीं असफल नहीं होता है। इस सम्बन्ध में गांधी जी के विचार प्रेक्षणीय हैं—'मैंने जीवन के हर क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग किया है, घर में, संस्थाओं में आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में, ऐसे एक भी मौके का मुझे स्मरण नहीं है, जहाँ अहिंसा निष्फल हुई हो। जहाँ पर कहीं निष्फलता देखने में आयी, मैंने उसका कारण अपनी अपूर्णता को समझा है।" गांधी जी ने अहिंसा को साधन नहीं, साध्य माना है और इसी के जरिये सत्ता परिवर्तन जैसे दुष्कर कार्य को सम्भव बना कर दिखाया है, जो तब तक युद्ध से ही सम्भव माना जाता था। उन्होंने सत्याग्रह, असहयोग सविनय आज्ञाभंग आदि अहिंसा प्रधान आन्दोलन प्रणाली का आविष्कार किया।

गांधी जी की अहिंसा पर कितनी गहरी आस्था थी यह निम्न पंक्तियाँ स्पष्ट कर रही हैं—'मैं यह दावा नहीं करता कि मैं अपनी पद्धति का जनक हूँ पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मैं इस मंत्र का द्रष्टा मात्र हूँ। अपनी अनुभूति के द्वारा मैंने प्रत्यक्ष रूप में उसे उसी प्रकार देखा है जैसे—अपने सामने नगे वृक्षों को देख रहा हूँ। भारत का उद्धार इसी पद्धति से होगा। आज देवता भी मुझे इस विश्वास से विरत नहीं कर सकते।'

वस्तुतः अहिंसा का सामर्थ्य असीम है। संसार की जटिल से जटिल समस्या अहिंसा के द्वारा बहुत सुन्दर ढंग से सुलझाई जा सकती है और अहिंसा द्वारा युद्ध, अन्याय, अत्याचार का अन्त किया जा सकता है, अब यह विश्वास काल्पनिक नहीं रहा। दलित व शोषित वर्ग उन्नति का अवसर पा सकते हैं तो वह अहिंसा के अभियान से ही। किन्तु आवश्यकता है इसे जीवन में सक्रिय रूप देने की। अहिंसा—नीति या पालिसी की वस्तु नहीं है आचरण में लाने की वस्तु है। डाक्टर बेणीप्रसाद के विचारों में—'सबसे ऊँचा आदर्श जिसकी कल्पना मानवीय मस्तिष्क कर सकता है, अहिंसा है, अहिंसा के सिद्धान्त का जितना व्यवहार किया जाएगा उतनी ही मात्रा में सुख शान्ति विश्व मण्डल में बढ़ेगी। लौकिक जीवन में सुख शान्ति के

लिए आन्तरिक सामजस्य की बडी आवश्यकता है जो अहिंसा से ही सम्भव है।"

सारांश—यदि आज के राजनीतिज्ञ, अहिंसा के मूल-मन्त्र को समझ लें तथा उनके मस्तिष्क में अहिंसात्मक प्रवृत्तियो पर दृढ आस्था जग जाए तो निश्चय ही विश्व में शान्ति की सौरभ महक उठेगी।

प
रि
शि
ष्ट

प्रस्तुत पुस्तक के
टिप्पण में प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची

●

१ उत्तराध्ययन सूत्र
२ आचाराङ्ग सूत्र
३ प्रश्नव्याकरण सूत्र
४ दशवकालिक सूत्र
५ सूत्रकृताङ्ग सूत्र
६ दशवकालिक चूर्णि
७ ओघनियुक्ति
८ भगवती सूत्र
९ तत्वार्थसूत्र
१० प्रश्नव्याकरणवृत्ति
११ आवश्यक नियुक्ति
१२ महाभारत
१३ मनुस्मृति
१४ महापुराण
१५ ऋग्वेद
१६ षड्दर्शनसमुच्चय
१७ औपपातिक सूत्र
१८ धम्मपद
१९ बौद्ध धर्म क्या कहता है ?—कृष्णदत्त भट्ट
२० जैन धर्म क्या कहता है ? „
२१ वैदिक धर्म क्या कहता है ? „
२२ पारसी धर्म क्या कहता है ? „

२३ ईसाई धर्म क्या कहता है ? ,,
२४ इस्लाम धर्म क्या कहता है ? ,,
२५ यहूदी धर्म क्या कहता है ? ,,
२६ आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति
२७ दर्शन और चिन्तन—पण्डित सुखलालजी
२८ दीघनिकाय (महापरिनिब्बाण सुत्त)
२९ गाथा
३० मत्ती
३१ लूका
३२ मानव भोज्य मीमासा
३३ ऋषभदेव एक परिशीलन—देवेन्द्र मुनि, शास्त्री
३४ आधुनिक विज्ञान और अहिंसा—गणेश मुनि, शास्त्री
३५ आइन्स्टेन अनुकरण
३६ सिफरा लैक
३७ तोरा
३८ नीति
३९ ता० सनहेद्रिन
४० ताओ-तेह-किंग
४१ श्री यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ
४२ अहिंसा के आचार और विचार का विकास—प० सुखलालजी
४३ भारतीय संस्कृति—सानेगुरुजी
४४ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र
४५ उच्चतर माध्यमिक अर्थशास्त्र —प्रो० सत्यदेव
४६ गुरुदेव श्री रत्न मुनि स्मृति ग्रन्थ,
४७ महावीर सिद्धान्त और उपदेश —उपाध्याय अमर मुनि
४८ फाहियान
४९ प्राचीन भारत वर्ष की सभ्यता का इतिहास
५० अहिंसा तत्त्व दर्शन —उपाध्याय अमर मुनि
५१ कुरान
५२ आर्देविरफ
५३ मांसाहार विचार
५४ आरोग्य साधन, गांधी जी

५५ आप्तमीमांसा
५६ भारतीय दर्शन
५७ तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ
५८ पारमाणविक विभीषिका—विक्रमादित्य सिंह
५९ अणुयुग और हम —दिलीप
६० गांधी और विश्वशान्ति —देवीदत्त शर्मा
६१ भारतवर्ष का इतिहास, —जी० टी० ह्वीलर
६२ प्रेरणा प्रवाह —आचार्य विनोबा
६३ शुक्ल यजुर्वेद
६४ त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र
६५ पद्म पुराण
६६ अहिंसा दर्शन —उपाध्याय अमर मुनि
६७ मुद्राराक्षस नाटकम्
६८ अणु से पूर्ण की ओर —मुनि नगराज
६९ अहिंसा के अंचल में
७० अपरिग्रह दर्शन —उपाध्याय अमर मुनि
७१ श्रमण —बनारस
७२ अमरभारती —आगरा
७३ दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली ७ अगस्त १९६३
७४ विचार रेखा —गणेश मुनि शास्त्री
७५ नवभारत टाइम्स, आदि समाचार पत्र।

६